ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली

ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली

विश्वविद्यालय, प्रयाग द्वारा डी० फ़िल्० उपाधि के लिए
सन् १९५१ में स्वीकृत थीसिस

डॉ० हरिहरप्रसाद गुप्त
एम० ए०, डी० फ़िल्०

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली इलाहाबाद बम्बई

परम पूज्य स्वर्गस्थ पिता

श्री मोहनलाल गुप्त

की

पुण्य स्मृति

में

भूमिका

'ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली' में श्री हरिहर प्रसाद जी ने लगभग ढाई सहस्र ऐसे शब्दों का वैज्ञानिक सङ्कलन किया है जो हमारे ग्राम जीवन की भाषा की रीढ़ हैं। कृषक जीवन की शब्दावली हिन्दी भाषा का महत्त्वपूर्ण अंश है जिसकी परम्परा अधिकांश में वैदिक युग से चली आती है। जीवन के कई क्षेत्रों में, विशेषतः जिनका सम्बन्ध नागरिक जीवन से था, उन क्षेत्रों में अरबी, फारसी से प्राप्त शब्दावली ने प्राचीन शब्दों को हटा दिया, किन्तु गाँवों में जीवन की धारा का प्रवाह अटूट रहा है और इसका पुष्ट उदाहरण हमारी शब्दावली में पाया जाता है। युग, हल, वरत्रा, हलीषा, क्षेत्र, प्रग्रह, रश्मि, नद्ध आदि कितने ही शब्द भाषा के प्राचीनतम स्तर तक पहुँचाते हैं जिनसे बने हुए रूप गाँव की भाषा में जाने पहचाने शब्दों की भांति सदा प्रयुक्त होते आ रहे हैं। अपनी बोलियों को छानकर ऐसे समस्त शब्दों को अलग पहचानने का कार्य महत्त्वपूर्ण है। यह कार्य किसी एक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। हिन्दी की बोलियों का विस्तार हिमाचल से दक्षिण कोसल तक और राजस्थान से बिहार तक फैला हुआ है। इतने विस्तृत क्षेत्र में कम से कम सौ स्थानों से ऐसा ही संग्रह कार्य होना चाहिए जैसा श्री हरिहर प्रसाद जी ने आज़मगढ़ जिले की एक तहसील के लिये किया है। इस निबन्ध की शैली से लिखे हुए एक शत निबन्ध यदि हिन्दी भाषा को प्राप्त हो सकें तो कृषक शब्दावली का पुष्कल समृद्ध रूप सामने आ सकता है और तब हमारे पास उस प्रकार की सामग्री का प्रामाणिक संग्रह उपलब्ध हो सकेगा जिसके आधार पर तुलनात्मक अध्ययन का सूत्रपात किया जा सकता है।

कृषक शब्दावली के संग्रह का महत्त्व अभी तक पूरी तरह पहचाना नहीं जा सका है। हिन्दी के लिए तो यह अमृत प्रोक्षण के सदृश नए जीवन का आवाहन करेगा। वस्तुतः गाँवों और नगरों में मिलाकर शब्दों का जो अनन्त भण्डार भरा है वह सब हिन्दी की निधि है। देहाती जीवन में पनपने वाले ग्रामोद्योगों और शहरों में पेशेवर लोगों की शब्दावली का सङ्कलन किए बिना हिन्दी का सच्चा स्वरूप सामने आ ही नहीं सकता। सौभाग्य से इस प्रकार के कार्य का सूत्रपात उन्नीसवीं शती में ही हो गया था। १८७६ में श्री विलियम क्रुक ने 'ए डाइजेस्ट आफ रूरल ऐंड एग्रिकल्चुरल टर्म्स' (ग्राम जीवन और कृषि के शब्दों की सार सूची) नामक पुस्तक प्रकाशित की। उन्होंने लिखा है कि उन्होंने वह सूची श्री एच० एम० इलियट द्वारा सङ्कलित शब्दावली, प्रो० एच० एच० विल्सन की

शब्दावली और श्री जे० आर० रीड कृत आज़मगढ़ ग्लासरी के आधार पर तैयार की थी और उसमें उन अनेक शब्दों को भी जोड़ दिया था जो बन्दोबस्त करने वाले हाकिमों ने अपने विवरणों में प्रयुक्त किए थे। यह मूल पुस्तक अब प्रायः अप्राप्य है और श्री ग्रियर्सन के सूचनानुसार इलाहाबाद के सरकारी प्रेस (नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज़ ऐंड अवध गवर्मेंट प्रेस) से १८७६ में छपी थी। श्री ग्रियर्सन का कहना है कि यदि वह शब्दावली उन्हें प्राप्त न हुई होती तो वे अपनी बिहार पेज़ेंट लाइफ़' नामक पुस्तक कदापि तैयार न कर पाते। इसी कथन से क्रुक के काम का महत्व जाना जा सकता है। श्री क्रुक ने अपनी पहली शब्दावली का प्रारूप उस समय के शिक्षा और माल विभागों के अनेक अधिकारियों के पास भेजा और उत्तर में जो बहुमूल्य सुझाव और सामग्री प्राप्त हुई उसके आधार पर अपनी शब्दावली का दूसरा परिवर्द्धित संस्करण १८८८ में गवर्मेंट प्रिंटिंग, इंडिया (कलकत्ते) से प्रकाशित कराया। उसकी एक प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय से मुझे देखने के लिये प्राप्त हुई। इसी बीच १८८५ में जार्ज ग्रियर्सन का 'बिहार पेज़ेंट लाइफ़' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ जिसमें कृषक जीवन से सम्बन्धित शब्दावली के कार्य की आदर्श रूप-रेखा प्रस्तुत की गई और एक प्रकार से सदा के लिए इस प्रकार के कार्य की दृढ़ आधारशिला रख दी गई। क्रुक ने अपनी पुस्तक के पहले संस्करण में विषयवार शब्दों का संग्रह किया था, किन्तु दूसरे संस्करण में सुविधा के लिए उसे अकारादि क्रम से सजा दिया था। किन्तु ग्रियर्सन ने पहले ही क्रम को अपनाया और वस्तुतः जीवन के प्राणवन्त रूप का अध्ययन करने की दृष्टि से वही क्रम उपयोगी कहा जा सकता है। श्री क्रुक ने अपना कार्य कितने परिश्रम से किया था इसे देखकर आज भी उनकी लगन का लोहा मानना पड़ता है। शब्दों के विविध रूपों का ऐसा भरा-पुरा संग्रह देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। उदाहरण के लिए पड़वा, पडरा, पडरू, पड्डा, पड़वा, पड्डो, पड्ड्डा आदि सभी विविध उच्चारण रूपों का उल्लेख उनके संग्रह में पाया जाता है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण शब्द के कई रूप उन्होंने दिए हैं, जैसे गोएँड, गोएँडा, गोएंड़, गोएंड़ा, गोएड़ा, गोएरा (= गाँव के पास के खेतों की धरती)। यह शब्दों की रूप बहुलता बोलियों की अपनी विशेषता है और उनकी सजीवता का प्रमाण भी। बोलियाँ पिंजड़ापोल की दीन-हीन गाएं नहीं हैं वे तो गाँवों के विस्तृत वातातपिक क्षेत्र में किलोल करती हुई ओसर गाएं हैं जिनकी चञ्चल काली पुतलियों में जीवन का लक्षण है। क्रुक के संग्रह में लगभग पन्द्रह हज़ार शब्द थे। ग्रियर्सन ने अपने कार्य को अधिक वैज्ञानिक पद्धति से किया और उन्होंने संग्रह की क्षेत्र मर्यादा बिहार की भोजपुरी, मैथिली और मगही बोलियों तक सीमित रखकर शब्दों के तुलनात्मक स्वरूप का बहुत ही रोचक वर्णन किया है। ग्रियर्सन के ग्रन्थ का पहला

संस्करण (१८८५) अब शायद ही कहीं देखने को मिले। उसका दूसरा संस्करण १९२६ में बिहार शासन ने पटने से प्रकाशित किया था। वह भी इस समय दुर्लभ हो गया है। आवश्यकता है उस मौलिक ग्रन्थ का तीसरा संस्करण शीघ्र प्रकाशित किया जाय। किन्तु अर्वाचीन हिन्दी जगत् अपने इस उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक है। पटने की बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् कुछ-कुछ ग्रियर्सन की ही शैली पर बिहार के ग्राम जीवन की शब्दावली का संग्रह करा रही है जो आशा है किसी दिन सुसम्पादित रूप में प्रकाशित होगा। ग्रियर्सन ने अपने वर्णनों को समझाने के लिये अर्थों के साथ आवश्यक रेखाचित्र भी प्रस्तुत किए थे। इस प्रकार के संग्रह-कोशों में उनकी नितान्त आवश्यकता मानी जाती है। इसी प्रसङ्ग में एक अति उपयोगी प्राचीन शब्द संग्रह का उल्लेख करना भी आवश्यक है। १८८७ में इलाहाबाद के मिशन प्रेस से श्री पैटरिक कार्नेगी कृत 'कचहरी टेकनिकैलिटीज़' या 'ए ग्लासरी आफ टर्म्स, रूरल, आफिशियल ऐंड जनरल इन डेली यूज़ इन दी कोर्ट्स आफ लॉ ऐंड इन इलस्ट्रेशन आफ दी टेन्यूर्स, कस्टम्स, आर्ट्स ऐंड मैनूफैक्चर्स आफ हिन्दुस्तान' नामक पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था। श्री कार्नेगी ने १८५० के लगभग अपनी सूची का संकलन आरम्भ किया था। विस्तार से शब्दों और संस्थाओं के अर्थों पर प्रकाश डालने के लिये कार्नेगी की पुस्तक आज भी बहुत उपयोगी है और हिन्दी में शब्द-संग्रह का कार्य करने वाले विद्वानों को उसे अवश्य एक बार देख लेना चाहिए। गोइंड या गौहानी का धरती पर ऐसा सटीक परिचय आज तक अन्यत्र मेरे देखने में नहीं आया। गाँव की आबादी की ज़मीन बस्ती कहलाती है। उसके बाद क्रमशः तीन प्रकार की भूमि आती है। पहली गोइँड या जमई, दूसरी मझार या कौली, और तीसरी पालो या फरदह जो गाँव बस्ती से दूर उसके अन्तिम घेरे में होती है। जैसे पेड़ के तने से पल्लव दूर होते हैं ऐसे ही वह भी आखिरी सीमा में होती है। मझार या बीच की पट्टी मियाना भी कहलाती है। गोइँड को गौहानी भी कहा जाता है। हिन्दी में ये दोनों शब्द अभी तक चलते हैं। मध्यकालीन अवधी में गोहने या गोहन समीप के अर्थ में आया है। पार्श्व में रहने वाली सखियों के लिये भी इसका प्रयोग किया गया है। गोहानी धरती गाँव से सटी हुई उसके निकटतम होती है। गोइँड का अर्थ 'गाँव का निकटवर्ती भाग' गुप्त जी ने ठीक ही दिया है। पर उसकी व्युत्पत्ति गोष्ठ से प्रश्न चिह्न के साथ सुझाई है। वस्तुतः सुबन्धु ने वासवदत्ता में शालि क्षेत्रों की सीमा पर रक्खे हुए गोमुण्डों का उल्लेख किया है। ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से गोमुण्ड से गोइँड, ग्वैंड, गोएँड आसानी से बन सकता है। उसी का पर्याय गौहान, गोहना, गोहन आदि सं० 'गोधान' से सम्बन्धित होने चाहिएं। कार्नेगी ने लिखा है कि गोएँड धरती बहुत उपजाऊ और मूल्यवान् समझी जाती है। पर लोग और उनके डंगर-पोहे जब चाहे उसमें घुसकर खेती को नुकसान पहुँचा देते है, इसलिये गाँव में कहावत है—'गोएरे की खेती छाती

का जाम', अर्थात् गोएँड की खेती ऐसी दुःखदायी है जैसे छाती पर जम बैठा हो। कार्नेगी की सङ्कलन-शक्ति सचमुच अद्भुत थी। गौहान या गौहानी शब्द के सामने उन्होंने इतने और शब्दों का उल्लेख कर दिया है—बंजिन, बारा, बड़ैरी, ढैया, गोएँड, गोएँड़, गोएड़ा, गोड़ा, गोरहा, गोरवा, गुहानी, जमइ, खिड़वा, पेड़, सगवारा। ये लोग आरम्भिक काल में बड़े रस और उछाह से अपने कार्य में प्रवृत्त होते थे। इसी प्रसंग में दो व्यक्तियों के विशिष्ट कार्य का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। यद्यपि उनके कार्य को ७५ वर्ष के लगभग हुए पर हिन्दी के लिये आज भी उनका महत्त्व ज्यों का त्यों बना हुआ है। क्रुक-कार्नेगी-ग्रियर्सन के समकालीन युग में ही फैलन (१८७६) और प्लाट (१८८४) ने अपने उन महान् कोशों की रचना की जिनमें हिन्दी की बोलियों और गाँवों की शब्दावली के अति समृद्ध रूप का संग्रह कर लिया गया। आज वे शब्द और अर्थ कहाँ हैं? उन तक पहुँचने के लिये प्रयत्न करना होगा क्योंकि चटक गति से बदलते हुए भाषा-रूपों में पुराने अर्थ खोए जा रहे हैं। उदाहरण के लिये प्लाट ने 'बाँका' शब्द के बारह अर्थ दिए हैं जिन्हें उसने अत्यन्त विवेचना-शक्ति से पाँच वर्गों में बाँटकर क्रमशः लिखा है। इसी शब्द के 'हिन्दी शब्द सागर' और 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' में टेढ़ा, सुन्दर, बनाठना, छैला, बहादुर, केवल इतने ही अर्थ हैं। प्लाट के समय की उन्नीसवीं शती की भाषा में बाँका शब्द के जो अर्थ थे, हिन्दी की बोलियों में वे आज भी जीवित मिलेंगे। उन सब को हिन्दी के कोशों में आना चाहिए। इसके लिए हिन्दी शब्दों के अर्थों की बारीक छानबीन होनी चाहिए।

श्री हरिहर प्रसाद जी ने जो कार्य किया है, वह अति महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी के कोश में छिपी हुई निधि से वह हमारा परिचय कराता है। उनके प्रदर्शित क्रम से एवं पूर्वाचार्यों के निर्दिष्ट मार्ग से इस प्रकार के शब्द-संग्रह का कार्य सर्वथा बढ़ाने योग्य है। समस्त उत्तर प्रदेश की स्थानीय बोलियों के क्षेत्रों को पहचान कर प्रत्येक क्षेत्र से इसी ढंग के शब्द-संग्रहों की आवश्यकता है। वस्तुतः इस प्रकार के किसी संग्रह में दस सहस्र से कम शब्दों का संग्रह न रहना चाहिए, जैसा ग्रियर्सन और क्रुक के संग्रहों में है। तभी हमें कृषक जीवन की सम्पूर्ण शब्दावली का परिचय प्राप्त हो सकेगा। गाँवों में कैसे कैसे टकसाली शब्द ढाले गए हैं? उनके माधुर्य को किस प्रकार कहकर बताया जाय? उनमें हिन्दी भाषा की निजी प्रकृति पूरी तरह खिली हुई मिलती है। गुप्त जी ने 'गंगा-जमुनी करब' इस विशेष प्रयोग का उल्लेख किया है, अर्थात् नाधे की रस्सी को जुए के महादेवा या बसीठा के दोनों ओर समतोल रखना जिससे दोनों बैलों पर समान ज़ोर पड़े (पृ० १२, १८५)। गंगा-जमुना के संगम की बड़ी घटना

किस प्रकार जुए की रस्सी के मिलवाँ फन्दों का रूप खड़ा कर देती है यह अनुभव करने की बात है।

श्री हरिहर प्रसाद जी ने शब्दों की व्युत्पत्ति के सुझाव देने में भी सावधानी से काम लिया है कितने ही शब्दों का निर्वचन शब्दसागर की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक कहा जा सकता है। फिर भी कुछ शब्द हैं जिनकी ठीक व्युत्पत्ति विचारने योग्य है, जैसे नीचक (पछाहीं बोली नैचक) की व्युत्पत्ति नीच से नहीं नेमिचक्र से है, नौदरि (पृ० २१७) की व्युत्पत्ति नवदन् (नौ दाँत वाला) से है। इसी वज़न पर सद्दर (सप्तदन्) और छद्दर (षोडन्) शब्द बने हैं। ओसार (पृ० १७३) उपशाल से नहीं, सं० अपसरक से है। जोइना (पृ० २०१) योजनिका से नहीं, प्राचीन वैदिक 'यून' (मूँज या गेहूँ की नाली को बटकर बनाई हुई रस्सी) से है। आजतक पच्छिम के देहातों में इसे जून कहा जाता है। उसी से बर्तन माँजने के मूंज के टुकड़े को जूना कहा जाता है।

गाँवों से संगृहीत होने वाली शब्दावली का ऐतिहासिक और साहित्यिक अध्ययन भी शोध का विषय है। इस पुस्तक के पृष्ठ १-३ तक विभिन्न प्रकार की मिट्टियों के लिये लगभग पचीस शब्द और पृ० ३-७ तक खेतों के नामों के लगभग पचास शब्द दिए गए हैं। इनमें से प्रत्येक शब्द की परम्परा और साहित्यिक पृष्ठभूमि पर विचार किया जा सकता है। प्राचीन काल में भी यह शब्दावली इतनी ही समृद्ध थी। उदाहरण के लिये, मिट्टी कितनी तरह की होती है, इसके लिये विनयपिटक, भिक्खुपाचित्तिय प्रकरण में निम्नलिखित शब्दावली प्रयुक्त हुई है—

जाता पृथिवी (वह अदढ़ या रौसली—रजस्वला नदी की मिट्टी जो बरसात में जमा हो जाती है), सुद्धपंसु, सुद्धमत्तिका, अप्पपासाण, अप्पसक्खरा (रोरही या छर्रही माटी), अप्पकठला, अप्पमरुम्बा, अप्पवालिका, येभुय्येन पंसु (बहुत रेतवाली, रेतीली), येभुय्येन मत्तिका (= मटियार), अजाता पठवी (=दढ़, जमी हुई ठनकी माटी, पटपड़ या तावा माटी), सुद्धपासाण (चवनिहा), सुद्धसक्खरा, सुद्धकठुला (ठिकरही माटी, कठल=कपालखंड), सुद्धमरुम्बा (मोरम धरती), सुद्धवालिका (चनबागर या बलुआ), अप्पपंसु, अप्पमत्तिका, येभुय्येन पासाण, येभुय्येन सक्खरा (कंकरही या अँकड़ही माटी), येभुय्येन कठुला, येभुय्येन मरुम्बा, येभुय्येन वालिका। बुद्धघोस ने लिखा है कि मुट्ठी से बड़ा कंकड़ हो तो वह पाषाण कहलाता है और मुट्ठी के बराबर कंकड़ हो तो उसे शर्करा कहते हैं। कठल या कठुल का अर्थ है कपालखंड या खपरा और मरुम्बा का अर्थ था कटसक्खरा या मोरम जिसमें महीन छर्रीं रहती हैं। इस दृष्टि से ज्ञात होता है कि अप्प-

सक्खरा या अल्पशर्करा धरती वह थी जिसे कँकरीली कहा जाता है। इसी के कंकड़ों के कम-ज्यादा होने से शुद्धसक्खरा और येभुय्येन सक्खरा भेद थे। कट्ठला वह धरती हुई जिसे लोक में ठिकरही कहा जाता है। इसी के तीन भेद अल्पकठला, शुद्ध कठला और येभुय्येन कठला थे। अल्पमरुम्बा, शुद्धमरुम्बा और येभुय्येन मरुम्बा तीन प्रकार की रोरही या छर्रही मिट्टी होनी चाहिए। वालिका स्पष्ट ही बलुआ धरती है जिसमें चनबगरा भी शामिल है। इसके भी तीन भेद अल्पबालुका, शुद्धबालुका और येभुय्येन बालुका थे। मृत्तिका मटियार है जिसकी तीन क़िसमें अल्पमृत्तिका, शुद्धमृत्तिका और येभुय्येन मृत्तिका कहलाती थीं। आजकल की मटियार, दूमट और जबर माटी इन्हीं भेदों से मिलती हैं।

काशी विश्वविद्यालय
वसन्त पंचमी, सं० २०१२

वासुदेवशरण

निवेदन

ग्रामीण शब्दों का संग्रह तथा उनका अध्ययन ये दोनों कार्य अभी तक हिन्दी-साहित्य में नहीं के बराबर हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि ये कार्य अत्यन्त कष्ट-साध्य हैं। ग्रामीण बोलियों एवं शब्द-समूहों का संग्रह, जब तक ग्रामीण जनता में कोई घुल-मिल न जाय, नहीं कर सकता। ग्रामीण जनता की यह संपत्ति ऐसी नहीं है जिसे आप पहुँचते ही उनसे प्राप्त कर सकें, वरन् इसके लिए उनका सत्संग अपेक्षित है। क्योंकि यह संभव नहीं है कि वे आप के पूछने पर किसी विषय पर अपना व्याख्यान दे सकें अथवा किसी विषय की आप को पूरी जानकारी करा सकें अथवा किसी विषय से सम्बन्धित शब्द-समूहों को वे आप को लिखा सकें। वे तो प्रसंग छिड़ने पर ही अपना ज्ञान प्रदान कर सकते हैं। यह भी स्वाभाविक नहीं है कि वे जितना जानते हैं वह सब आप को एक ही बार में बतला दें। आप को उनसे प्रश्न करके ही सारी जानकारी प्राप्त करनी होगी। आप को एक ही स्थान पर एक ही व्यक्ति से सारी बातें ज्ञात हो जायँ, यह भी सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त एक कठिनाई और है। विभिन्न विषयों से सम्बन्धित शब्द-समूह आप एक ही समय में संग्रह नहीं कर सकते, उसके लिए विशेष ऋतु की प्रतीक्षा करनी होगी।

सन् १९३७ में एम० ए० करने के उपरान्त मेरे पूज्य गुरु डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, अध्यक्ष हिन्दी-विभाग विश्वविद्यालय, प्रयाग ने मुझे ग्रामीण शब्दावली के अध्ययन के लिए प्रेरित किया। संयोग से सन् १९४२ से १९४६ तक मुझे आज़मगढ़ जिले में सबडिप्टी इन्सपेक्टर आफ़ स्कूल्स के रूप में कार्य करना पड़ा। उस समय ग्रामीण जनता के सम्पर्क में आने पर, मैंने यह अनुभव किया कि हमारी ग्रामीण बोलियों में हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित इतना अपार शब्द-भांडार है कि उसका संग्रह हमारी भाषा और साहित्य की अभिवृद्धि के हेतु एक अनिवार्य आवश्यकता है। न केवल हिन्दी भाषा को समृद्ध बनाने एवं हिन्दी के ऐतिहासिक विकास तथा उसके तुलनात्मक अध्ययन के लिए वरन् भारतीय संस्कृति की सम्यक् जानकारी के लिए भी जनपदीय शब्दों वाक्यांशों, मुहावरों तथा कहावतों का वैज्ञानिक संग्रह एवं अनुशीलन अपेक्षित है।

ग्रामीण जीवन में खेती और कुटीर-उद्योगों का एक विशेष स्थान है अतः तत्संबंधी शब्दावली का अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण एवं उपयोगी समझकर मैंने अपने शोध-कार्य को यहीं तक सीमित रखा। शब्द-संग्रह अधिक से अधिक वैज्ञानिक एवं प्रामाणिक हो सके इस दृष्टि से मैंने अपने शोध-कार्य का क्षेत्र भी सीमित

रखा। इसके लिए मैंने जिला आज़मगढ़ के तहसील फूलपुर के परगना अहिरौला को चुना। यह क्षेत्र जौनपुर और फैज़ाबाद की सीमा से लगा हुआ है, यहाँ की बोली पश्चिमी भोजपुरी होते हुए भी अवधी से किंचित् प्रभावित है।

अंग्रेज़ी में स्वर्गीय सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने इस प्रकार का संग्रह 'बिहार पेज़ैंट लाइफ' में किया है। वस्तुतः इस विषय के अनुसंधानकर्त्ताओं के मार्गप्रदर्शनार्थ यह एक अमूल्य कृति है किन्तु यह संग्रह बहुत बड़े विस्तृत क्षेत्र में एवं बहुत से व्यक्तिओं द्वारा किया गया है इसलिए यह पूर्ण वैज्ञानिक एवं प्रामाणिक नहीं हो सका। प्रस्तुत संग्रह मैंने इसी लक्ष्य से स्वयं और एक सीमित क्षेत्र में किया है। भाषा के अध्ययन के लिए यह समस्त सामग्री पूर्ण प्रामाणिक बन सके इसका सदैव ध्यान रखा गया है। इस संग्रह में यह भी ध्यान रखा गया है कि गाँव की बोली से अधिक से अधिक शब्द तथा मुहावरे आ सकें। शब्दों एवं मुहावरों का भाव पूर्णतया स्पष्ट हो सके इस दृष्टि से इन्हें देहाती भाषा के गठित वाक्यों के साथ रखने की चेष्टा की गई है। विविध शब्दों के साथ प्रयुक्त होने वाली धातु तथा वाक्यांश भी दिए गए हैं। उद्योग-धन्धों की शब्दावली विशेष (टेकनिकल) अर्थों में प्रयुक्त होती है अतः उनके समझाने के लिए उद्योग-धन्धों की प्रत्येक प्रक्रिया का पूर्ण विवरण अपेक्षित है; इसीलिए प्रबंध के प्रथम खण्ड में खेती तथा अन्य समस्त उद्योगों का विवरणात्मक वर्णन दिया गया है। इस विवेचन शैली से एक लाभ यह भी है कि किसी भी उद्योग में प्रयुक्त होने वाले शब्द और मुहावरे यथासंभव छूट नहीं सके हैं। यों तो यह शब्द-सागर ऐसा है कि इसमें जितनी बार कोई डुबकी लगावे उतनी बार उसे शब्द रत्न प्राप्त होंगे, सरस्वती का यह अपूर्व भंडार कभी रिक्त होने का नहीं।

प्रबन्ध के द्वितीय खण्ड में समस्त पारिभाषिक शब्दों की अनुक्रमणिका अकारादि-क्रम से दी गई है। शब्दों के साथ उनके प्रयोग के अनुच्छेदों की संख्या देते हुए उनका व्याकरण और उनकी व्युत्पत्ति भी दी गई है। इसमें लगभग २५०० शब्द हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से हिंदी भाषा का कोई प्रामाणिक कोश अभी तक नहीं है। श्री टर्नर महोदय की 'नेपाली डिक्शनरी' ही एक मात्र इस क्षेत्र में एक वैज्ञानिक अनुशीलन है। अतः व्युत्पत्ति का कार्य अत्यन्त जटिल है। बहुत से ऐसे ठेठ शब्द हैं जिनकी व्युत्पत्ति के लिए भारत की विभिन्न भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है, जिसका अभी सर्वथा अभाव है। श्री के० पी० कुलकर्णी का 'मराठी व्युत्पत्ति कोश' इस दिशा में एक सुन्दर प्रयास है। वस्तुतः अभी तक ग्रामीण बोलियों के अतुल शब्द-भांडार की ओर हमारा ध्यान ही नहीं गया है, उनकी व्युत्पत्ति का प्रश्न तो दूर है। अस्तु, यह अनुशीलन विषय-विवेचन और शब्दों की निरुक्ति दोनों दृष्टियों से नितांत मौलिक है तथा सारा कार्य स्वतंत्र ढंग से करना पड़ा है।

मेरे इस शोध-कार्य के संपन्न होने का श्रेय वस्तुतः गुरुवर प्रो० धीरेन्द्र वर्मा जी को है जिन्होंने इसका श्रीगणेश करा कर अपने निरीक्षण में ही इसे डी० फ़िल्० उपाधि के लिए पूर्ण कराया। गुरु-ऋण से मैं कभी मुक्त नहीं हो सकता हूँ। मैं अपने पूज्य गुरु डॉ० बाबूराम सक्सेना, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, विश्वविद्यालय, प्रयाग का भी हृदय से अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने, स्नेह के कारण ही, अपना अमूल्य समय देकर व्युत्पत्ति के कार्य को वैज्ञानिक शैली पर सम्पन्न कराया, वस्तुतः उनकी असीम कृपा का ही यह फल है। मैं अपने थीसिस के परीक्षकों— डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी तथा डॉ० बनारसीदास जैन, भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पंजाब यूनिवर्सिटी का भी उपकृत हूँ जिन्होंने कार्य को अधिक पूर्ण बनाने के लिए अपने अमूल्य सुझाव दिये थे। डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, विश्वविद्यालय, कलकत्ता के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करना आवश्यक समझता हूँ जिन्होंने सदैव मुझे स्वर्गीय डॉ० ग्रियर्सन की 'बिहार पेजैंट लाइफ़' के अनुकरण पर यू० पी० पेजैंट लाइफ़ लिखने की प्रेरणा दी। उनकी इस शुभेच्छा को मैं आंशिक रूप में पूर्ण कर सका हूँ इसका मुझे संतोष है। मुझे विश्वास है कि उनके आशीर्वाद एवं प्रोत्साहन से उनकी यह अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी। उनकी अमूल्य सम्मतियों के लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। लोक-जीवन एवं साहित्य के पुजारी आचार्य काका कालेलकर का भी मैं कम उपकृत नहीं हूँ जिनके द्वारा मैं ग्रामोद्योग के प्राण स्वर्गस्थ राष्ट्रपिता बापू के संपर्क में आ सका तथा एतदर्थ उनके शुभाशीर्वाद प्राप्त कर सका (दे० कर्मयोग, आगरा, १९ जुलाई १९४६)। प्रातःस्मरणीय संत विनोबा एवं श्री बी० जी० खेर, अध्यक्ष आफ़िशियल लैंग्वेज कमीशन के शुभाशीषों ने भी मुझे इस साधना को पूर्ण करने के लिए समर्थ बनाया, अतएव मैं इनका भी आभारी हूँ। स्वर्गीय डॉ० अमरनाथ झा, डॉ० सम्पूर्णानंद, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० दीनदयालु गुप्त, डॉ० विश्वनाथ प्रसाद पटना विश्वविद्यालय, डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा, डॉ० नगेन्द्र, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी प्रभृति विद्वानों ने इस कार्य की उपादेयता बतलाते हुए समय-समय पर मुझे प्रोत्साहित किया है अतः इसकी पूर्ति में इनका भी हाथ है, मैं इनके प्रति भी आभार-प्रदर्शन करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। परन्तु इस कार्य को पूरा करने में मुझे जितनी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं और जितना समय देना पड़ा उससे घबड़ाकर मैंने इस महत्वपूर्ण कार्य को कभी छोड़ दिया होता यदि मेरे पूज्य भ्राता डॉ० माताप्रसाद गुप्त, एम० ए०, डी० लिट्, रीडर, हिन्दी-विभाग, विश्वविद्यालय, प्रयाग (अधुना विशेष पदाधिकारी, आफ़िशियल, लैंग्वेज़ कमीशन) ने अपने अमूल्य सुझावों से मेरा मार्ग-प्रदर्शन एवं मुझे प्रोत्साहित न किया होता। मैं उनके इस ऋण से सदैव बाधित हूँ।

संक्षेप-सूची

अँ०	.....	अँग्रेज़ी	पा०	.....	पाली
अ०	.....	अव्यय	पुं०	...	पुलिङ्ग
अ० मा०	.....	अर्द्धमागधी कोष	प्रा०	.....	प्राकृत
अप०	...	अपभ्रंश	प्रे०	...	प्रेरणार्थक रूप
अनु०	.....	अनुकरणात्मक	फ़ा०	.....	फ़ारसी
अर०	...	अरबी	म०	.....	मराठीव्युत्पत्ति कोश
अल्पा०	....	अल्पार्थक रूप	मुहा०	...	मुहावरा
क०	.....	कनाड़ी	यौ०	...	यौगिक
कहा०	.....	कहावत	वि०	.....	विशेषण
क्रि०	.....	क्रिया	वै० सं०	...	वैदिक संस्कृत
क्रि० वि०	.....	क्रिया विशेषण	सं०	.....	संस्कृत
तु०	.....	तुलना कीजिए	स०	...	सकर्मक
तुर०	.....	तुर्की	स्त्री०	.....	स्त्री लिंग
दे०	.....	देखिए	हिं०	...	हिन्दी
ने०	...	नेपाली डिक्शनरी	*	.....	कल्पनात्मक रूप

खण्ड १

१

मिट्टी और खेत

मिट्टी का वर्गीकरण

१. किसान ने विभिन्न प्रकार की मिट्टियों के, उनकी विशेषताओं के आधार पर, कुछ नाम रख लिये हैं। इन विशेषताओं के आधार पर इनका वर्गीकरण, निम्न ढंग से, किया जा सकता है—

जाति के आधार पर:

मटियार—जिस माटी (मिट्टी) में बालू की मिलावट नहीं होती है उसी का यह नाम है। ऐसी मिट्टी खेती के लिए अच्छी होती है, इमारत आदि बनाने में भी इसका प्रयोग होता है। यह कड़ी होती है। खोदने पर यह चाका-चाका (चक्का-चक्का) निकलती है। इसका रंग करछहूँ (हलका काला) होता है।

बलुही या बलुआह—इस माटी में बालू मिली होती है, इसलिये इसे बलुही माटी कहते हैं। बालू के दो भेद होते हैं—(१) मटमैल (२) उजरकी। जिस बालू में माटी अधिक रहती है वह मटमैल होती है और जिसमें माटी कम होती है वह उज्जर (उज्ज्वल) दिखाई पड़ती है। बलुही माटी पर वर्षा का प्रभाव नहीं जान पड़ता है क्योंकि इसके अन्दर पानी तुरन्त चला जाता है। अधिक बलुही माटी खेती के योग्य नहीं होती।

दुइमट या दोमट; दुइरसा या दो रसा—मटियार और बलुही के बीच की मिट्टी को दुइमट या दुइरसा कहते हैं। खेती के लिए यह माटी अच्छी होती है और इसके जोतने आदि में मेहनत कम पड़ती है। इसकी मिट्टी भुसभुस होती है; जोतने और हेंगाने पर भुरभुरी हो जाती है। मटियार प्रधान दोमट को मटियार दोमट तथा बालू प्रधान दोमट को बलुही दोमट कहते हैं।

उसराह या उसरही—ऊसर की मिट्टी को उसराह या उसरही कहते हैं। ऊसर को उपजाऊ बनाने के लिए उसमें, वर्षा के दिनों में, साटा (चौड़ी नहर) बना देते हैं जिसके द्वारा ऊसर वर्षा का जल सोखता है। जिस ऊसर में रेह अधिक होती है उसे रेहकट अथवा रेहटा कहते हैं। ऐसी माटी खेती के योग्य नहीं होती। जिस उसरही माटी में उसरौंड़ो (ऊसर की घास) होती है उसमें केवल मेड़ुआ या मकरा की पैदावार होती है।

जबर माटी—जिस माटी में उपज अच्छी होती हो उसे जबर कहते हैं।

कड़ी माटी—ऐसी माटी को कहते हैं जिसमें कुदार और फरसा धँसने में कठिनाई हो।

नरम माटी—ऐसी माटी को कहते हैं, जिसमें कुदार आसानी से चल सकती हो।

ठनकी माटी—ऐसी माटी को कहते हैं जो खेत का पानी सूख जाने पर कड़ी पड़ जाती है और गोड़ाई के योग्य नहीं रह जाती है।

कच्ची माटी—जब खेत गीला रहता है और जोतने के योग्य नहीं होता तब ऐसे खेत की माटी को कच्ची माटी कहते हैं।

अरइठ—खेत की जोती हुई माटी के नीचे की कड़ी और बिना कमाई हुई माटी को अरइठ कहते हैं।

तावा माटी—खेत जब लगातार कुछ दिनों तक जोता नहीं जाता या बहुत मामूली जोता जाता है तब खेत की निचली सतह की माटी बहुत कड़ी हो जाती है। ऐसी माटी को तावा कहते हैं।

कमायल माटी—खाद-पात डालकर जो माटी तैयार की जाती है उसे कमायल (कमाई हुई माटी) कहते हैं।

बहेंत माटी—पानी के बहाव के साथ बहकर आई हुई मिट्टी को बहेंत माटी कहते हैं। पानी के बहाव से जमीन कटकर ऊँची-नीची हो जाती है जिसे खुडुरी-खुडुरा या खुदुरी-खुदुरा कहते हैं।

खेत का वर्गीकरण

किसान अपनी सुविधा के लिये खेतों का भी, उनकी विशेषताओं के आधार पर, नाम रख लेता है। ऐसे नामों का, निम्न ढंग, से वर्गीकरण किया जा सकता है—

मि ट्टी के आ धा र पर :

४. मटियरा—जिस खेत की माटी मटियार हो उसे मटियरा कहते हैं। इसकी जोताई और हेंगाई में बहुत परिश्रम पड़ता है, क्योंकि इसकी माटी जल्दी टूटती नहीं, किंतु अनाज के लिए यह खेत सबसे अच्छा होता है। मटियरा में पेड़ छोटा होता है परन्तु बाल बड़ी और दाना मोटा होता है। मटियरा खेत पर पाले का प्रभाव कम पड़ता है।

बलुहा या बलुआह—जिस खेत की माटी बलुही होती है उसे बलुहा खेत कहते हैं। इसमें अनाज की पैदावार हलकी होती है। इसमें पौधा और बाल

नोनही या लोनही—इस माटी में एक प्रकार का नमक मिला रहता है। जहाँ पुरानी आबादी होती है वहाँ यह पायी जाती है। दीवार में नोना लगने से जो माटी गिरती है उसे भी नोनही माटी कहते हैं। इसे गोभी आदि पौधों को, कीड़ों से रक्षा के लिए, खाद के रूप में प्रयोग करते हैं।

रङ्ग के आधार पर:

२. करइल—यह माटी रंग में काली और लसदार होती है। यह साधारणतः ऐसी जगह पाई जाती है जहाँ वर्षा का जल रुकता है। पानी सूखते ही यह माटी फट जाती है और इसमें इतने चौड़े दर्रे फट जाते हैं कि इसमें पशुओं के पैर फँस जाते हैं। यह धान के लिए अच्छी माटी समझी जाती है।

काबिस या कबिसाह—यह पीले रंग की होती है और उपज की दृष्टि से अच्छी नहीं समझी जाती है। इसका प्रयोग कोंहार (कुम्हार) बरतन रँगने में करते हैं।

किसी अन्य विशेषता के आधार पर:

३. चनबागर—नदी के कछार के अतिरिक्त जो जमीन होती है, उसे बागर कहते हैं। चनबागर ऐसी मिट्टी को कहते हैं जहाँ पानी ठहरता नहीं शीघ्र चभ या झभ हो जाता है अर्थात् सूख जाता है। इसलिए जिस खेत में जितनी दूर तक यह मिट्टी पाई जाती है, वहाँ इस प्रकार की खेती नहीं हो सकती जिसे सिंचाई की आवश्यकता पड़ती हो। यदि ऐसी मिट्टी धान के खेत में, जहाँ पानी लगा रहता है, हो तब इससे कोई हानि नहीं होती है।

भेलघघरा या तेलघघरा—यह ताल और नारा (नाला) के किनारे होती है। थोड़े ही दबाव से इसमें पानी चुकचुका (पसीज) आता है।

चवनिहा माटी—जिस माटी के नीचे कंकड़ की चवन या चवनि (चट्टान) हो उसे चवनिहा कहते हैं।

कँकरही या अँकड़ही—कंकड़ मिली हुई माटी को कँकरही या अँकड़ही कहते हैं।

रोरही या छर्रही माटी—जिस माटी में कंकड़ के छोटे-छोटे रोरे (रोड़े) या छर्रे मिले रहते हैं उसे रोरही या छर्रही कहते हैं।

ठिकरही माटी—जिस माटी में खपड़े के टुकड़े मिले रहते हैं, उसे ठिकरही कहते हैं।

चिकनी या पोतनी माटी—जो माटी चिकनी एवं कुछ सफेद होती है और मकान पोतने के काम में आती है उसे चिकनी या पोतनी माटी कहते हैं।

नीमन या निम्मन माटी—जो माटी ठोस या मजबूत होती है, उसे नीमन या निम्मन कहते हैं।

हलुक माटी—ऐसी माटी को कहते हैं जिसमें उपज कम होती है।

दोनों छोटे होते हैं। साधारण जोतनी (जोताई) से ही काम चल जाता है।

दुइरसा (दोरसा) या दुइमट (दोमट)—दो रस माटी वाला खेत दुइरसा कहलाता है इसमें मटियार और बलुही दोनों मिट्टियाँ मिली होती हैं। इस मिट्टी में जौ-गेहूँ का पौधा लंबा होता है पर पैदावार मटियरा से कम होती है। पेड़ उखाड़ने पर, मिट्टी भुस-भुस होने के कारण, भुस की ध्वनि होती है।

उसरहा—उसरही माटी वाला खेत उसरहा कहलाता है। रेह मिले रहने के कारण इसकी मिट्टी चिकनी होती है और थोड़ी वर्षा से ही खेत चिक्कन (चिकना) हो जाता है।

स्थि ति के आ धा र पर :

५. गोंइड़, गोंयड़ या गोंएड़ का खेत—गाँव के समीपवर्त्ती स्थान को गोंइड़ गोंयड़ या गोंएड़ और समीपवर्त्ती खेत को गोंइड़, गोंयड़ या गोंएड़ का खेत कहते हैं। यह खेत हर प्रकार से अच्छा होता है। आबादी के आरी-पास (निकट) होने के कारण यह गाँव का निकार (शौच का स्थान) होता है। अतः इसमें खाद की कमी तो होती नहीं, इसकी देख-रेख भी भली-भाँति होती है।

सिवाने का खेत—गाँव की सीमा पर स्थित खेत को सिवान या सिवाने का खेत कहते हैं।

पलई का खेत—गाँव से दूर के खेत को पलई का खेत कहते हैं। ऐसे खेत की मरम्मत बहुत कम हो सकती है। अतः इसमें उपज अच्छी नहीं होती है।

डाँड़े का खेत—दूर का खेत डाँड़े का खेत कहलाता है। डाँड़ शब्द मेंड़ के साथ मेंड़-डाँड़ के रूप में खेत की विभाजक मेंड़ के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

टाँड़े का खेत—गाँव से बहुत दूरवाले खेत को टाँड़े का खेत कहते हैं। साधारणतः टाँड़ शब्द लम्बे-चौड़े मैदान के लिए प्रयोग में आता है।

पाही का खेत—असली मकान से दूर ठहरने के स्थान को पाही कहते हैं और वहाँ के खेत को पाही का खेत कहते हैं।

उपरवारे या उँचासे का खेत—जो खेत ऊँचाई पर होता है उसको उपरवारे या उँचासे का खेत कहते हैं।

खलारे या खलपटे का खेत—खलार (नीची जमीन) में स्थित खेत को खलारे या खलपटे का खेत कहते हैं।

डिहवा का खेत—डीह (ढहे हुए मकान) पर जो खेत बना होता है, उसे डिहवा का खेत कहते हैं। इसमें जोन्हरी और अरहर की पैदावार अच्छी होती है।

कोट या कोटिया का खेत—पुरानी राजधानी के स्थान को कोट कहते हैं। यह ऊँची जगह पर बनता था। उजड़े हुए कोट पर बने हुए खेत को कोटे या कोटिया का खेत कहते हैं।

भिटवा का खेत—भीटा (ऊँचा स्थान) के आस-पास के खेत को भिटवा का खेत कहते हैं।

आकार के आधार पर:

६. कोलई, कोलवा—खेत के टुकड़ों को कहते हैं। कोलई छोटे तथा कोलवा बड़े टुकड़े के लिए व्यवहृत होता है।

एक चक—जब कई बड़े खेत एक जगह होते हैं, तब उनके समूह को एक चक कहते हैं।

पटिया—ऐसे खेत को कहते हैं जो चौड़ाई की अपेक्षा अधिक लम्बा होता है।

दशा के आधार पर:

७. ठिकरहवा खेत—जिस खेत में ठिकरा (खपड़ा) अधिक मिलता है उसे ठिकरहवा खेत कहते हैं।

कँकरहवा खेत—जिस खेत में कंकड़ अधिक निकलता है, उसे कँकरहवा खेत कहते हैं।

ढेलार खेत—जो खेत भली भाँति जोता-हेंगाया न गया हो और जिसमें ढेले हों, उसे ढेलार या ढेलगर खेत कहते हैं।

चवनिहा खेत—जिस खेत में चवन (कंकड़ की चट्टान) हो उसे चवनिहा खेत कहते हैं।

मरैलवा खेत—जिस खेत को किसी पेड़ की छाँही मारती है और छाँही के कारण पैदावार कम होती है उसे मरैलवा (मरा हुआ) कहते हैं। छाँही और पेड़ की घाँध (गर्मी) से खेत की नमी सूख जाती है।

कमायल खेत—जो खेत खाद-पाँस से भली भाँति कमाया हुआ होता है उसे कमायल खेत कहते हैं।

जबर या बरियार खेत—जिस खेत में उपज अच्छी होती है उसे जबर या बरियार खेत कहते हैं।

हलुक, पातर या दूबर खेत—जो खेत कमजोर हो, जिसकी मरम्मत न होती हो तथा जिसमें पैदावार कम होती हो उसे हलुक, पातर या दूबर खेत कहते हैं।

अफार खेत—बिना जोते हुए खेत को कहते हैं।

चनबागर खेत—ऐसे खेत को कहते हैं जिसमें कहीं चनबागर माटी पड़ गई हो। ऐसे खेत में पानी शीघ्र सूख जाता है।

थलगर खेत—ऐसे खेत को कहते हैं जिसमें पानी भली-भाँति रुकता हो।

परती खेत—ऐसे खेत को कहते हैं जो जोता-बोया न जाता हो।

परतिया या परुइयाँ—ऐसे खेत को कहते हैं जो परती पड़ी हुई जमीन को तोड़कर बनाया गया हो।

नौतोरवा—परती पड़ी हुई जमीन तोड़कर बनाया गया नया खेत नौतोरवा खेत कहलाता है।

चौमासा या पलिहर—ऐसे खेत को कहते हैं जो वर्षा भर—लगभग चार मास—जोता जाता है और तदुपरांत उसमें चैती फसल बोई जाती है।

अठवाँसा—ऐसे खेत को कहते हैं जो आषाढ़ से लेकर माघ तक—लगभग आठ महीना—कमाया जाता है और फिर उसमें ईख बोई जाती है।

फसल के आधार पर :

८. उखाव—खरीफ फसल काट लेने पर जिस खेत को ईख बोने के लिए तैयार करते हैं।

बियास—जिस खेत में कुवारी धान होता है।

कियारी—जिस खेत में केवल अगहनी धान होता है।

कियारा—कियारी के समूह को कहते हैं।

जड़हन—जिस खेत में जड़हन (अगहनी धान) बोया जाता है।

रोपहँड़—जड़हन धान रोपा जाता है, इसलिए जड़हन के खेत को रोपहँड़ भी कहते हैं।

एक फर्दा खेत—जिस खेत में वर्ष भर में एक फसल होती है।

दुइ (दो) फर्दा खेत—जिस खेत में वर्ष भर में दो फसलें होती हैं।

बेहनौर—जड़हन के लिए जिस खेत में बेहन डाला जाता है उसे बेहनौर कहते हैं। बेहन उखड़ जाने के बाद भी उस खेत को बेहनौर कहते हैं।

कोइराड़—जिस खेत में साग-तरकारी उत्पन्न की जाती है। कोइरी जाति का साग तरकारी की खेती करना विशेष उद्यम है।

पेड़ी—ईख कट जाने पर उसकी जड़ को पेड़ी या पेड़ा कहते हैं इसी आधार पर खेत को भी पेड़ी कहते हैं। पेड़ी खनकर निकालने को पेड़ी या पेड़ा मारब (मारना) कहते हैं। पेड़ी से ही जब ईख की अगली फसल काटनी होती है तब पेड़ी को खेत में पड़ा रहने देते हैं; इस प्रकार पेड़ी छोड़ देने को पेड़ी या पेड़ा राखब (रखना) कहते हैं। पेड़ी का खेत सब खेतों से मूल्यवान् होता है, इसलिए गृहस्थ इसको निकालना उतना ही पाप समझता है जितना कन्या का; यथा, कहावत है 'पेड़ी औ बेटी न निकारे का।' यहीं तक नहीं, कहते हैं, 'पेड़ी निकारे रोगी होइ बेटी निकारे कोढ़ी होइ' अर्थात् पेड़ी बेच देने पर मनुष्य रोगी हो जाता है और बेटी निकालने पर कोढ़ी। किसान को पेड़ी पर इतना गर्व होता है कि वह किसी साधारण व्यक्ति से झगड़ा होने पर कह बैठता है, 'का तू हमार पेड़ी निकार लेब ?' अर्थात् क्या तुम हमारी पेड़ी छीन लोगे ? इसी प्रकार जब कोई किसान किसी की धमकी-पटकी सुनकर क्रोधित हो उठता है तब कहता है, 'जा हमार पेड़ी निकार ल अउर का ?' अर्थात् जाइये हमारा पेड़ी का खेत निकाल

लीजिए और इससे अधिक क्या ? इसीलिए किसान जब किसी की पेड़ी जोतता है तब उससे दबकर रहता है। जिससे वह दबा नहीं रहता उसके सामने तो वह सिर ऊँचा करके कह उठता है 'का तोहार पेड़ी जोते हई ?' अर्थात् क्या तुम्हारी पेड़ी जोते हुए हूँ ?

कटी हुई फसल के आधार पर:

६. जरी—खरीफ के खेतों को फसल कट जाने पर जरी का खेत कहते हैं। फसल कटने पर खेतों में जर (जड़) रह जाती है इसीलिए यह नाम है। जिस खेत से जो वस्तु कटती है उस खेत को उस वस्तु की जरी कहते हैं यथा सनई की जरी, बजरा की जरी, सावाँ की जरी आदि।

धनखर या धनहा—जिस खेत से धान की फसल कटी हो।

सनइहा या सनइहटा—जिस खेत से सनई कटी हो।

सौंहटा—जिस खेत से सावाँ कटा हो।

जोन्हरिहा—जिस खेत से जोन्हरी कटी हो।

बजड़हा—जिस खेत से बजड़ा कटा हो।

चरिहटा—जब बजड़ी चारा के लिए घनी बोई जाती है तब उसे चरी कहते हैं, और खेत को चरिहटा कहते हैं।

केरौटा—जिस खेत से केराव (मटर) काटी गई हो।

जवनार—जिस खेत से जौ कटा हो।

चनहटा या चनहा—जिस खेत से चना कटा हो।

खुँटिहन—अरहर कट जाने पर उसकी जड़ खूँटी के रूप में रह जाती है, इसीलिए अरहर कटे खेत को खुँटिहन कहते हैं।

२

खेती की साधारण बातें

खोदना

खोदने का औजार :

१०. फरसा या फरुहा—इसके दो भेद हैं :

(क) देसी—इसे देहाती लोहार बनाते हैं।

(ख) विलायती—इसे तबलिहा, तबलिअहवा या दबलिअहवा भी कहते हैं। यह कारखानों से बनकर आता है। इसका लोहा ढला हुआ होता है। इसका रूप डुग्गी वाले तबले के सामने वाले भाग से मिलता है। इसीलिए इसे तबलिहा कहते हैं। यह देशी फरसे से हलुक (हलका) होता है।

फरसे के विभिन्न अंग :

(क) पासा—फरसे के पिछले भाग में जो सूराखदार गोला भाग होता है।

(ख) बेंट—यह वह लकड़ी है जो पासा में डाली जाती है और जिसे पकड़ कर फरसा चलाया जाता है। तबलिहा का बेंट टेढ़ (टेढ़ा) होता है जिससे यह अधिक लहता या बहता (काम देता) है। इस प्रकार लहने वाले फरसे को लहाँकू कहते हैं।

(ग) पत्तर—पासा से लगा हुआ जो लोहे का चद्दर होता है उसे पत्तर कहते हैं। यह पासे के पास लगभग सात-आठ इञ्च और किनारे पर चार-पाँच इञ्च चौड़ा होता है। तबलिहा का पत्तर लगभग सब जगह एक सा होता है।

(घ) धार—पत्तर के किनारे के पतले हिस्से को धार कहते हैं। देसी फरुहा की धार तबलिहा से लंबी होती है जिससे वह गहरा घाव करती है। फरसा एक बार में जितनी मिट्टी उठाता है उसे एक छेव या छेही कहते हैं।

खेत खनना :

११. खेती को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि खेत प्रत्येक दूसरे-तीसरे वर्ष खन (खोद) दिया जाया करे। खनाई न होने से खेत की मिट्टी कड़ी पड़

जाती है। खेत के भीतरी भाग की मिट्टी की सतह जिसे तावा कहते हैं खेत न खनने से कुछ दिनों में बहुत कड़ी हो जाती है, जिससे हल चलने में कठिनाई होती है। तावा के इस प्रभाव को तावा मारब (मारना) कहते हैं। खेत खनने पर जो नीचे की मिट्टी ऊपर आ जाती है उसे अरइठ कहते हैं। यह मिट्टी खेती के लिए तब तक उपयुक्त नहीं होती जब तक धूप और पानी पाकर यह ठीक न हो जाय। पानी खाने से अरइठ का दोष नष्ट हो जाता है। पानी खाने को ओयट, ओवैट या वैट खाब (खाना) कहते हैं। ओयट खाने से खनी हुई मिट्टी गल जाती है।

साधारणतः किसान भदवारा (भादों की वर्षा) में खेत खनता है। वर्षा समाप्त होते ही वह उसे जोत और हेंगाकर चैता फसल बोने के योग्य बना लेता है। जो खेत देर में खने जाते हैं और बोने के समय तक पक (तैयार) नहीं जाते उनको अच्छा नहीं माना जाता। ऐसे खेत पर अरइठ का प्रभाव बना रह जाता है इसे अरइठ मनाइब (मनाना) कहते हैं। खरीफ फसल काट लेने के बाद भी खेत खनते हैं। माघ में खने खेत को मघौटल कहते हैं। माघ में खेत को धूप, वर्षा तथा ओस सब कुछ मिलता है, इसलिए माघ का खना हुआ खेत अच्छा माना जाता है। यह महीना किसान के लिए बैठक का होता है जिससे खनाई के काम में सुविधा होती है।

आरि झारना :

१२. खेत खनते समय उसकी मेंड़ को काट-छाँट कर ठीक करते हैं। इस प्रकार मेंड़ का किनारा सुडौल हो जाता है। इसे आरि झारब (झारना) या आरि मारब (मारना) कहते हैं। मेंड़ के अगल-बगल की जमीन को मंड़ैारी कहते हैं। जो खेत खने नहीं जाते उनकी आरि लगातार जोताई तथा हेंगाई से ऊँची हो जाती है; ऐसे खेत की आरि झारने का कार्य जोताई के समय होता है। जोताई समाप्त करते समय हर को मेंड़ की बगल-बगल दबाकर घुमाते हैं जिससे मेंड़ सुडौल हो जाती है। इस प्रकार मेंड़ की बगल जो नाली बनती है और उससे जो मिट्टी बाहर आती है उसे खेत के अंदर की ओर फेंक दिया जाता है। इस क्रिया को आरि फेंकब (फेंकना) कहते हैं।

छँटनी मारना :

१३. खेत खनने से उसकी घास नष्ट हो जाती है। जो खेत नहीं खने जाते उनकी घास को जोताई के पूर्व खनकर निकाल देते हैं। यह कार्य बहुधा वर्षा के पूर्व होता है। इसे छँटनी मारब (मारना) कहते हैं।

आरि झारने तथा छँटनी मारने के महत्त्व के संबंध में एक उक्ति है—

"आरि मेड़ सुडौल करि रहै न पावै दूब,
सबसे पहले बोइये खेत जोत के खूब।"

अर्थात् खेत की मेंड़ तथा आरि को ठीक करके जब खेत में दूब न रहे और खेत खूब जोता गया हो तब बोना चाहिए।

जोतना

जोतने का औजार :

१४. जोताई के लिए हर (हल) का प्रयोग होता है। हल के नीचे लिखे मुख्य भाग होते हैं। (१) हर (२) परिहथ (३) हरिस (४) नाधा (५) जूआ।

हर :

हर—उस लकड़ी को कहते हैं जिसमें फार लगा होता है। जोताई का कार्य इसी के सहारे होता है। इसका पिछला भाग मोटा और अगला पतला होता है। यह बबूल की लकड़ी का अच्छा होता है।

टोड़ा—यह हर का अगला पतला भाग है। इसी पर फार बैठाया जाता है। टोड़ा के अगल-बगल की लकड़ी खिया (घिस) जाने पर उसे मोटा करने के लिए दोनों ओर लकड़ी का जोड़ लगा देते हैं। इन लकड़ियों को कानी कहते हैं।

माथ, मूँड़ या मूँड़ा—हर के पिछले मोटे भाग का यह नाम है। यह जितना ही मोटा होगा उतना ही चौड़ा कूँड़ बनेगा। हर से बनाए हुए निशान को कूँड़ कहते हैं।

फार—यह एक या डेढ़ हाथ लम्बा चौपहल (चौकोर) दो अंगुल मोटा लोहे का बनता है। इसके धार वाले भाग को पीट कर नुकीला कर देते हैं। यह भाग टोड़े पर बैठाया जाता है। टोड़े पर फार अच्छी तरह बैठा रहे इस उद्देश्य से कुछ लोहे की कीलों को टोड़ा में धँसा कर फार के ऊपर से मोड़ देते हैं। इन्हें करुवार या करुवारी कहते हैं।

पाटा—हर में जहाँ हरिस डाली जाती है वहाँ पर उसका कोण ठीक करने के लिये एक लकड़ी का टुकड़ा हर के पिछले भाग में ठोंक देते हैं यही पाटा है।

पाती—पाटा के बिलकुल विपरीत हरिस की दूसरी ओर भी एक चैली (पतली लकड़ी) ठोंक देते हैं। यह भी हरिस और हर के कोण को ठीक रखने में सहायक होती है। इसे ही पाती कहते हैं।

तरइली—यह लकड़ी हरिस को कसने के लिये हर के तरे (नीचे) से ठोंकी जाती है।

हर के भेद :

१५. (क) नौहरा या नवहरा—यह नया हल होता है। इसका हर तीन-चार बीता लम्बा होता है। इससे गहरी जोताई होती है। ईख की खेती के लिये यह बहुत आवश्यक है।

(ख) अधहरा—यह नौहरा का छोटा रूप है। साधारण जोताई में यह काम आता है।

(ग) खुँटहरा—यह अधहरा से भी घिसा हुआ और छोटा रूप है। यह लगभग डेढ़ और दो बीता लम्बा होता है। फसल बोने के समय इसी का प्रयोग होता है। इसी हर से की गयी बोआई को खुँटहरा की बोआई कहते हैं। खेत ंभिक जोताई भी इसी से होती है क्योंकि इस समय खेत की मिट्टी कड़ी होती है और दूसरे हर पूरा काम नहीं दे सकते।

(घ) दबिहरा या दबेहरा—यह सबसे मजबूत हर है क्योंकि इसमें जोड़ कम होता है। इसमें हर और परिहथ एक ही लकड़ी में बने रहते हैं। दूसरे हरों में ये लकड़ियाँ अलग-अलग लकड़ी की बनी होती हैं। अफार (बिना जोता खेत) और पेड़ी को जोतने के लिये यह सब से अच्छा होता है।

परिहथ :

१६. इसके ऊपरी भाग को हरवाह अपनी मूठी से पकड़ता है। इसे मुठिया कहते हैं। परिहथ का निचला भाग इस प्रकार टेढ़ा रहता है कि वह हर से जोड़ा जा सके। यह हर के मूँड़ के नीचे रहकर उसके आश्रय का काम देता है। इन दोनों को जोड़ने का कार्य हरिस से होता है। हरिस के निचले भाग में एक चौकोर छेद बना रहता है इसी में एक लकड़ी की गुल्ली डाल देते हैं जो परिहथ को नीचे खिसकने से रोकती है। परिहथ को परिहथी, परेहथी या परेथी भी कहते हैं।

हरिस :

१७. यह पाँच छः हाथ लंबी दो अंगुल मोटी तथा चार-पाँच अंगुल चौड़ी लकड़ी होती है। इसका एक भाग हर में होता है, दूसरा भाग जुआठ से सम्बन्धित रहता है। हरिस लगाते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उसकी लकड़ी पट्ट न होकर खड़ी हो ताकि मोटाईवाला भाग ऊपर रहे। इस मोटाईवाले भाग के निचले भाग में हरिस लटकाने के लिए थोड़ी-थोड़ी दूर पर आवश्यकतानुसार दो या तीन खाढ़ी या खाड़ो (गड्ढा) कटी रहती है।

नाधा :

१८. यह एक रस्सी है जो हरिस और जुआठ को सम्बन्धित करती है; हरिस इसी पर लटकता है। हर को अबाह करने के लिये इसका उपयोग होता है। हरिस की ऊपरी खाड़ी में नाधा रहने से हर अबाह होता है अर्थात् हर गहराई में धँसता है। नीचे की खाड़ी में नाधा रहने से हर सेव चलता है अर्थात् हर गहराई में नहीं धँसता है। बैलों की ऊँचाई-नीचाई, उनकी शक्ति तथा अपनी आवश्यकता सभी बातों पर ध्यान देते हुए हर का नाधा ठीक किया जाता है। हर खूब बहे (चले) तभी नाधा ठीक समझना चाहिए।

जूआ :

१९. यह बैलों की गर्दन में डालने के लिये होता है। यह आम, कटहल आदि हलकी लकड़ी का बनता है। इसका आकार चौकोर होता है। ऊपर की लकड़ी जो बैलों के कान्ह (कंधा) पर रहती है उपल्ला कहलाती है। तरे (नीचे) की लकड़ी को, जो उपल्ला के समानांतर होती है, तरल्ला, तरेता, तरेली, तरइली या तरेहटा कहते हैं। तरल्ला बाँस का होता है। उपल्ला के बीचोबीच थोड़ा सा उठा हुआ भाग होता है जिसे महदेउवा कहते हैं। इसी पर से नाधा डाला जाता है। महदेउवा के दोनों बगल कुछ हट कर उपल्ला में सूराख होते हैं। इसी की सीध में तरल्ले में भी सूराख होते हैं। इन सूराखों में लकड़ियाँ डाल दी जाती हैं जिन्हें पचार कहते हैं। पचार उपल्ला और तरल्ला दोनों लकड़ियों को सदा समानांतर दूरी पर स्थित रखते हैं। पचार के लिए दो बाँस की कइन लेकर उसके किनारों को आवश्यकतानुसार छीलकर पतला कर देते हैं ताकि वे उपल्ला और तरल्ला की सूराखों में जा सके। उपल्ला और तरल्ला बाहर की ओर न निकल जायँ इसके लिए उन्हें आपस में, पचार पर से, रस्सी से बाँध देते है। इन रस्सियों को जोधन कहते हैं। इनको कसने और ढीला करने पर जुए का घेरा सकरा और चौड़ा होता है। तरल्ला और उपल्ला के किनारों पर भी सूराख होते हैं इनमें भी लकड़ियाँ डाली जाती हैं। ये लकड़ियाँ उपल्ला की सूराख में से होकर तरल्ला की सूराख में से निकलती हैं। इन्हें सइल कहते हैं। इस प्रकार बैलों की गरदन के लिए एक घेरा बन जाता है जिसे माला कहते हैं। जब बैल बीचो-बीच माला में न चलकर पचार या सइल से हिरिक (सट) कर चलता है तब हरवाह को हाँकने में कठिनाई होती है, लेकिन कुछ बैलों की ऐसी आदत पड़ जाती है। जूआ को जुआ, जुआठ या जुआठा भी कहते हैं।

हर नाधना :

२०. बैलों के गले में जुआठा डालने को जोखरब (जोखरना) कहते हैं। बैलों को जोखर कर खेत में ले जाते हैं और वहाँ जोताई आरंभ करने के पूर्व हरिस और नाधा को संबंधित करते हैं जिसे हर नाधब (हर नाधना) कहते हैं। ऐसा करने पर हरिस नाधा के बल पर झूलता रहता है। बैल हर को इसी नाधा के सहारे खींचता है। नाधा की रस्सी पर बहुत जोर पड़ता है इसलिए इसे बहुत मजबूत होनी चाहिए। नाधा की रस्सी महदेउवा के दोनों ओर रहने पर दोनों बैलों पर बराबर जोर पड़ता है। जब कभी एक ही बैल पर जोर देना इष्ट होता है तब नाधा को एक ही ओर कर दिया जाता है। इसे एक नद्धी नाधा कहते हैं। नाधा को महदेउवा के दोनों ओर करने को गंगा-जमुनी करब (करना) कहते हैं। जोताई समाप्त करने पर जब नाधा खोला जाता है तब उसे नाधा छुटकाइब (छुटकाना) कहते हैं। बैलों को जुआठ से अलग करने को बैल-

छटकाइब (छटकाना) कहते हैं; सइल निकालने से बैल जुआठ से अलग हो जाते हैं इसलिए इसे सइल छटकाइब (छटकाना) भी कहते हैं।

हरवाह की सांकेतिक बोली :

२१. हरवाह (हर जोतने वाला) परिहथ की मुठिया को बाएँ हाथ से पकड़कर हर जोतना आरंभ करता है। उसके दाहिने हाथ में बैलों को हाँकने के लिए एक छोटा डंडा होता है जिसे पैना, पटकन या हरजोत्ता कहते हैं। इसके एक सिरे पर बैलों को मारने के लिए बहुधा पतली रस्सियाँ या चमड़े के तीन-चार तार बँधे रहते हैं। हरवाह बैलों को हाँकते समय उनके संकेत के लिए नीचे लिखी बोली बोलता है :—

बह, ना, आँ, नाँ—वह इन्हें बैलों को चलाने के लिए बोलता है।

होर—वह इसे बैलों को रोकने के लिए प्रयोग में लाता है।

बाँव, बाँ—वह इसे बाँए बैल को संबोधन करने के लिए प्रयोग करता है।

दाहिन, या दहिना—वह इसे दाहिने बैल को संबोधन के लिये प्रयोग करता है।

नउ-नउ—वह इसे बैलों को दाएँ या बाएँ झुकाने के लिए प्रयोग में लाता है।

पइलो-पइलो—इसका प्रयोग बैलों को खेत के माथ तक ले जाने के लिए होता है।

हराई :

२२. जोतने के लिए पूरे खेत को एक ही बार में नहीं फानते (शुरू करते) हैं बल्कि सुविधानुसार उसे कई टुकड़ों में करके जोतते हैं। जोताई के लिए गोले घेरे बनाये जाते हैं चौकोर नहीं, क्योंकि बैलों को गोलाई में घूमने में सुविधा होती है। एक बार में खेत का जितना भाग जोतने के लिए घेरा जाता है उतने को एक हराई कहते हैं और इस क्रिया को हराई फानब (फानना = शुरू करना) कहते हैं। एक हराई जब समाप्त होने में कुछ बाकी रह जाती है तभी दूसरी हराई फान ली जाती है। ऐसा करने से जोताई में आसानी पड़ती है। पहली हराई के बिना जोते हुए भाग को आँतर कहते हैं। दूसरी हराई जोतते समय इस आँतर को भी ले लेते हैं।

जोताई सम्बन्धी विशेष बातें :

२३. हर से खेत में जो निशान बनता है उसे कूँड़ कहते हैं। किन्तु ईख और तीसी के कूँड़ को मूहिं कहते हैं। मूहिं कूँड़ की अपेक्षा कुछ गहरी होती है। सिंचाई के लिए जो चौड़ी कूँड़ बनाई जाती है उसे बरहा कहते हैं। चौड़े बरहे को दहला कहते हैं।

हर एक बार में जितना घूमता है उसे फेरा कहते हैं। जोताई के समय हर

को खेत के कोनों तक ले जाकर घुमाने में कठिनाई होती है। अतः कोन के स्थान पर पहुँचने के पहले ही हर को मोड़ देते हैं। इस तरह कोन का कुछ भाग छूट जाता है। इसे कोन काटब (काटना) कहते हैं। इन कोनों को बाद में कुदार से गोड़कर ठीक करते हैं जिसे कोन घींचब (घींचना) कहते हैं।

खेत जोतते समय हराई में भी इसी प्रकार कोन काटना पड़ता है इस छूटे हुए स्थान को कोन्ञ्छी कहते हैं। इसे भी कुदार से गोड़कर ठीक करते हैं। कोन्छी छोड़ने से खेत की जोताई जल्दी समाप्त होती है। जोताई समाप्त होने को खेत गिरब (गिरना) कहते हैं।

जोताई करते समय खेत में कहीं-कहीं बिना जोती जमीन छूट जाती है उसे ठेहरी कहते हैं।

वर्षा में जोतते समय हर में घास-पात और मिट्टी बझ जाती है इसे लेट कहते हैं। हरवाह परिहथ उठाकर इसे पैना से छुड़ा देता है जिसे लेट मारब (मारना) कहते हैं।

गहरी जोताई को अवाह तथा छिछली जोताई को सेव कहते हैं। बहुत मामूली जोताई को खेत चिरचिराइब (चिरचिराना) कहते हैं। यह जोताई ऐसे समय होती है जब खेत की मिट्टी बहुत कड़ी होती है या हलकी जोताई करने की आवश्यकता होती है।

खेत की एक बार की जोताई को एक बाह या भिव कहते हैं। दो बाह जोते हुए खेत को दुबहल तथा तीन बाह जोते हुए खेत को तिबहल कहते हैं।

वर्षा में खेत की जोताई आरम्भ होती है। पहली वर्षा को लवनरा और पहली जोताई को उठौनो या उठावन कहते हैं। कभी भी वर्षा के बाद जब खेत फिर से जोता जाता है तब पहली जोताई को उठौनी कहते हैं। उठौनी के बाद की दूसरी जोताई को दाखड़ा तथा तीसरी जोताई को तेखड़ा कहते हैं।

खड़े-खड़ (लंबे-लंबे) खेत जोतने के ढंग को खड़िया तथा बेंड़े-बेंड़ खेत जोतने के ढंग को बेंड़िया कहते हैं। तिरछा या तिरकोन्ना जोतने को कोन करब (करना) कहते हैं। कोन नौहरा से किया जाता है क्योंकि इससे खेत में ठेहरी नहीं छूटती और माटी फाफर (पोली और नरम) हो जाती है।

फसल बोये हुये खेत की भी जोताई होती है. इस जोताई को बिदहब (बिदहना) कहते हैं। धान की खेती में यह क्रिया होती है। ऐसा करने से पैदावार अच्छी होती है। धान के खेत में जब पानी रहता है उस समय उसे लेव कहते हैं और उस समय की जोताई को लेव मारब (मारना) कहते हैं।

बिना जोते हुये खेत को अफार कहते हैं। जब मिट्टी कच्ची रहने पर ही खेत जोत दिया जाता है तब ऐसे खेत के लिये कहा जाता है कि 'खेत कचट ग'। खेत की नमी नष्ट होने पर कहते हैं, 'खेत ठनक ग'।

हेंगाना

हेंगाने का औजार :

२४. जोताई के पश्चात् खेत को सम करने के लिये हेंगा प्रयोग में आता है। वर्षा में हेंगे का प्रयोग कम होता है। हेंगा पाँच-छः हाथ लंबी छः-सात इंच चौड़ी और चार-पाँच इंच मोटी लकड़ी होती है। खेत हेंगाते समय यह पट्ट अवस्था में रहता है। हेंगा के दोनों किनारों पर खूँटियाँ होती हैं। इन खूँटियों में रस्सी बाँध कर हेंगा को जुआठ के दोनों सैलों के ऊपरी भाग से सम्बन्धित कर देते हैं। इन रस्सियों को बरही कहते हैं। यह लगभग छः-सात हाथ लंबी होती है। रस्सियाँ बहुत मजबूत होनी चाहिए क्योंकि हेंगाते समय इन्हीं पर जोर पड़ता है।

लकड़ी की कठिनाई से बाँस के हेंगा की प्रथा हो चली है। तीन बराबर बाँसों को एक साथ जोड़कर हेंगा के सदृश बना लेते हैं। बाँस का हेंगा ढेला खूब फोड़ता है लेकिन समतल न होने से यह कूदता चलता है और बैलों को अखरता (कष्ट प्रद होता) है।

जिस हेंगा में दो बैल लगते हैं उसे दुइबैलिया तथा जिसमें चार बैल लगते हैं उसे चरबैलिया कहते हैं। दुइबैलिया में दोनों ओर की बरही जुआठ के दोनों किनारों पर बाँधी जाती है। चरबैलिया में दो जुआठ होते हैं इसलिए इसमें एक बरही एक जुआठ के महदेउवा के पास और दूसरी दूसरे जुआठ के महदेउवा के पास बाँधी जाती है।

हेंगा से सम्बन्धी विशेष बातें :

२५. हेंगा पर चढ़कर हेंगवाही या हेंगाई की जाती है। हेंगाने वाले को हेंगवाह (हेंगवैया) या हेंगवइया कहते हैं। वह बरही को अपने हाथ से पकड़े रहता है। जब आदमी हेंगा पर नहीं चढ़ा रहता तब ऐसे हेंगा को छुच्छ (छूँछ) हेंगा कहते हैं और इस प्रकार की हेंगवाही को छुच्छ, छूँछ हेंगवाही कहते हैं। हेंगाते समय हेंगा के सामने मिट्टी एकत्र होने को हेंगा भरब (भरना) कहते हैं, ऐसी दशा में हेंगा को कुदार से ठोंक देते हैं जिससे हेंगा आगे खसक जाता है और मिट्टी हेंगा के नीचे दब जाती है। एक बार में जितनी ज़मीन हेंगाई जाती है उसे पहँटा या पलटा कहते हैं। एक पहँटे को दूसरे से मिला होना चाहिए। जब एक पहँटा दूसरे पहँटे से सटकर नहीं होता और किसी ओर जमीन छूटने लगती है तो उसे पहँटा छूटब (छूटना) कहते हैं। ऐसा उस समय होता है जब हेंगा कुछ तिरछा हो जाता है। ऐसी दशा में जिधर पहँटा छूट रहा हो उसी ओर हेंगे का रुझान करना पड़ता है। हेंगा का रुझान जिधर करना होता है उस ओर के लात (पैर) को हेंगा पर रक्खा रहने देते हैं

और दूसरा पैर हटा लेते हैं। इसे एक लत्ती मारब या लत्ती मारब (मारना) कहते हैं।

हेंगाई का नियम यह है कि खड़िया जुताई पर बेंड़िया हेंगाई और बेंड़िया जुताई पर खड़िया हेंगाई होनी चाहिए अर्थात् जोतने के विरुद्ध दिशा में हेंगाई होनी चाहिए। जब हेंगा लगता अर्थात् बराबर मिट्टी लेता है और पूरा पहँटा हेंगाता है तब खेत जल्दी गिरता (समाप्त होता) है; जब हेंगा बराबर नहीं लगता तब हेंगाई में अधिक समय लगता है।

फसल बोने पर अंकुर निकलने के पूर्व यदि वर्षा हो जाय तब खेत में पोगरी (पपड़ी) पड़ जाती है जिससे अंकुर के बाहर निकलने में कठिनाई होती है। इस समय पपड़ी तोड़ने के लिये किसान एक विशेष प्रकार का हेंगा बनाते हैं—एक बाँस में छोटी-छोटी खूँटियाँ गाड़ कर उसीसे खेत हेंगाते हैं, इससे पपड़ी टूट जाती है।

सींचना

२६. सिंचाई के निम्न साधन प्रचलित हैं—(१) बेंड़ी (२) ढेंकुर या ढेकुल (३) चरखी (४) पुर या पुरवट (५) घर्रा (६) रहँट।

बेंड़ी :

ताल, पोखरा या गड्ढा के पानी को बेंड़ी द्वारा उबह करके सिंचाई की जाती है। बेंड़ी बाँस की होती है। इसे धरिकार—एक जाति विशेष—बनाते हैं। यह बहुत कुछ दौरी (बाँस का एक बरतन) के आकार की होती है, अंतर केवल यह है कि दौरी जमीन पर रखने से सीधी बैठ जाती है पर बेंड़ी एक ओर झुक जाती है क्योंकि इसकी पेंदी सम नहीं होती है। दौरी की भाँति इसकी बारी पर भी मेखड़ा या मेड़रा बना रहता है मेड़रा के पास चार स्थानों पर, बराबर दूरी पर, छेद कर के रस्सी का चुल्ला बनाकर लगा देते हैं जिसे नाथा कहते हैं। बेंड़ी चलाने के लिये दो रस्सियाँ होती हैं जिन्हें दवन कहते हैं, ये रस्सियाँ पेंदी पर होती हुई आमने-सामने की नाथियों में से निकाली जाती हैं। दवन छोटी पड़ जाने पर जो रस्सी जोड़ी जाती है उसे गोड़ा कहते हैं। दवन के सिरों पर उन्हें पकड़ने के लिये छोटी लकड़ी बँधी रहती है जिसे गुल्ला कहते हैं।

बेंड़ी को दो आदमी आमने-सामने खड़े होकर चलाते हैं। जिस स्थान पर खड़े होकर बेंड़ी चलाई जाती है उसे पौढ़ा कहते हैं। सिंचाई की सुविधा की दृष्टि से पौढ़ा कुछ खाल (नीचा) रक्खा जाता है। बेंड़ी के पानी के लिये जो गड्ढा तैयार किया जाता है उसे बोदर कहते हैं। बेंड़ी का पानी जहाँ गिराया जाता है उसे चौंढ़ा कहते हैं। ताल या गड्ढा जहाँ से पानी लेना होता है उस

जगह से बोदर तक जो नाली बनाई जाती है उसे गोल कहते हैं। जब गोल में कम पानी आने लगता है तब उसकी मिट्टी निकालकर उसे कुछ और गहरा कर देते हैं, इस क्रिया को गोल झारब (झारना) कहते हैं। बोदर में जब पानी कम पड़ने लगता है और बेंड़ी बोरने के लिये बेंड़ी चलाने वाले को बहुत झुकना पड़ता है तब एक छोटी बोदर और बनाते हैं जिसे ठेउँका या ठेउँकी कहते हैं। गोल से पानी ठेउँका में आता है और ठेउँका से बेंड़ी द्वारा बोदर में ले आया जाता है। एक दिन में एक बेंड़ी से जितना पानी उबहा जाता है उसे एक पइन कहते हैं। जितने दिन पानी चलता है उतने पइन होते हैं। पानी जाने वाले रास्ते को भी पड़न कहते हैं।

ढेंकुर या ढेंकुल:

२७. ढेंकुर की सिंचाई कुआँ से होती है। ढेंकुर के निम्न अंग हैं—

(अ) थाम्ह या थाम (आ) ढेंकुर या बल्ला (इ) कूँड़ (ई) बरहा।

थाम्ह—कुएँ के पास दो कंछादार या कन्नादार लकड़ियाँ आमने-सामने गाड़ी जाती हैं। उन्हें थाम्ह कहते हैं। दो थाम्ह गाड़ने के बजाय एक ही थाम्ह से काम चल सकता है लेकिन थाम्ह मजबूत हो और उसके कंछों के बीच में यथेष्ट अन्तर हो। बल्ला इन्हीं थाम्हों के सहारे रहता है।

२८. बल्ला—इसे बाँस या ढेंकुर भी कहते हैं। ढेंकुर का यह मुख्य भाग है। पानी के लिये कुएँ की ओर यही झुकाया जाताहै। कुएँ की दूरी तक पहुँचने के लिये जितना बल्ला आवश्यक है उतने भाग को छोड़ कर बल्ले में एक सूराख करके एक इतनी बड़ी लकड़ी डालते हैं जो थाम्हों के दोनों कंछों तक आसानी से पहुँच सके। यह लकड़ी घुल्ला या घुरा कही जाती है। इसी के सहारे बल्ला नीचे-ऊपर आता-जाता है। इसके दोनों किनारे थामों या थाम्हों के कंछों पर रक्खे रहते हैं अथवा थाम्हों में सूराख करके बैठा दिये जाते हैं। बल्ले में घुल्ला डालने पर उसके फटने का डर होता है अतः बहुधा घुल्ले को पहले एक दूसरी लकड़ी में सूराख करके या छेद करके ठोंक देते हैं। इस लकड़ी को पिढ़ई या बिनुली कहते हैं। इसी पिढ़ई को फिर बल्ले में बाँध देते हैं।

बल्ले के पिछले भाग को भारी बनाना आवश्यक है ताकि बल्ला कुएँ के ऊपर एक उझुक्के (झटके) या एक फलाँस में चला आया करे। बल्ले को भारी बनाने के लिये उसके पिछले भाग में सरपत या पुअरा की ऐंठी हुई रस्सी लपेट देते हैं। इस रस्सी को गूर्हा या जोड़ना कहते हैं। और फिर इसी रस्सी पर मिट्टी छोप देते हैं जिसे लेदी कहते हैं।

२९. कूँड़—यह लोहे और मिट्टी दोनों की बनती है। मिट्टी की कूँड़ में चुल्ला नहीं होता। लोहे की कूँड़ सादी और चुल्ले सहित, दोनों ढंग की बनती है। जैसे नारियल का निचला भाग कुछ नोकीला होता है और जमीन पर रखने से

वह ढुलक जाता है उसी प्रकार कूँड़ भी जमीन पर बराबर नहीं बैठती। कूँड़ का ऊपरी भाग ऐसा होता है जैसा नारियल को आधे पर काट देने से होता है। कूँड़ को बरहा से संबंधित करने के लिये एक गुल्ला या घुल्ला (छोटी लकड़ी) चाहिए। जब कूँड़ में चुल्ले रहते हैं तब तो उन्हीं में गुल्ला बाँध देते हैं अन्यथा गुल्ले को कूँड़ की मुँह पर रस्सी से बाँधते हैं। साधारणतः गूहीं रस्सी कूँड़ के मुँह पर बाँधी जाती है। इस बाँधने की क्रिया को कूँड़गूहब (गूहना) कहते है। कूँड़ पेंदा की हलकी और मुँह की भारी होनी चाहिए; ऐसा होने से कूँड़ के मुँह में सुविधा से पानी चला जाता है। यदि कूँड़ का पेंदा भारी होगा और मुँह हलका तो कूँड़ पानी पर तैरने लगेगी और वह झटका देने पर ही डूबेगी। ऐसी दशा में कूँड़ में पानी देर में भरेगा।

कूँड़ का केन्द्र भी ठीक होना चाहिए। ऐसा न होने से ढेंकुर ठीक से नहीं वहता (चलता), वह हिलता-जुलता है। इस दोष को अवहब (अवहना) कहते हैं और ऐसी ढेंकुर को उकाढ़ि कहते हैं।

ढेंकुर का गुल्ला जब ठीक नहीं रहता तब ढेंकुर थाम्ह से सटकर चलता है जिसे जंघा लगब (लगना) कहते हैं।

३०. बरहा या बरेत—यह रस्सी एक ओर ढेंकुर में बाँधी जाती है और दूसरी ओर इसमें कूँड़ बंधी रहती है। यह लगभग सोलह हाथ लंबी होती है। बरहा के दोनों सिरों पर पतली रस्सियाँ रहती हैं जिन्हें छार कहते हैं। कुएँ की गहराई से जितना बरहा अधिक होता है उसे बल्ले में लपेट देते हैं।

३१. ढेंकुर चलाने के लिए कुएँ के आरपार एक लकड़ी रखी जाती है जिसे सरदर कहते हैं। लकड़ी न होने पर तीन बाँसों को जोड़कर हेंगा की तरह बना लेते हैं, और उसी से सरदर का काम लेते हैं। ढेंकुर चलाने वाला सरदर पर खड़ा होकर ढेंकुर चलाता है। कुएँ के मुँह की बारी को लिलारी भी कहते हैं। सरपत, पुअरा या ईख की पत्ती को चोटी की भाँति बनाकर लिलारी पर रखते हैं इसे चाटा कहते हैं। इसके रखने से कूँड़ में चोट नहीं लगती और लिलारी की रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त लिलारी ऊँची भी हो जाती है। बल्ला झुकाकर पानी गिराने को बल्ला तोरब (तोरना) कहते हैं। कूँड़ से पानी गिरने को कूँड़ टूटब (टूटना) कहते हैं। जिस स्थान पर पानी गिराते हैं उसे थोड़ा घेर लेते हैं ताकि पानी बाहर न जाय। इस स्थान को चौंढ़ा कहते हैं। इसी में से नारी (नाली) द्वारा पानी खेत में जाता है।

३२. ढेंकचा—ढेंकुर के छोटे रूप को ढेंकचा कहते हैं। इसका प्रयोग कुएँ पर साधारणतः नहीं होता। इसे नदी, नारा या ताल से सिंचाई करने में, जहाँ बेंड़ी चलाने का दाँव (अवसर) नहीं होता, प्रयोग में ले आते हैं। किसी नीचे स्थान से जब पानी ऊपर चढ़ाना होता है तब भी इसका प्रयोग होता है।

च र खी :

३३. चरखी के लिए भी थाम्ह, कूँड़ तथा बरहा चाहिए। चरखी का स्वरूप पतंग की डोरी लपेटने वाले परेते की भाँति होता है। इसे हम एक मोटा और पोला बेलन भी कह सकते हैं। चरखी की धुरी जब लकड़ी की होती है तब इसे डंडा कहते हैं और जब यह लोहे की होती है तब इसे गुर्रा या घुर्रा कहते हैं। परेते की भाँति चरखी के दोनों ओर चक्के होते हैं और इन चक्कों पर बाँस के फलठे जड़े रहते हैं। इसी पर से बरहा आता जाता है। चरखी जितनी ही हलकी बनी रहेगी उतना ही चरखी चलाने वाले को सुख मिलेगा, इसीलिए यह भरतू न होकर पोली बनाई जाती है। जितनी ही तेजी से बरहा के साथ चरखी चलेगी उतनी ही तेजी से कूँड़ आ जा सकेगी।

चरखी के दोनों ओर के चक्कों में सूराख रहते हैं। जिनसे डंडा बाहर निकलता है। सूराख गोल होने पर डंडा भी गोल होता है। जब डंडा गोल होता है तब वह स्थिर रहता है और केवल चरखी का चक्का घूमता है। सूराख चौकोर होने पर चरखी का डंडा चक्के में बिलकुल बैठा हुआ होता है और चरखी पूरे डंडे के साथ घूमती है। पहले ढंग की चरखी को साधारणतः डंडादार अथवा धुर्रादार तथा दूसरे ढंग की चरखी को बेलनदार कहते हैं।

कूएँ के दोनों ओर दो-दो थाम्ह गड़े रहते हैं जिनपर एक-एक बाँस रख दिए जाते हैं। एक बाँस चौंढ़ा की ओर तथा दूसरा उसके विरुद्ध होता है इन्हीं बाँसों पर चरखी का डंडा रहता है। डंडा एक ही जगह घूमे और इधर-उधर न खसके इस उद्देश्य से डंडे के अगल-बगल बाँस में काँटी ठोंक दी जाती है। इस प्रकार चरखी का एक निश्चित स्थान बना रहता है।

चरखी चलानेवाला भरदर पर खड़ा होकर चौंढ़ा की ओर मुँह करके चरखी के दोनों ओर लटकते हुए बरहे को, जिसमें कूँड़ें बँधी रहती हैं, दोनों हाथों से पकड़कर एक साथ एक कूँड़ को भारता और दूसरे से पानी गिराता है। जिस समय एक कूँड़ पानी में डूबता है ठीक उसी समय दूसरा कूँड़ चौंढ़ा पर टूटता है। इस प्रकार चरखी चलती रहती है। एक ही कुएँ पर स्थानानुसार कई चरखियाँ चल सकती हैं।

चरखी चलाते समय यदि टूट जाय तो चरखी चलाने वाले के सिर पर उसके गिरने का डर रहता है और गिरने पर बरहा गरदन पर आ जाता है। ऐसी दशा में कभी-कभी बरहा कमर तथा पैरों में लिपट जाता है और चरखी चलाने वाला कुएँ में गिर सकता है।

पु र या पु र व ट :

३४. यहाँ पुर से सिंचाई की प्रथा कम है। पुर की सिंचाई बैलों द्वारा होती है। जिस कुएँ पर पुर चलता है उस पर बैलों के चलने के लिए जो रास्ता होता है

उसे पउदर कहते हैं। पउदर कुएँ के पास ऊँची और बाद में क्रमशः ढारू (ढालू) होती जाती है ताकि बैलों को पुर खींचने में आसानी हो। एक जुआर (जोड़ा) बैल साधारणतः एक पहर तक चलता है। इन बैलों को पुरवटिहा बैल कहते हैं।

३५. थून्ह, बाँस या बल्ला—साधारणतः कुएँ के दोनों बगल आमने-सामने दो थून्हें गाड़ दी जाती हैं और इन पर बाँस या बल्ला रखकर बाँध देते हैं। इसी बाँस पर धुरई खड़ी करते हैं। थून्ह के स्थान पर दोनों ओर ईंट या मिट्टी की छूही या पाया भी बनाते हैं। और इन पर लकड़ी या बाँस रख देते हैं।

३६. धुरई—इसमें दो बाँस होते हैं। इन बाँसों का निचला भाग एक दूसरे से जुटा रहता है। पर इनके ऊपरी भाग में एक या डेढ़ हाथ का अंतर रहता है। दोनों बाँसों के बीच में एक खूँटी डाल दी जाती है जिससे बाँसों में अंतर हो जाता है। बाँसों के ऊपरी भाग में गड़ारी का गुर्रा, घुर्रा या सर्रा रखने के लिए खूँटियाँ गड़ी रहती हैं। धुरई बल्ले पर ढालू रक्खी जाती है और इसका निचला भाग पउदर में कुएँ के पास गाड़ देते हैं। इस भाग को एड़ा कहते हैं। एड़ा जमीन में ठीक तरह से गड़ा रहे अतः उसके रोक के लिए उसके सामने एक खूँटा गाड़ देते हैं।

३७. गड़ारी—यह लकड़ी की होती है। इसके बीच में एक घर (गड्ढा) बना रहता है जिस पर से नार (मोटा रस्सा) आता जाता है।

३८. नार—कुएँ की गहराई के हिसाब से यह लम्बा होता है। इसका एक किनारा बैल के जुआठ में और दूसरा मोट में बँधा रहता है।

मोट—यह चमड़े का होता है। इसके किनारे पर बराबर दूरी पर चमड़े की चकतियाँ लगाते हैं जिन्हें दीया कहते हैं। इससे किनारा मजबूत बना रहता है। दीया पर कई छेद बना दिए जाते हैं। मोट के मुँह पर एक गोली लकड़ी लगाई जाती है जिसे मेड़रा कहते हैं। मोट और मेड़रा को आपस में, दियों के छेदों में रस्सी डालकर, सिउर (नाथ) देते हैं जिसे मोट सिउरब (सिउरना) कहते हैं। मोट को नार में लटकाने के लिए दो धनुषाकार लकड़ियाँ एक दूसरी को पार करती हुई मेड़रा में बराबर दूरी पर बाँध दी जाती हैं। इन लकड़ियों को धुरई कहते हैं। मेड़रा और धुरई के लिये सिंघोर की लकड़ी अच्छी है क्योंकि यह ओनाने (झुकाने) पर टूटती नहीं। जहाँ एक धुरई दूसरे को पार करती है वहां नार बाँधा जाता है। बड़ी मोट को चरसा कहते हैं। इसमें लगभग सोलह घड़ा पानी आता है। मोट से पानी गिराने को मोट तोरब (तोरना) कहते हैं। मोट तोड़ने वाले व्यक्ति को टेकवैया (टेकने वाला) कहते हैं। वह चौंढ़ा में खड़ा रहता है और मोट के ऊपर आते ही उसे चौंढ़ा में खींचकर तोड़ देता है। धुरई से एक रस्सी चौंढ़ा में लटकती रहती है, उसे टेकवैया बाएँ हाथ से पकड़े रहता है ताकि मोट तोड़ने के बाद जब मोट झटके से कुएँ में फेंकी जाती है वह स्वयं भी न झटक उठे।

घर्रा

२६. यह भी पुर की तरह खींचा जाता है लेकिन इसमें बैल नहीं लगते बल्कि इसे आदमी खींचते हैं। नार में तीन-चार स्थानों पर बराबर दूरी पर छोटे-छोटे डंडे बँधे रहते हैं; इन डंडों के दायें-बायें आदमी खड़े होते हैं और बीच में नार रहता है। घर्रे में ग्यारह आदमी लगते हैं।

साठ मोट खींचने पर एक बार विश्राम का समय आता है। एक मोट खींचने पर एक गोंटी (कंकड़ का टुकड़ा) अलग निकाल कर रख देते हैं इसी से गिनती गिनते जाते हैं। जब साठ गोंटी हो जाती है तब तीन आदमी छूट जाते हैं और उनकी जगह पर सुस्ताये हुए आदमी आ जाते हैं। गिनने के इस ढंग को भी गोंटी कहते हैं।

गड़ारी चलते-चलते गरम होकर आवाज करने लगती है जिसे टिहुकब (टिहुकना) कहते हैं इसे शान्त करने के लिए गड़ारी के छेद में रेंड़ी का तेल देते हैं।

रहँट :

४०. यह सिंचाई का सबसे अच्छा साधन है किंतु इसके लिए बड़ा कुआँ होना चाहिए। एक बार यदि रहँट लगा दिया जाय तो बहुत दिन तक चलता है। सिंचाई के तरीकों में यह सबसे अधिक मूल्यवान् है, इसलिये केवल बड़े किसान ही इसे लगा सकते हैं।

रहँट में तीन चाक अर्थात् चक्कर लगाने वाले पहिये होते हैं जिनमें दो कुएँ के बाहर होते हैं और एक कुएँ के भीतर। कुएँ के भीतर वाले चाक को चलाने के लिए ही ऊपर वाले चाकों की आवश्यकता होती है। ऊपर के जिस चाक में बैल चलता है वह मझला चाक है। यह बाएँ से दाहिने को चलता है इसके चलने पर छोटा चाक पहिये की भाँति ऊपर से नीचे को चलता है। इसके चलने पर कुएँ के भीतर वाला चाक पहिये की भाँति चक्कर करता है। घड़ी के चाक की भाँति इन चाकों का किनारा कटा हुआ दनदानेदार होता है; इस कटे हुए अंश को छीमी कहते हैं। मझले चाक की छीमी छोटे चाक की छीमी से फँसी होती है और फिर इस छोटे चाक से कुएँ वाले चाक का सम्बन्ध रहता है। इस तरह ये तीनों चाक एक साथ चलते रहते हैं।

कुएँ के अंदर वाले चाक में चारों ओर सीढ़ी की तरह छड़ लगे रहते हैं जिन्हें पखी कहते हैं। प्रत्येक पंखी में एक बालटी होती है। इस प्रकार पूरे चाक में बालटियाँ लगी रहती हैं, इन्हीं बालटियों में पानी भरता है। जब चाक घूमता है तब इन बालटियों में पानी भरता जाता है। कुएँ के मुँह के पास एक टिन का बड़ा टुकड़ा लगा रहता है इसी में बालटी का पानी गिरता है। इस स्थान को चौंढ़ा कहते हैं। दस-बारह हाथ लंबी, लगभग एक बीता चौड़ी तथा चार अंगुल मोटी

लकड़ी के बीच में एक सूराख करते हैं इस लकड़ी को मझले चाक के साम या मूसर में जड़ देते हैं। इसी लकड़ी के सहारे लकड़ी के दोनों ओर एक-एक जोड़ी बैल लगे रहते हैं जो रहँट खींचने का काम करते हैं। इनका चक्कर कोल्हू के बैलों की भाँति गोलाई में होता है। इस लकड़ी को हरिस कहते हैं।

सिंचाई संबन्धी विशेष बातें :

४१. ढेंकुल तथा चर्खी के चलाने में सहयोग का नियम है। सहयोग की प्रथा में काम के बदले में काम किया जाता है, मजदूरी का प्रश्न नहीं उठता है। पानी चलाते समय बीच-बीच में आदमी बदलते रहते हैं; जितनी देर एक आदमी या एक गिरोह काम करता है उतनी देर को ओहार कहते हैं। एक हाँडी में, जिसकी पेंदी में एक छेद होता है, पानी भर कर रख देते हैं। इसका पानी धीरे-धीरे चुआ करता है। पानी समाप्त होने पर हाँड़ी फिर भर दी जाती है। एक ओहार में जितनी बार हाँड़ी का पानी समाप्त होता है उतने समय को ओहार का माप समझ लेते हैं। इसी माप से सभी काम से छूटते हैं और उनकी जगह पर दूसरे आते हैं। इस तरह सब लोग बराबर समय काम करते हैं। लेकिन अंतिम ओहार का बदला नहीं होता। इस ओहार का नाम मुर्गा है।

गर्मी में सिंचाई साधारणतः दोपहर तक ही होती है। क्योंकि एक तो दोपहर के बाद परिश्रम नहीं होता दूसरे मामूली कुएँ में पानी भी कम पड़ जाता है। दूसरे दिन जब पानी फिर अपनी जगह आ जाता है, तब पानी चलाने का कार्य आरंभ करते हैं। पानी के इस प्रकार पूर्ववत् हो जाने को ओर पर आइब (आना) कहते हैं।

कुएँ का पानी कम हो जाने पर ढेंकुल का कढ़ाव समाप्त हो जाता है और बरहा छोटा पड़ जाता है। अतः बरहा को बढ़ाना पड़ता है। लेकिन बरहा बढ़ जाने पर लेदी जमीन छूने लगती है। ऐसे दशा में जहाँ पर लेदी जमीन छूती है वहाँ गडढा बना दिया जाता है, ताकि लेदी उसी गड़हे (गड्ढे) के अंदर चली जाय। ऐसा करने से ढेंकुल का कढ़ाव बढ़ जाता है और ढेंकुल चलाने में सुविधा हो जाती है।

ढेंकुल तथा चरखी चलानेवालों के हाथों में घट्ठे पड़ जाते हैं। बरहा की लगातार रगड़ से हाथ सुरक उठता है अर्थात् हथेली का चमड़ा उकिल (निकल) जाता है। इस प्रकार सुरका से हाथों से खून तक बहने लगता है।

ढेंकुल, चर्खी, पुर आदि आरंभ करने को पानी नाधब (नाधना) या पानी जोरब (जोरना) तथा इन्हें चलाने को पानी चलाइब (चलाना) कहते हैं। पानी बन्द करने के लिये खेत में काम करने वाला आदमी कुएँ पर वाले आदमी को गोहरा (पुकार) कर कहता है, 'राम कहि द' अर्थात् राम कह दो।

४२. पनिवट—कुएँ से खेत तक पानी जाने के लिये रास्ता निश्चित होता

है। जिस रास्ते से सिंचाई की जाती है उस रास्ते पर किसान का हक हो जाता है। उस सिंचाई के रास्ते को कोई बन्द नहीं कर सकता। इसे पनिवट कहते हैं।

नारी—पनिवट से खेत तक जो रास्ता पानी जाने के लिये बनाया जाता है उसे नारी (नाली) कहते हैं। पतली नारी को धुलारा कहते हैं। नारी से खेत तक पानी ले जाने में यदि कहीं कुछ जमीन नीची पड़ जाय तो उसे पाटना पड़ता है। इस प्रकार मिट्टी पाटकर ऊँचा करने को बहर चढ़ाइब (चढ़ाना) कहते हैं और उसके ऊपर जो नारी बनती है उसे बहरी कहते हैं। नारी में जब पानी मुहँमुँह भरा रहता है तब ऐसी नारी को बुजकल या बुजें-बुज भरी नारी कहते हैं। यदि नारी कहीं कटी होती है तो उसे ठीक करने को तावन लगाइब (लगाना) अथवा तावन फेरब (फेरना) कहते हैं। एक नारी से दूसरी नारी में पानी फेरने के लिये पहली नारी का रास्ता मिट्टी रखकर बन्द किया जाता है। इस मिट्टी को गरवध तथा इस क्रिया को गरवध बाँधब (बाँधना) या गरवध फेरब (फेरना) कहते हैं।

मतबरहा तथा बरहा—खेत के माथ पर जिधर से सिंचनी (सिंचाई) की सुविधा होती है बड़ी नारी बना देते हैं। इस नारी को मतबरहा या मथबरहा कहते हैं और इससे निकलने वाली नारियों को बरहा कहते हैं। मतबरहा से जिस स्थान पर बरहा निकलता है उसे गलारा कहते हैं। यदि खेत सम न होकर बीच में ऊँचा हुआ तो मतबरहा नहीं बनाते, उसकी जगह पर खेत में तिरछे-तिरछे एक कोन से दूसरे कोन तक बीचो-बीच नाली बना देते हैं जिसे बड़ेरा कहते हैं।

पनिहाव—सिंचाई को अत्यंत ठेठ बोली में पनिहाव भी कहते हैं। ऐसी जमीन जहाँ पानी नहीं पहुँचता उद्धध कहलाती है।

४३. फरुही—यह लकड़ी की होती है। इसी के द्वारा नारी बनाई जाती है फरुही अर्द्धचंद्राकार होती है। यही फरुही का मुख्य अंग है। इसमें एक छेद होता है जिसमें डंडा डाला जाता है। डंडा लगभग चार हाथ लम्बा होता है। इसको पकड़कर फरुही से काम लिया जाता है। फरुही में डंडा रुका रहे इस दृष्टि से फरुही के पिछले भाग में डंडे का जो भाग निकला रहता है उसमें एक गुल्ली (लकड़ी का काँटी) डाल देते हैं। कुछ लोग फरुही की सूराख में ही खीपा या पाचर (लकड़ी का टुकड़ा) ठोंककर डंडा बैठा (स्थिर कर) देते हैं पर यह ढीला पड़ जाता है।

४४. कियारी—सिंचाई के लिए ईख के खेत में छोटे-छोटे घेरे बनाये जाते हैं जिन्हें कियारी कहते हैं। कियारी बनाने को कियारा गढ़ब (गढ़ना) कहते हैं। कियारी की मेंड़ को डुड़हा कहते हैं। कियारी द्वारा सींचने को कियारी भरब (भरना) अथवा कियारी देब (देना) कहते हैं। सिंचाई जब हलकी की जाती है तब उसे हलुक कियारी कहते हैं, इससे कियारी में पानी फैल जाता है

और भरपूर सिंचाई नहीं होती। इस सिंचाई को छलकउआ (छलकने वाली) कियारी भी कहते हैं। जब कियारी की डुड़ही बराबर पानी दिया जाता है तब उसे गँभीर कियारी कहते हैं। इस प्रकार कियारी देने को गहिर के कियारी देब (देना) या चभोर के कियारी देब (देना) कहते हैं। इस प्रकार जब सिंचाई होती है तब खेत अच्छी तरह पानी सोखता है। चूँकि खेत इस सिंचाई में अपनी इच्छा भर पानी सोखता है इसलिए इस प्रकार पानी रेंगने (चलने) को अपने लखे पानी रेंगाब (रेंगना) कहते हैं। एक खेत से दूसरे खेत में या एक कियारी से दूसरी कियारी में अथवा मतबरहा से बरहा में पानी ले जाने को पानी बराइब (बराना) कहते हैं। पानी बरानेवाले को बरवैया और कियारी बराने वाले को कियरिहा कहते हैं।

४५. पाहा—चना का खेत सींचने के लिए बड़ी-बड़ी कियारियाँ बनानी पड़ती हैं जिन्हें पाहा कहते हैं। पाहा में पानी भरपूर नहीं दिया जाता। पानी रेंगते ही बरहा कर मुँह बाँध देते हैं अतः इस प्रकार की सिंचाई को पाहा रेंगाइब (रेंगाना) कहते हैं।

४६. चढ़ान और लौटान—बरहा के दोनों बगल के खेतों में एक ओर की सिंचाई पानी के चढ़ाव (जाते समय) पर होती और उस ओर की सिंचाई समाप्त होने पर दूसरे बगल की सिंचाई लौटान के समय होती है। इसीलिए इन सिंचाइयों को क्रमशः चढ़ान और लौटान की सिंचाई कहते हैं।

बरही—दो बरहों के बीच जो खेत का भाग होता है उसे बरही कहते हैं।

एकवइया—खेत के किनारे के भाग को जो मेंड़ और बरहा के बीच में होता है एकवइया या एकवैया कहते हैं।

४७. हाथा—यह चिलबिल, गूलर, कटहल, बढ़हल आदि हलकी लकड़ी का अच्छा होता है। इसकी लंबाई एक लाठी के बराबर होती है। इसके निचले भाग को, जिससे पानी उलीचा जाता है खोरिया कहते हैं। हाथा के ऊपरी भाग को, जिसे दोनों हाथों से पकड़ते हैं, डाँड़ी कहते हैं।

हाथा से सिंचाई के लिए बरहा में थोड़ी-थोड़ी दूर पर थाला बनाना पड़ता है। थालों में बरहे का पानी एकत्र होता है और वह हाथा द्वारा उलीचा जाता है। हाथा चलाने वाले को हथवाहा या हथवैया कहते हैं। हाथा की सिंचाई जब बहुत मामूली होती है तब उसे पानी बुदकारब (बुदकारना) कहते हैं। इसे धूल बुताइब (बुताना) भी कहते हैं। इस प्रकार की सिंचाई मिट्टी को नरम कर देती है। यहाँ रबी की सिंचाई साधारणतः हाथा द्वारा ही होती है क्योंकि यदि पानी खेत में रेंगा दिया जाय तो फसल चौपट (नष्ट) हो जाय। हाथा चलाने को हाथा मारब (मारना) कहते हैं और थाला या थाल्हा बनाने का थाल्हा बान्हब (बाँधना) या थलबंदी करब (करना) कहते हैं।

खेत रखाना

४८. खेत बोने के बाद उसकी रक्षा का प्रबन्ध आवश्यक है। खेती की रक्षा पशु, पक्षी तथा आदमी तीनों से करनी पड़ती है।

पशुओं से रक्षा :

जंगली पशुओं में नीलगाय या नीलगाय या घँड़रोज, हरिन, गीदड़, तथा सुअर विशेष हानि पहुँचाती है। किसान इनसे बचने के लिए खेत के चारों ओर ग्वावाँ मार देते या टट्टी खड़ी कर देते हैं। लेकिन यह प्रबन्ध बहुत अच्छे किसान ही कर पाते हैं।

साँड़ और भवनिहा भैंसा जो धार्मिक दृष्टि से छुट्टे छोड़ दिये जाते हैं, चारों तरफ स्वच्छंदता से घूमते हैं और खेती को बहुत हानि पहुँचाते हैं।

कुछ पालतू पशुओं का यह स्वभाव हो जाता है कि वे अवसर पाने पर खेत की ओर खाने के लिए भागा करते हैं। ऐसे जानवरों को हरहा कहते हैं। ये भी खेती को बहुत हानि पहुँचाते हैं। जानवरों को चराते समय भी बड़ी सावधानी चाहिए नहीं तो ये भी हानि पहुँचा देते हैं। जब चरवाहा खेत का डाँड़ सावधानी से नहीं देखता तब गोरू खेत में पड़कर खेती खा जाते हैं।

पशुओं से रक्षा के निमित्त साधारणतः निम्न उपाय किये जाते हैं। खेत में आदमी के स्वरूप का एक ढाँचा खड़ा कर देते हैं। इस ढाँचे को धोख कहते हैं। धोख बनाने के लिए एक लकड़ी गाड़कर उस पर पुराना कपड़ा और पत्तियाँ लपेटते हैं और उसके सिर पर काली हाँड़ी रख देते हैं। जानवर इसे आदमी समझ कर धोखा खा जाते हैं।

एक अन्य उपाय यह है कि खेत रखाते समय किसान जानवर के पीछे कुत्ते को दौड़ाता है। कुत्ते से जानवर बहुत घबड़ाते हैं। जब कुत्ते नहीं रहते तब भी रखवार लुहा-लुहा या लिहा लिहा करके कुत्ते को ललकारने या तू-तू करके कुत्ते को बुलाने का संकेत करता है। जानवर यह सुनते ही भाग जाता है क्योंकि उसे यह भय हो जाता है कि कुत्ता आ रहा है।

एक तीसरा उपाय यह है कि खेत में कनस्टर टाँग देते हैं और इसे कभी-कभी जानवरों को भगाने के लिए पीट देते हैं। अवाज होने से जानवर डरकर भाग जाता है।

पक्षियों से रक्षा :

४९. पक्षियाँ भी खेती की जैजात या जैदाद (जायदाद) को बहुत हानि पहुँचाती हैं। इनमें कौआ, गौरैया, सुग्गा, किलहटी तथा गोबरहिया चिरई विशेष हानिकारक हैं। ये बाल को तोड़ करके उसके दानों को छिटका देती हैं। इस प्रकार ये जितना खाती नहीं उससे अधिक बरबाद करती हैं।

कौवे के दो भेद हैं—(१) डोमरा (२) कौआ। डोमरा बड़े और अधिक काले कौवे को कहते हैं। कौवे को उड़ाने के लिए हड़ा-हड़ा सांकेतिक शब्द प्रयोग करते हैं।

छोटी-छोटी चिड़ियाँ खेत में सुबह-शाम अधिक आती हैं। फुरगुद्दी नाम की चिड़िया झुंड के झुंड आती है और खेतों को बहुत हानि पहुँचाती है। इनको उड़ाने के लिए भी कनस्टर पीटते हैं पर इससे काम नहीं चलता, अतः इन्हें मारने के लिए ढेलवाँस का प्रयोग करते हैं। ढेलवाँस रस्सी से बुना जाता है यह ढेला या चेका फेंकने के लिये होता है। इसके द्वारा ढेला बहुत दूर तक जाता है। इसे हाथ में पकड़कर बहुत जोरों से घुमाते हैं और निशाना लगाकर फेंक देते हैं। ढेलवाँस को गोफना भी कहते हैं।

बच्चे पक्षियों को उड़ाने के लिए इस प्रकार गाते हैं—

हा हो चहरी, हा हो चहरी,
एक्कै बलिया तोरिहा हो चहरी,
मामा की मेंड़िया बइठि कुटुराया,
सुतुहिन माँड़ पसाया हो चहरी।

अर्थात्, हे चहरी, तुम एक ही बाल तोड़ना और उसे मामा के मेंड़ पर बैठकर खाना न कि हमारी मेंड़ पर और सुतुहियाँ भर-भर कर माँड़ पासना। हे चहरी, अब उड़ जाओ। बच्चे का भाव यह है कि चहरी ने जो कुछ तोड़ा है उसे लेकर वह उड़ जाय खेत को अब और न हानि पहुँचावे।

एक गीत इसी प्रकार और है, यथा—

हा हो चहरी, हा।
म्हार जिन खाया,
रान परोसिन क लुटि-पुटि खाया,
हा हो चहरी, हा।

अर्थात् हे चहरी, हा हो, हा हो, (उड़ो, उड़ो, मेरा खेत मत खाओ बल्कि अड़ोसी-पड़ोसी का खाओ और खूब खाओ।

बच्चे यह गीत गाते हुए ढेलवाँस चलाते हैं।

इसी प्रकार किलहटी उड़ाने के लिए भी एक गीत है—

किला किलहटी ढकना टूट,
अब जिन आया बापौ पूत।
अउबौ किहा तो हमार जिन खाया,
हमरे अड़ोसो-पड़ोसी का कूद-काद खाय।

अर्थात् किलहटी उड़ो, तुम्हारा डैना टूट गया। अब बाप-बेटे कभी न आना: यदि आना तो हमारा मत खाना—अड़ोसी-पड़ोसी का कूद-कूद कर खाना।

टीड़ी (टिड्डी) का झुंड आने पर खेत की बहुत अधिक रखवाली करनी पड़ती है। टिड्डियाँ साधारणतः वर्षा के आरम्भ में आती हैं। जिस साल तड़का (सूखा) पड़ता है उस साल इनके आने की और भी अधिक संभावना होती है।

टिड्डियों के हमले पर किसान बाल बच्चों के सहित खेत पर पहुँच जाता है और कनस्टर थरिया (थाली) आदि को बजाता है ताकि टिड्डी उड़ जायँ लेकिन इतने से सफलता नहीं मिलती। वह कूँचा और झाड़ू लेकर पौधों को झाड़ता है ताकि उस पर से टीड़ी दल उड़ जाय। टीड़ी दल थोड़ी देर में ही पौधे को चट कर जाता (खा जाता) है अतः टीड़ी खेती के लिए अत्यन्त हानिकारक है।

कहा जाता है कि टीड़ियों से फतिंगों की उत्पत्ति होती है अतः जिस वर्ष टीड़ी आती है उसके दूसरे वर्ष फतिंगों का प्रकोप होता है। इस तरह टीड़ी बहुत ही हानि पहुँचाती है। फतिंगा ईख की खेती में लगता है।

चूहे से रक्षा :

५०. चैती फसल की खेती में विशेषतः जौ-गेहूँ के खेत में, मूस (चूहा) अधिकता से लगते हैं। इनसे बचने के लिए निम्न उपाय किए जाते हैं—(१) चूहे की बिल पर धुआँ किया जाता है। ऐसा करने के लिये एक ऐसी हाँड़ी लेते हैं जिसकी पेंदी में सूराख रहता है। इस हाँड़ी में कंडा सुलगाते हैं और इसे उलट कर बिल पर रखते हैं इस प्रकार रखने से बिल में धुआँ जाता है। इस क्रिया को धुँकनी कहते हैं। (२) चूहे की बिल पर मिट्टी के पिहान (ढक्कन) को एक धनुही के सहारे खड़ा करते हैं। धनुही की रस्सी में एक पतली लकड़ी लगा कर उसमें रोटी का टुकड़ा खोंस देते हैं। जब चूहा रोटी की लालच से रोटी को छूता है तब धनुही गिर जाती है और उसी के साथ पिहान भी गिर जाता है। पिहान के गिरने के साथ चूहा दब जाता है। इस प्रयोग को जाँती कहते हैं। (३) बिल के पास छोटी-छोटी लकड़ियाँ गाड़ देते हैं. इन लकड़ियों पर रात में कुचकुचव (उल्लू) आ कर बैठते हैं। रात में जब मूस बाहर निकलते हैं तब उल्लू उन्हें पकड़ कर खा जाते हैं।

मूसों से खेती को जो हानि पहुँचती है उसे मूस की हई कहते हैं। जहाँ पशुओं से हानि होती है वहाँ पशुओं को हई कही जाती है। फसल कटने पर किसान चूहों को बिल को खनकर उसमें एकत्रित अनाज को निकाल लेता है।

आदमियों से रक्षा :

५१. चरवाहे गोरू चराते समय खेत से जायदाद की चोरी कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त राह चलने वाले गरीब लोग भी पौधों से बाल तोड़ लेते हैं। बाल नोचने से बड़ा टूटा पड़ता है। किसान का जिससे मुदैपन (वैर) रहता है वह भी

कभी-कभी रात में फसल काट लेता है. चोर तो जायदाद काटते ही हैं । जो लोग फसल को इस प्रकार हानि पहुँचाते हैं उन्हें हयार कहते हैं ।

५२. खेत की रखवारी (रखवाली) की दृष्टि से यह सुविधाजनक है कि गाँव के एक टोक (किनारे) पर एक ही प्रकार की फसल हो । जिस टोक पर जो फसल होती है उसी के नाम से वह टोक कहा जाता है यथा, ईख का टोक । इससे खेत की रक्षा में सुविधा होती है । कई रखवार होने पर मनभायन या चुहल अर्थात् सजीवता रहती है, किसी दुश्मन की हिम्मत नहीं पड़ती । वर्षा में मचान बनाकर खेत रखाते हैं । जाड़े में खेत में छोटा सा गड़ई या टाटो डाल लेते हैं । जिनके खेत गाँव से बहुत दूर होते हैं वे अपने रहने के लिए वहीं प्रबन्ध करते हैं. ऐसे स्थान को पाहा कहते हैं और उस खेत को पाहा का खेत कहते हैं ।

खाद डालना

५३. साधारणतः वर्षा का गोबर खाद के काम में लाते हैं और शेष महीनों में गोबर से उपले पाथते हैं । वर्षा का गोबर खेत के एक कोने पर या किसी और जगह एकत्र करते हैं । इस एकत्र गोबर को घूर कहते हैं । प्रायः जेठ सुदी दसहरा (ज्येष्ठ शुक्ल दशमी) से कार्तिक अमावस्या तक यह घूर एकत्र किया जाता है । वर्षा में जहाँ पशु बाँधे जाते हैं वहाँ पत्ती बिछा दी जाती है ऐसा करने से पशुओं को आराम मिलता है । पशुओं के मल-मूत्र से पत्तियाँ सड़कर खाद का काम देती हैं, इस खाद को ओछरा या कचरा कहते हैं । एकत्र घूर को वर्षा के उपरांत खेत में डालकर जोताई करते हैं । फसल बोने के समय भी इसका उपयोग करते हैं । पुरानी कराइन (छान की पत्तियाँ) तथा अरहर की पत्ती खेत में खाद के लिए डाली जाती है । नीम की खली भी बहुत अच्छी खाद मानी जाती है ।

५४. ईख कट जाने पर उसकी पत्तियों को जलाया जाता है । ये पत्तियाँ जलने पर खाद का काम देती हैं । इनके जलाने से ईख में फतिंगे नहीं लगते । ऐसा विश्वास है कि पत्तियों को जलाने से फतिंगों के अंडे नष्ट हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप वर्षा में फतिंगों की उत्पत्ति नहीं होती है ।

५५. हरी खाद की दृष्टि से सनई उत्तम समझी जाती है । सनई के पौधे जब हाथ-दो हाथ लंबे हो जाते हैं तब खेत हेंगा दिया जाता है । ऐसा करने से सनई का सब अंग खेत में मिल जाता है और वह धीरे-धीरे खाद बन जाता है ।

५६. भेड़ी-छेड़ी का मल-मूत्र बहुत अच्छी खाद है । इसके लिए खेत में भेड़-बकरी बैठाई जाती है। ऐसा करने के लिए गड़ेरिया को बुलाकर तै कर लिया

जाता है। गड़ेरिया इसकी मजदूरी भेड़ों की गिनती पर लेता है। सौ भेड़ों का एक लेहँड़ा माना जाता है: फी लेहँड़ा चार पसेरी (११० तोला = एक सेर। ५ सेर = १ पसेरी) अन्न दिया जाता है। एक बीघा खेत में साधारणतः पाँच या छः लेहँड़ा भेड़ें बैठाई जाती हैं। इस प्रकार चार या पाँच दिन तक भेड़ें बैठाई जाती हैं। उखाव (ईख के खेत) में विशेषरूप से भेंड़ें बैठाई जाती हैं। ईख के जम आने पर भी भेड़ें बैठाई जाती हैं। चैती फसल के लिए भदवारा (भादों और कुवार में भेड़ें बैठाना ठीक होता है। भदवारा में भेड़ बैठाने से एक प्रकार का कीड़ा लेंड़ी को भुर भुरा चाल डालता है; और लेंड़ी खाद के रूप में हो जाती है। बियास (धान के खेत) में माघ-फाल्गुन में भेड़ बैठाते हैं। भेड़ बैठाने के बाद खेत को एक या दो बाह जोतते हैं। आलू के खेत में भी भेड़ें बैठाई जाती हैं। भेड़ों के बदन से जो गद्दि (गन्ध) निकलती है उससे भी खेत को लाभ पहुँचता है।

लेदुर (एक प्रकार की लता) को असाढ़ में खेत में डालते हैं इसके डालने से दो-तीन साल तक खेत उपजाऊ बना रहता है।

बोना

५७. खनने, जोतने, खाद डालने तथा हेंगाने के बाद जब खेत भली भाँति तैयार हो जाता है तब बोने का कार्य होता है। बोआई को बोनो या बोउनी भी कहते हैं। बोने की दो रीतियाँ हैं एक बेंगा (बीज) छीटकर दूसरा हर द्वारा।

पैरा की बोवाई—यह साधारणतः नम जमीन में की जाती है क्योंकि नम जमीन बीज को आसानी से पकड़ लेती है। मटियरा मेंभी पैरा बोने की प्रथा है लेकिन बहुत कम। पैरा बोने का ढंग इस प्रकार है—बीज को मुट्ठी में लेकर एक बार खेत में खड़े-खड़ बोते हैं और फिर बेंड़-बेंड़े बोते हैं अर्थात् आधा बीज लम्बाई की ओर से बोते हैं ओर आधा चौड़ाई की ओर से। बेंगा छींटने के बाद खेत जोत कर हेंगा देते हैं। ऐसा करने से बीज मिट्टी में भली भाँति मिल जाता है। इस क्रिया को मेरइब (मिलाना) कहते हैं। पैरा बोने में शीघ्रता होती है। कुवारी धान की बोआई पैरा के ढंग से ही की जाती है। पैरा बोने से कुछ बीजों की हानि होती है क्योंकि जो बीज ऊपर रह जाते हैं उन्हें चिड़ियाँ खा जाती हैं।

खुँटहर की बोआई—इसमें आगे-आगे हल चलता है और उसके पीछे बोवैया (बोने वाला पुरुष) या बोउनहरि (बोनेवाली स्त्री) कूँड़ में बीज डालती जाती है। बोने के उपरांत खेत हेंगा दिया जाता है। बोआई की क्रिया खुँटहर से की जाती है। इसीलिए इस बोआई को खुँटहर की बोआई कहते हैं।

५८. अरहर, सनई तथा मेड़ुवा को अफार (बिना जोता खेत, में छीट देते हैं और छीटने के बाद खेत जोतकर हेंगा देते हैं।

बोने की क्रिया जब बराबर से नहीं होती है तो ऐसी बोआई को लुतराह या लुदकाह कहते हैं। इस बोआई में फसल बराबर से नहीं जमती।

५९. रोपना—इस क्रिया में बीज को पहले बो देते हैं और जब पौद तैयार हो जाता है तब उखाड़कर दूसरी जगह लगाते हैं। इस प्रकार की बोआई धान में होती है। रोपने के लिए की गई बोआई को बेहन डालब (डालना) कहते हैं और बीज द्वारा उगे पौधे को बेहन कहते हैं। इस बेहन को दूसरी जगह उखाड़कर लगाने को रोपब (रोपना) या बेहन रोपब (रोपना) कहते हैं। जिस खेत में बेहन डालते हैं उसे बेहनौर कहते हैं। बेहन रोपने को बेहन बैठाइब (बैठाना) भी कहते हैं।

ईख की बोआई भिन्न प्रकार से होती है। इसके लिये गहरी कूँड बनाई जाती हैं जिसे मूहिं कहते हैं। ईख के छोटे-छोटे गाँठ युक्त टुकड़ों को काटकर मूहिं में बेंड़े-बेंड़ डालते हैं। इन टुकड़ों को पताँड़ कहते हैं।

गोड़ना

६०. फसल बोने के बाद सिंचाई तथा गोड़ाई की क्रिया बराबर होती रहती है। सिंचाई के उपरान्त यदि गोड़नी (गोड़ाई) न हो तो खेत की मिट्टी बैठ जाय और फसल खराब हो जाय। खेत की नमी कायम रखने के लिए गोड़ाई अत्यन्त आवश्यक है। ईख के सम्बन्ध में एक कहावत है 'तीन कियारी तेरह गोड़ तब ताका हौदा की ओर' इससे गोड़ाई का महत्त्व स्पष्ट है। ज्वार की गोड़ाई भी बहुत आवश्यक समझी जाती है। तरकारियों में आलू, गंजी, अरुई तथा गोभी की गोड़ाई भी अत्यन्त आवश्यक है।

गो ड़ा ई का औ जा र :

६१. कुदार—इसके विभिन्न अंग इस प्रकार हैं:—

(क) बेंट—कुदार में लकड़ी का जो डंडा होता है उसे कहते हैं। बेंट पकड़कर कुदार चलाई जाती है।

(ख) पासा—यह कुदार का पिछला गोला भाग है जिसमें बेंट डाला जाता है।

(ग) धार—यह कुदार का नुकीला भाग है।

(घ) पवाँरी—यह पासा और धार के बीच का भाग है।

कुदार की धार घोंठिल या गोंठिल (कुंद) हो कर जब मोटी हो जाती है तब

कहते हैं कि धार में ठेहरी पड़ गई है। ऐसी दशा में लोहार से उसे पिटवाना पड़ता है। लोहार जब धार पीट कर देता है तब उसे पत्थर पर पानी डाल कर तेज करना पड़ता है जिसे पहँटब (पहँटना) कहते हैं। कुदार घिस कर जब छोटी हो जाती है तब उस पर नया लोहा जोड़ा जाता है। इस प्रकार नया लोहा जोड़ने को अछारब (अछारना) कहते हैं।

६२. कुदार के गोड़ने से एक बार में जो नाली बनती है उसे सोक कहते हैं। खेत में कोन्छी तथा कोन बोने के लिए सोक बनाना पड़ता है। गोड़ाई के समय कुदार से गहरी चोट नहीं मारी जाती। गोड़ाई के फल-स्वरूप मिट्टी के छोटे-छोटे टुकड़े निकलते हैं उन्हें चिप्पा-चिप्पी कहते हैं।

कुदार से खनने का भी काम लेते हैं। कड़ी जमीन में फरसा नहीं काम देता है कुदार से ही खनाई करनी पड़ती है। नुकीली होने से कुदार कड़ी से कड़ी मिट्टी में धँस जाती है।

कुदार जब घिस कर छोटी हो जाती है तब उससे ईख काटने का काम लेते हैं। कुछ लोग ईख काटने के लिए छोटी सी कुदार बनवा लेते हैं। ऐसी कुदार को उखकटिया (ऊख काटने वाली) कुदार कहते हैं।

निराना

६३. निराई की क्रिया धान में बहुत आवश्यक है। इसे सोहनी वा निरवाही भी कहते हैं। यह कार्य स्त्रियाँ करती हैं। निरवाही के समय स्त्रियाँ गीत गाती हैं। इन गीतों को निरवाही के गात कहते हैं। धान की निरवाही में डोरा, सँवई मोथा, मुटमुर, दूब आदि घासें निकलती हैं। ये घासें पशुओं के खाने के काम में आती हैं। निराई करने से धान में विश्वास आने में सुविधा होती है।

नि रा ई का औ जा र :

६४. खुरपा तथा खुरपी—इसके निम्न अंग हैं :

(क) धार—खुरपे के किनारे वाले भाग को कहते हैं।

(ख) गूँज—खुरपे के दूसरे किनारे पर के उस नोंक को कहते हैं जो पकड़ने वाली लकड़ी के भीतर डाला जाता है।

(ग) बेंट—खुरपे को पकड़ने के लिए जो लकड़ी लगती है उसको कहते हैं। इसका पिछला भाग नीचे को झुका रहता है इससे खुरपा चलाने में आसानी पड़ती है। गूँज को बेंट में डालने के बाद उस जगह मजबूती के लिए लोहे की मुनरी पहना दी जाती है।

खुरपे की धार जब गोंठिल हो जाती है तब कहा जाता है कि खुरपे में ठेहरी पड़ गई है। लोहार इसे पीटकर ठीक करता है। तेज करने के लिए कुदार की भाँति इसे भी पत्थर पर पानी डालकर पहँटते हैं। पहँटने को पथरना भी कहते हैं। पथरते-पथरते जब धार खुल जाती है तब धार पर से एक लोहे का बार छूट जाता है।

खेत निराने में खुरपी का प्रयोग होता है क्योंकि इसमें पौधे घने होते हैं। निराई बड़ी सावधानी से करनी चाहिए अन्यथा पौधों के कट जाने का भय रहता है।

खुरपे का प्रयोग घसियारे घास छीलने में करते हैं। घास छीलने वाली स्त्री को घसनहरि कहते हैं। बाजड़ा तथा ईख आदि बड़े पौधों के काटने में भी खुरपे का प्रयोग होता है।

काटना

६५. फसल की कटाई के लिए कटिया शब्द अधिक प्रयुक्त होता है। चैती फसल ही मुख्य फसल है और इसी समय कटिया आरम्भ होती है।

कटिया का औजार :

हँसुआ या हँसिया—यह दो प्रकार का होता है :

(क) सादा हँसुआ—इसे धमकनवा हँसुआ भी कहते हैं। इसकी धार सादी होती है।

(ख) दँतारा हँसुआ—इसको धार में दाँत बने होते हैं। दाँतों के कारण हरी फसल काटने में सुविधा होती है। यह धान तथा सनई के काटने में विशेष रूप से प्रयुक्त होता है। सरपत भी इसी से काटते हैं।

हँसुआ—इसके विभिन्न अंग इस प्रकार हैं :—

(क) बेंट—हँसुआ पकड़ने के लिए जो लकड़ी लगी रहती है उसे बेंट कहते हैं।

(ख) गूँज—बेंट के अन्दर डालने के लिए हँसुआ में जो नोकीला भाग होता है उसे गूँज कहते हैं।

(ग) धार—हँसुए की शकल टेढ़े चाँद ऐसी होती है। हँसुए के जिस भाग से कटाई का काम लिया जाता है उसे धार कहते हैं।

(घ) डाँड़ी—हँसुआ की धार और बेंट के बीच में जो लोहे का मोटा भाग होता है उसे डाँड़ी कहते हैं। यही लोहा किनारे की ओर पीटकर धार के रूप में पतला कर दिया जाता है।

कटिया का ढङ्ग :

६६. कटिया के दो ढंग हैं—(१) लेहना (२) लवनी।

लेहना—फसल काटते समय कटवैया बाएँ हाथ की मूठी द्वारा पौधों को पकड़ता है और दाहिने हाथ में हँसुआ लेकर उन्हें काटता है। एक बार में जितना वह काटता है उसे मूठा कहते हैं। कटवैया, कुछ मूठों को काट कर एक जगह एकत्र कर देता है और फिर आगे बढ़ता है। इस प्रकार वह काट-काट कर छोटा-छोटा ढेर लगाता चला जाता है। इस ढेर को लेहना और इस प्रकार ढेर लगाने को लेहनियाइब (लेहनियाना) कहते हैं। यह बोझ इतना होता है जितना कि अँकवार में आ सकता है। खेत कट जाने पर कटवैया लेहना को एकत्र करता है। मजदूरी के रूप में कटवैया प्रति बीस, पचीस अथवा तीस लेहनों के पीछे एक लेहना पाता है जिसे क्रमशः बीसा, पचीसा और तीसा कहते हैं।

६७. लवनी—इस प्रथा के अनुसार कटवैया को कटे हुए बोझों में से नहीं बाँटा जाता बल्कि वह स्वयं अपने लिए एक बोझ विशेष ढंग से बनाता है। यह बोझ अन्य बोझों से अधिक बड़ा होता है और इसके बाँधने का ढंग भी भिन्न होता है। साधारण बोझों में बाल की जड़ एक ओर रहती है और बाल दूसरी ओर पर लवनी (कटवैया का बोझ) में बाल अन्दर होती है और जड़ें दोनों ओर निकली रहती हैं। थोड़ी-थोड़ी बालों को लेकर उनको इस प्रकार बैठाते हैं कि बालें अधिक आती हैं। इस क्रिया को लवनी बैठाइब (बैठाना) या लवनियाइब (लवनियाना) कहते हैं। किसान लवनी का कुछ भाग निकाल कर बाकी कटवैया को दे देता है।

दाँना

६८. कटिया होने के बाद सारा अनाज एक स्थान पर रक्खा जाता है। इस स्थान को खरिहान या खलिहान कहते हैं। इसे किसान ऐसे स्थान पर बनाता है जहाँ उसे अनाज की दँवाई में सुविधा होती है। वर्षा से बचत के लिए वह बाग में खरिहान बनाता है। गाँज रखने में इस बात का ध्यान रखते हैं कि उसमें पानी न समस (समा) सके। गाँज में बाल अन्दर की ओर रहती है और जड़ बाहर की ओर। गाँज गोलाई में बनाया जाता है।

किसान जब चैती फसल काट चुकता है और ईख की सिंचाई आदि से खाली पा जाता है तब वह दँवाई की ओर ध्यान देता है। यह कार्य बैसाख और जेठ में होता है। पछुवाँ हवा इस कार्य के लिए अनुकूल होती है क्योंकि इसमें डाँठ (डंठल) खर हो जाता है और उसके टूटने में आसानी पड़ती है। दँवाई

का कार्य दो, चार या छः बैलों द्वारा होता है। बैलों द्वारा डंठल को कुचलवा कर दाना अलग करने को दाँउब (दाँना) कहते हैं।

६६. दँवाई के समय जो बैल नाधे जाते हैं उन सब के गेराव (गले में पड़ी रस्सी) को एक रस्सी द्वारा संबंधित कर देते हैं इस रस्सी को दँवरा कहते हैं। दँवाई के कार्य को भी दँवरी कहते हैं। दँवरी में जो बैल बाहर की ओर रहता है वह दाहिने पड़ता है इसलिए उसे दहिना कहते हैं। बाईं ओर का बैल दँवरी चलते समय मध्य में पड़ता है अतः उसे मेंढ़िया या मेंढ़िया अथवा नेंढ़िया कहते हैं।

दँवरी के लिए गाँज से अनाज फैलाने को गाँज फोरब (फोरना) कहते हैं; फैलाने के लिए ओहब (ओहना) क्रिया भी प्रयुक्त होती है इसीलिए इसे गाँज ओहब (ओहना) भी कहते हैं। दँवरी के लिए जितना डाँठ एक बार में फैलाया जाता है उसे पइरि कहते हैं। इसी पइरि पर बैल चलते हैं। बैलों को पइरि पर चलाने को दँवरी नाधब (नाधना) या दँवरी हाँकब (हाँकना) कहते हैं। जब पइरि के डाँठ टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं तब उन टुकड़ों को पँड़उस या खँड़हुला कहते हैं।

दँवाई सम्बन्धी औजार :

७०. अखर्ना—यह एक डंडा होता है जिसके किनारे का भाग लग्गी की भाँति टेढ़ा होता है। इस लग्गी के सहारे ही पइरि को उलटते-पलटते रहते हैं। ऐसा करने से डाँठ आसानी से टूटता है।

पाँचा—जिस प्रकार कंकड़ एकत्र करने के लिए दँतारा दार लम्बा फरसा होता है उसी प्रकार छिटके हुए पँड़उस को एकत्र करने के लिए पाँचा होता है। इसका नाम पाँचा इसलिए है कि इसके एक ओर डाँठ खींचने के लिये अँगुलियों की भाँति पाँच लकड़ियाँ बनी रहती हैं।

कूँचा—यह रहठे का होता है। इसे पइरि को कुचरने (बटोरने) के लिए प्रयोग में लाते हैं। कूँचे के द्वारा पइरि के बड़े-बड़े पँड़उस ऊपर आ जाते हैं। ऐसा होने से पइरि बराबर टूटती है। पँड़उस टूट कर जब बारीक टुकड़ों में हो जाता है तब उसे भूसा कहते हैं। भूसा तैयार हो जाने पर पइरि ओझा (तैयार) समझी जाती है। पइरि तैयार होने पर उसकी ढेर लगाते हैं जिसे उकाव कहते हैं।

ओसाना

७१. दँवाई के फलस्वरूप जब उकाव तैयार हो जाता है तब ओसाई का कार्य होता है। इस क्रिया को ओसाइब (ओसाना) कहते हैं। ओसाने के कार्य को ओसउनी अथवा ओसवाई भी कहते हैं। ओसाने वाले पुरुष को ओसवैया

तथा ओसाने वाली स्त्री को ओसनहरि कहते हैं। ओसाने के फलस्वरूप भूसा और अनाज अलग-अलग हो जाते हैं।

७२. ओसाने के लिए यह आवश्यक है कि हवा बहती हो। हवा न रहने पर किसी मोटे कपड़े यथा, खोल अथवा कम्बल से हवा करते हैं। इस प्रकार हवा करने को बौंरा मारब (मारना) कहते हैं। हवा के द्वारा भूसा अलग गिरता है। ओसाने के लिए एक दौरा में अनाज रक्खा जाता है। ओसानेवाला इस प्रकार खड़ा होता है कि ओसाते समय हवा ठीक से लगे। ओसाने के लिए जिस दौरी में अनाज रक्खा जाता है उसे डाली कहते हैं। हवा का रुख देख कर यह निश्चय किया जाता है कि किधर से डाली दी जाय। डाली के समय जो हवा बहती है उसी के नाम से डाली बोली जाती है यथा पूरब की हवा बहने पर पूरब की डाली तथा पश्चिम की हवा बहने पर पश्चिम की डाली। हवा जब तेज रहती है तब अनाज खूब झरझरा कर तेजी से गिराया जाता है। किन्तु अधिक तेज हवा में भी ओसाई का कार्य ठीक नहीं होता है। ओसाने के फलस्वरूप भूसा कुछ दूर पर जाकर गिरता है और अनाज भारी होने के कारण, वहीं नीचे गिरता जाता है। गाँठ भूसा से भारी होने के कारण अनाज से कुछ दूर पर अर्थात् अनाज और भूसा के बीच में गिरती है। इस गाँठ के समूह को उसी स्थान पर मेंड़ के रूप में एकत्र कर देते हैं, इस मेंड़ को गरी कहते हैं। गरी बनाने का गरी काटब (काटना) कहते हैं। भूसा बहुत दूर उड़कर न गिरे अतः उसे रोकने के लिए चारपाई खड़ी कर देते हैं। सारे भूसे को अलग एकत्र कर देते हैं और ओसाए हुए अनाज की राशि लगा देते हैं। इस क्रिया को रसियाइब (राशि लगाना) कहते हैं।

७३. **ढरियाना**—ओसाई के पश्चात् राशि को दौरी से ढरियाते है समय जो गाँठ गिरती है उसे तिसकुट (तीसी की डाँठ) या रहठा की पलौंठी (पलई का भाग) से मारकर अलग करते जाते हैं। इस क्रिया को गाँठ मारब (मारना) कहते हैं। ओसाते तथा ढरियाते समय जो अनाज इधर-उधर छिटिक (छिटक) कर गिर जाता है वह हरवाह का होता है। इस अनाज को अँगवार कहते हैं।

ओसाने और ढरियाने के बाद जो गाँठ या डंठल के टुकड़े निकलते हैं उन्हें हरवाह फिर से दाँता है और इनसे जो कुछ दाना-भूसा निकलता है वह भी उसी का होता है, और इसे भी अँगवार कहते हैं।

३

विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन

जौ

७४. जौ के लिए मटियरा की अपेक्षा दोमट अच्छा माना जाता है। मटियरा का पौधा और उसकी बालें मोटी होती हैं। दोमट की बालें और पेड़ लम्बे होते हैं। दोमट में भूसा अधिक निकलता है। जौ के लिए केरौटा खुँटिहन तथा पेड़ी का चौमासा सब से अच्छा होता है; यदि खना हुआ खेत हो तो और भी अच्छा।

वर्षा आरम्भ होते ही खेत की जोताई होने लगती है। आर्द्रा से हस्त नक्षत्र तक जोताई होने के बाद चित्रा से बोनी आरम्भ हो जाती है। किन्तु जौ के लिए स्वाति नक्षत्र सब से उत्तम समझा जाता है; कहावत है चित्रा गेहूँ, सवाती जवा, गेरुई ढाहा क हौ दवा अर्थात् चित्रा में गेहूँ और स्वाति में जौ बोने से गेरुई और ढाहा रोगों का भय नहीं रहता है। चित्रा की वर्षा तथा ओस जौ के लिए हानिकर है, ऐसा लोगों का विश्वास है। स्वाति की ओस जौ के लिए लाभप्रद बताई जाती है। चित्रा की वर्षा का दोष स्वाति की वर्षा से नष्ट हो जाता है इसलिए स्वाति जौ के लिए अत्यन्त उपयुक्त माना जाता है। एक उक्ति और भी है सवाती जवा, विशाखा भूसा, लगत अनुराधा नाधा कूट। अर्थात् स्वाति में जौ बोने से दाना अधिक पड़ता है और विशाखा में बोने से भूसा अधिक पड़ता है; अनुराधा नक्षत्र लगते ही बोआई बन्द कर देनी चाहिए। महीने के हिसाब से कार्तिक के बाद की बोआई अच्छी नहीं होती है; उक्ति है, 'सावन सावाँ अगहन जवा, जितनइ बोवा उतनइ भवा' अर्थात् यदि सावन में सावाँ तथा अगहन में जौ बोया जाय तो कठिनाई से बीज के बराबर उपज होती है।

जौ की बोआई पैरा और खुँटहर दोनों ढंग पर होती है। जहाँ नम जमीन होती है वहाँ पैरा अन्यथा सब जगह खुँटहर की बोआई होती है। जिस दिन बोआई करते हैं उस दिन हेंगाते नहीं, खेत को रात भर ओस खाने के लिए छोड़ देते हैं और अगले दिन हेंगाते हैं।

७५. बोउनी के तीसरे-चौथे दिन अँखुआ (अंकुर) निकल आता है। अँखुआ निकलने को अँखुआइब (अँखुआना) कहते हैं। अँखुआ सूई सदृश पतला एवं नोकदार निकलता है इसलिए इस अवस्था को सुइआब (सुइआना) भी कहते हैं। अँखुआ जब पत्ती का रूप ग्रहण करता है तब उसे डोभी कहते हैं। डोभी निकलने को डिभियाब (डिभिआना) कहते हैं। डोभी बढ़ जाने पर उसे पोटी कहते हैं और इस अवस्था को पोटियाब (पोटियाना) कहते हैं।

जब जौ का पौधा कुछ बढ़ जाता है तब सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है; उक्ति है, 'गेहूँ बारे जो पोटियारे' अर्थात् गेहूँ की सिंचाई छोटे रहने पर तथा जौ की सिंचाई पोटियाने पर करनी चाहिए। यह सिंचाई हाथा द्वारा की जाती है।

अगहन की वर्षा फसल के लिए अच्छी नहीं मानी जाती है; कहावत है, 'अगहन बरसे बूड़ बियाय नउन देस निराकुल जाय' अर्थात् अगहन में वर्षा और वृद्धा को बच्चा उत्पन्न होने से देश उजड़ जाता है। पूस की वर्षा लाभप्रद होती है; यथा 'जो बरसे पूस आधा दाना आधा भूस' अर्थात् पूस की वर्षा से दाना और भूसा बराबर पैदा होते हैं। पूस में वर्षा न होने पर खेत सींच दिया जाता है। पहली सिंचाई को एकरौनी और दूसरी बार की सिंचाई को दोहरौनी कहते हैं।

७६. सिंचाई के अनंतर पौधे में बियास आने लगता है अर्थात् एक पौधे में कई पौधे निकल आते हैं। पौधों के इस समूह को पँजा कहते हैं। पौधे की बाढ़ को हबसब (हबसना) कहते हैं। इसी भाव से हरे-भरे खेत को हबसल खेत कहते हैं। पौधा जब बढ़ता नहीं और केवल इतना बड़ा होता है कि उसमें कौआ छिप सके तब उसकी बड़ाई का बोध कराने के लिए कौआ ढुकान विशेषण का प्रयोग होता है। यह प्रयोग अच्छी फसल के लिए नहीं किया जाता है।

७७. पूस मास तक पौधा अपनी युवावस्था को प्राप्त हो जाता है और गर्भधारण के योग्य हो जाता है। इस समय पौधे का रंग कुछ पीला पड़ जाता है। इस अवस्था को पुनौटब (पुनोटना) कहते हैं। विशेषण के रूप में इस भाव के लिए पुनौटल शब्द का प्रयोग होता है। बाल के निर्माण की अवस्था को रेंड़ब (रेंड़ना) कहते हैं; इस समय पौधे का वह भाग जहाँ बाल छिपी रहती है मोटी पड़ जाती है। बाल बाहर निकलने को जौ फूटब (फूटना) कहते हैं। बाल के सिरे पर पतले-पतले नोकीले टूँड़ रहते हैं। जिस डंठल में बाल लगी रहती है उसे सींका कहते हैं।

७८. बाल के दाने जब कुछ पोढ़ (पुष्ट) हो जाते हैं तब उन्हें उम्मी कहते हैं और इस दशा को उम्मियाब (उम्मियाना) कहते हैं। उम्मी को ईख की पत्ती से भूँज (भून) कर खाते हैं। भूनी हुई उम्मी को कच्ची मटर के साथ खून

कर भी खाते हैं। इस खाद्य पदार्थ को भी उम्मी कहते हैं। जब दाना और पुष्ट हो जाता है तब उसे गदराब (गदराना) कहते हैं। बालों को गँड़सा से बाल कर दाना अलग करते हैं और इस दाने को भड़भूँजे के यहाँ भुनाकर खाते हैं। इस भूँजे हुए दाने को चिउरी अथवा चूरी कहते हैं। गदरा दाने का सतुवा भी बनता है जिसे गादा को सतुवा कहते हैं। अच्छे मोटे दाने को रातुल कहते हैं। प्राय: अच्छे दाने के टूँड़ की जड़ कुछ लाल दिखाई पड़ती है। जब बाल कुछ और सूख जाती है तब उसके दाने को ददरी कहते हैं। ददरी या जौ के भूने हुए रूप को बहुरी कहते हैं। ददरी का आटा पीस कर रोटी बनाते हैं जो बहुत मीठी होती है।

७६. बाल जब बिल्कुल सूख जाती है तब उसका टूँड़ सफेद पड़ जाता है और झुक जाता है। इस अवस्था को टूँड़ मरकब (मरकना) कहते हैं। ज्यों-ज्यों बाल सूखने लगती है उसके दाने छितराने लगते हैं जिसे बिथरब (बिथरना) कहते हैं। बाल बिलकुल सूख जाने पर लरक (झुक) जाती है। मेंड़ पर चलने वाले गरीब लोग बहुधा खेत की बाल तोड़ लेते हैं, इस कार्य को टोटा तोड़ब (तोड़ना) या टोटा नोचब (नोचना) अथवा टोटा मारब (मारना) कहते हैं। बाल टूट जाने के बाद सींक को नरई कहते हैं। पौधे के बिलकुल सूख जाने को तड़कब (तड़कना) कहते हैं क्योंकि सूखे हुए पौधों को काटने पर तड़-तड़ की ध्वनि निकलती है। बहुत अधिक सूखे हुए पौधे को चबायल (चबाया हुआ) कहते हैं। सूखने को रवाब (रवाना) भी कहते हैं।

८०. जौ के पौधे में साधारणतः निम्न रोग लगते हैं—

(क) ढाहा—इस बीमारी में पौधा पीला पड़ जाता है और पत्तियाँ सूख कर गिर जाती हैं; धीरे-धीरे पेड़ मर जाता है।

(ख) गेरुई—इस बीमारी में पौधे का रंग गेरू सदृश हो जाता है इसीलिए इसे गेरुई कहते हैं।

जौ की कोई-कोई बाल काली रहती है, ऐसी बाल को लेढ़ा कहते हैं। कमजोर और पतले जौ की समता लीझी से देते हैं। [अपटन (उपटन) छुड़ाने पर जौ के आधार की जो मैल में छूटती है उसे लीझी कहते हैं। क्रिया के रूप में लिझियाब (लिझियाना) प्रयुक्त होता है।] पौधा जब विकसित न हो कर छोटा ही रह जाता है तब उस दशा को टिसुरियाब (टिसुरियाना) कहते हैं।

८१. जौ की कटिया भी गेहूँ के बाद होती है। गेहूँ का पौधा कुछ नरम काटा जाता है। जहाँ उपजाऊ जमीन नहीं होती और पौधे छोटे-छोटे रह जाते हैं उसी जगह जौ नरम काटा जाता है क्यों कि ऐसे पौधों को मूठी द्वारा पकड़ने में कठिनाई होती है। यदि ऐसे पौधे अधिक सूख जाने पर काटे जायँ तो दानों के गिरने का भय रहता है।

८२. गेहूँ की अपेक्षा जौ की दँवाई आसान होती है क्योंकि जौ के डंठल गेहूँ की अपेक्षा कहीं अधिक नरम होते हैं। जौ का भूसा भी गेहूँ के भूसे से नरम होता है इसलिए पशु इसे बहुत चाव से खाते हैं।

गेहूँ

८३. गेहूँ के दो मुख्य भेद प्रचलित हैं—एक देसी जिसका बीज स्थानीय होता है दूसरा दसावरी जिसका बीज बाहर से आया है। देसी दो प्रकार का पाया जाता है—

(क) मुड़िया—यह सफेद और गोलछहूँ अर्थात् कुछ गोला होता है। इसकी बाल में टूँड़ नहीं होता है। मुंडा होने के कारण ही इसे मुड़िया कहते हैं। इसे दाउदी भी कहते हैं।

(ख) ललिया—यह लाल रंग का और लमछर अर्थात् कुछ लम्बा होता है। मुड़िया से यह पतला होता है। इसकी बाल में टूँड़ होता है।

८४. गेहूँ की खेती कम होती है क्योंकि गेहूँ सयार नहीं धरता अर्थात् अधिक नहीं पैदा होता। अधिक होने के भाव के प्रदर्शन के लिए सयराव (सयराना) प्रयोग में आता है। गेहूँ के लिए खेत अच्छा होना चाहिए। मटियरा जमीन इसके लिए अच्छी होती है। बहुधा लोग जौ-गेहूँ मिला कर बोते हैं जिसे गोजई कहते हैं।

गेहूँ के बोने का ढंग जौ सदृश है। यह जौ से पहले बोया जाता है। गेहूँ की बोआई चित्रा में की जाती है जब कि जौ स्वाति में बोया जाता है। गेहूँ की सिंचाई भी जौ से पहले होती है। गेहूँ की सिंचाई जब पौधा छोटा ही रहे करनी चाहिए। जौ की अपेक्षा यह सुकुवार (सुकुमार) होता है।

८५. जौ की अपेक्षा गेहूँ हिरार या सिमसिम अर्थात् ओद काटा जाता है क्योंकि गेहूँ सूखने पर काटने से बाल के दानों के झरने का डर रहता है। गेहूँ की बाल पक जाने पर पके बेल के सदृश हो जाती है जिसे बेलौन्हब (बेलौन्हना) कहते हैं।

गेहूँ की डाँठ जौ की अपेक्षा कड़ी होती है। इसकी पड़रि देर में सीझती है। दँवाई करने के बाद जिस बाल में दाना लगा रह जाता है उसे बलुरी कहते हैं।

८६. जौ की भाँति इसमें भी गेरुइ और ढाहा लगते हैं। लगातार बदली होने से ये रोग होते हैं। इन रोगों में पत्तियाँ गिर जाती हैं और पैदावार मारी जाती है।

मटर

८७. मटर को केराव भी कहते हैं। इसके निम्न भेद पाए जाते हैं—

(क) उजरकी—इसे बड़की मटर भी कहते हैं। सब मटरों से यह उज्जर (उज्वल) होती है इसीलिए इसे उज्जर या उजरकी मटर कहते हैं।

(ख) ललकी—लाल होने के कारण ऐसा नाम है। इसके फूल भी लाल होते हैं। इसके दानों का छिलका सिकुड़ा हुआ होता है इसीलिए इसे बुढ़िया मटर भी कहते हैं। इसकी पैदावार सब से अच्छी होती है।

(ग) छोटकी—छोटी होने के कारण यह नाम है। इसका रंग कुछ हरा होता है। इसकी दाल अच्छी नहीं मानी जाती है।

(घ) अँकरहिया—अँकरी एक लता है जिसके दाने बहुत छोटे होते हैं इस मटर के दाने भी लगभग उसी प्रकार होते हैं इसीलिए यह नाम पड़ गया है। इस मटर का रंग करछहूँ (कुछ काला) होता है इसलिए इसे करियई मटर भी कहते हैं।

८८. मटर बोने के लिए खेत को बहुत अधिक कमाने की आवश्यकता नहीं पड़ती किन्तु खने हुए खेत में मटर बोने से उत्पत्ति अच्छी होती है। खने हुए खेत का अरइठ यदि दहारी (अधिक वर्षा) के कारण मिट गया हो तब मटर की उत्पत्ति बहुत अच्छी होती है। सुखनर (सूखा) होने पर मटर की उपज खराब हो जाती है। मटर पैरा तथा खुँटहर दोनों ढंग से बोई जाती है। चित्रा नक्षत्र में इसकी बोआई अच्छी होती है।

८९. मटर के पौधे जब कुछ बड़े हो जाते हैं तब लोग उन्हें खोंट कर उसका साग खाते हैं। खोटने से मटर में बियास आता है। जब मटर के फूलने का समय आता है तब उसे सींच देते हैं। फूल के साथ छीमी का जो आरम्भिक आकार होता है उसे किचोवा या किचोई कहते हैं। जब किचोवा बढ़कर पुष्ट हो जाता है और उसमें दाना पड़ने लगता है तब उसे पट्टा या पोपटा कहते हैं। अधपके दाने को गदरा कहते हैं। छीमी निकोल (छील) कर अलग किए हुए दाने को गुदुरी कहते हैं। दाने के ऊपर एक छिलका रहता है जिसे खोलरा कहते हैं। गुदुरी पीसने पर खोलरा अलग हो जाता है।

९०. छीमी पक जाने पर पेड़ की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। छीमी पकने को पकठब (पकठना) भी कहते हैं। मटर की डाँठ को नरी या नरचा कहते हैं। डाँठ सूखने को चबाब (चबाना) भी कहते हैं। मटर का पौधा जब अधिक बढ़ता है पर फलता नहीं तब ऐसी अवस्था को नरौब (नराना), गजाब (गजाना), गउँजब (गउँजना), गगलाब (गगलाना) अथवा घबाब (घबाना) कहते हैं। मटर का पौधा लता की भाँति फैलता है और एक ही में अरुझा रहता है इसी-लिए इसके उलझे हुये रूप को झकटा या झगड़ा कहते हैं।

६१. मटर का पौधा उखाड़ा जाता है। मटर दाएँ जाने पर जो भूसा निकलता है उसे पतेला कहते हैं। टूटे हुए डंठल को कूटा कहते हैं। जिस छीमी का दाना नहीं निकला रहता उसे छिमउट कहते हैं। इसे पीटकर दाना निकाल लेते हैं। दँवाई के बाद ओसाई करके दाना अलग कर लिया जाता है। खरिहान में पानी पाकर जब मटर फूल आती है तब उसे डभका कहते हैं।

चना

६२. चना दो प्रकार का होता है एक लाल दूसरा सफेद। लाल चने की उपज अधिक होती है। सफेद चना बहुत कम बोया जाता है। इसकी पैदावार बहुत कम होती है। चने का छिलका पतला और मुलायम होता है।

चने के लिए साधारण खेत चाहिए। ढेलगर खेत में भी चना होता है अतः इसके लिए खेत की बहुत तैयारी नहीं करनी पड़ती है। दोमट जमीन इसके लिए अच्छी होती है। रबी की फसल में यह सर्वप्रथम बोया जाने वाला अनाज है। हथिया नक्षत्र में ही यह बो दिया जाता है। रबी की बोनी (बोआई) की साइत चने से करते हैं। बोने की क्रिया मूठी द्वारा होती है इसीलिए संभवतः प्रथम बोआई को मूठ की साइत कहते हैं। तीसी की बोआई भी पहले होती है। अतः तीसी से भी मूठ लेने की प्रथा है। चना और तीसी दोनों मिलाकर भी मूठ ली जाती है। चना और तीसी साथ मिलाकर भी बोते हैं। तीसी को मेंड़ के अगल-बगल भी बोते हैं। चना की बोआई पैरा और खुँटहर दोनों प्रकार से होती है।

६३ विकास—चना के पौधे का साग खोंट-खोंट कर खाया जाता है क्योंकि चना खोंटने से छतनार (विस्तृत) होता है। खोंटने के बाद इसमें नए-नए कल्ले निकलते हैं। जिस प्रकार मटर में दाने के लिए क्रिचाआ लगता है और उसके अंदर दाने पड़ते हैं उसी प्रकार चना के दाने के लिए जो कोष होता है उसे ढोंढ़ी कहते हैं। ढोंढ़ी में यथोचित दाना न पड़ने को घोघियाब (घोघियाना) या घोघिलाब (घोघिलाना) कहते हैं। न फलने वाले पेड़ को बंझा तथा जो पेड़ सूख जाते हैं उन्हें उकठा कहते हैं। पेड़ के सम्यक् फलने को लहरि जाब (जाना) कहते हैं। चने का पेड़ उखाड़ कर उसको आग में झुलसते हैं इसे होरहा कहते हैं। होरहा चबाने में सोंध होता है।

६४. चने में निम्न रोग लगते हैं:—

(क) गदहिला—इसके लगने पर पत्तियाँ झड़ जाती हैं।

(ख) दहिया—कटिया हो जाने के बाद जब पौधों में धूर नहीं लगती तब उनके ऊपर एक प्रकार की दही की भाँति भुकुड़ी लग जाती है इसे दहियाब (दहियाना) अथवा भुकुड़ियाब (भुकुड़ियाना) कहते हैं।

६५. कटिया—जौ की भाँति लवनी प्रथानुसार इसकी भी कटिया होती है। चना की पत्ती में एक प्रकार का खारापन होता है जिसके कारण काटते समय हथेली का चमड़ा फटने लगता है। काटने के बाद इसका गाँज नहीं बनाया जाता है।

६६. दँवाई—इसकी दँवाई का ढंग भी वही है परन्तु इसकी दँवाई कष्टकर होती है क्योंकि दँवाई के समय चने की पत्ती का क्षार उड़कर नाक में पड़ता है। दाँने पर जो भूसा तैयार होता है उसे कूटा कहते हैं।

अरहर

अरहर या रहर के दो भेद होते हैं :

(क) माघी, मघऊ या मघउआ—यह असाढ़ में बोई जाती और माघ में काटी जाती है। इसका रंग गहरा लाल होता है। खाने में इसकी दाल स्वादिष्ट नहीं होती है।

(ख) चैती या चैतउआ—यह असाढ़ में बोई जाती और चैत में कटती है। यह लाल, पीली तथा काली तीन रंग की होती है। इसका एक भेद रमरहरा या रमरहरवा है। इस का दाना बड़ा होता है और पेड़ भी बड़ा होता है।

६७. अरहर साधारणतः अफार (बिना जोता हुआ खेत) में छींट कर बोई जाती है। इस बोआई को पैरा कहते हैं। जब पौधा कुछ बड़ा होता है तब खेत को बिदह देते हैं। अरहर का पेड़ बड़ा हो और उसमें शाखाएँ निकलें इस उद्देश्य से पूर्वा नक्षत्र में अरहर की फुनगी (सिरे का भाग) कुटुट (नोच) देते हैं। ऐसा करने से पेड़ में बहुत सी शाखाएँ निकलती हैं जिन्हें कंछा कहते हैं। सूख जाने पर पतले कंछों को कइन कहते हैं।

६८. अरहर कटने पर जो बोझ बनाया जाता है उसे भीरी कहते हैं। भीरी को सुखाने के लिए उसे गोलाई में एक दूसरे के सहारे खड़ा करते हैं। सूख जाने पर अरहर पीट कर झारी जाती है। जिस छीमी से दाना अलग नहीं होता अर्थात् पीटने पर जो छीमी ज्यों की त्यों रह जाती है उसे छिमउट कहते हैं। अरहर झारने से जो पत्ती गिरती है उसे पतेला कहते हैं। अरहर के तने को रहठा और ऊपरी भाग को पलौंठी कहते हैं। अरहर कट जाने पर उस खेत को खुँटिहन कहते हैं। खेत में जो खूँटो रह जाती है उसे खुत्थी कहते हैं।

६९. जिन पेड़ों में फल नहीं आते उन्हें बंझा कहते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी कारणवश सारा पेड़ सूख जाता है इसे उकठब (उकठना) कहते

है। पुरबहिया (पूर्वी) हवा बहने पर कभी-कभी छीमी में किनही रोग लग जाता है जिसके कारण दाना नष्ट हो जाता है।

अरहर के पेड़ को मुरेर (ऐंठ) कर जौ-गेहूँ का लेहना और लवनी बाँधते हैं, इस बंधन को मुर्रा कहते हैं।

सरसों

१००. सरसों के निम्न भेद पाए जाते हैं:—

(क) राई—यह बहुत छोटे दाने की काले रंग की होती है।

(ख) तोरया, तोरा या तोर्रा—यह बड़े दाने की होती है।

(ग) पियरकी—यह बड़ी और पीले रंग की सरसों है।

(घ) लाहीं—यह राई के सदृश छोटे दाने की होती है।

राई, तोरा तथा पियरकी सरसों जौ-गेहूँ-मटर के खेत में छीटकर बोई जाती है। इसकी खेती अलग से नहीं होती परन्तु लाही अलग से बेऽनौर (धान के बेहन वाले खेत) में बोई जाती है। इस की फसल सब से पहले तैयार होती है।

१०१. सरसों जौ-गेहूँ से पहले तैयार हो जाता है अतः इसके पेड़ों को खेत से उखाड़ कर अलग कर लेते हैं। इस क्रिया को सरसों निकारब (निकालना) या सरसों काढ़ब (काढ़ना) कहते हैं। और पेड़ों को अँटिया बाँध कर खरिहान में खड़ी करते हैं।

अँटिया सूख जाने पर सरसों की जड़ को काटकर अलग कर देते हैं और शेष भाग को जौ की तरह दाँय लेते हैं। दँवाई हो जाने पर ओसाई करके सरसों अलग कर लेते हैं। छिमउट (जो छीमी टूटी नहीं रहती) को मुँगरी से पीटकर उसका दाना अलग करते हैं। सरसों की डाँठ को सरसँवटा कहते हैं।

सरसों में पुरवा हवा चलने पर माहो रोग लगता है। इसके लगने पर दाना बहुत कमजोर पड़ जाता है।

तीसी

१०२. यह जौ गेहूँ तथा मटर के खेत में किनारे-किनारे मूहिं बनाकर बोई जाती है। चना के साथ भी इसे बोते हैं। इसकी फली को ढेंढ़ी कहते हैं। इसके डाँठ को तिसकुट कहते हैं।

तीसी तैयार होने पर उसे काट कर खरिहान में ले आते हैं। यदि तीसी अधिक हुई तो दाँय कर नहीं तो पीट कर दाना निकाल लेते हैं।

इसमें फूल आने के समय माड़ा रोग लगता है और इसके लगने पर पौधा सूख जाता है और दाना बहुत कमजोर हो जाता है।

धान

१०३. धान की दो फसलें होती हैं (१) भदई अथवा कुवारी (२) अगहनी अथवा जड़हन।

भदई अथवा कुवारी धान :

भदईं धान के निम्न भेद पाये जाते हैं :—

(क) साठी—यह साठ दिन अर्थात् दो मास में तैयार होता है।

(ख) सेल्हा—यह मटमैले रंग का होता है। इसकी बाल लंबी होती है। माला के फूल की भाँति इसके दाने एक के ऊपर एक बैठे रहते हैं।

(ग) नन्हिया—यह सफेद रंग का नन्हा नन्हा (छोटा) धान होता है।

(घ) रानी काजर—इसका रंग कजरा होता है।

(ङ) बगरी—यह मटमैले रंग का होता है।

(च) बाँस फूल—यह बाँस के फूल की भाँति छोटा होता है।

(छ) मरया—यह नन्हिया से कुछ बड़ा होता है। इसका रंग ललछहूँ (कुछ लाल) होता है।

१०४. जो खेत भदईं धान बोने के लिये छोड़ा रहता है उसे वियास कहते हैं। इसे साधारणतः माघ में खन देते हैं जिससे खेत का घास-पात नष्ट हो जाता है और खेत उपजाऊ हो जाता है। वियास के अतिरिक्त अन्य खेतों में भी धान बोते हैं। वर्षा आरंभ होते ही खेत की घास फरुहा (फावड़ा) या कुदार से छाँट-खोद कर निकाल देते हैं जिसे छँटना मारब (मारना) कहते हैं। धान के लिये खेत में पानी होना आवश्यक है अतः इसके लिये मटियरा जमीन सबसे अच्छी होती है। वर्षा का पानी खेत में रुके इस उद्देश्य से खेत की मेंड़ बाँध देते हैं जिसे डाँड़-मेंड़ करब (करना) कहते हैं।

भदईं धान बोने के दो ढंग हैं :—

१०५. (१) रसवत की बोआई—वर्षा हो जाने पर खेत जोत कर तैयार करते हैं और जब मिट्टी बोने योग्य फरहर हो जाती है तब बेंगा (विया) छींट कर हेंगा देते हैं, बेंगा मिट्टी धर (पकड़) ले इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये खेत को फिर से जोतकर हेंगाते हैं जिसे मेरइब (मिलाना) कहते हैं। रसवत की बोआई से खेत में घास कम जमती है।

१०६. (२) लेव की बोआई—खेत में पानी लगने (एकत्र होने) को लेउ या लेव कहते हैं। इस समय खेत को जोत-हेंगा कर तब बेंगा छींटते हैं ताकि बेंगा अधिक नीचे न दब जाय। यह बोआई रसवत से अच्छी मानी जाती है।

कभी-कभी बेंगा जम आने पर भी खेत को जोतते और हेंगाते हैं किन्तु इस समय सेव जोताई की जाती है, ऐसा करने से खेत का खर-पात नष्ट हो जाता है और उपज में वृद्धि होती है; इस क्रिया को बिदहब (बिदहना) कहते हैं। धान की बिदहनी पानी बरस जाने पर विशेषतः उन खेतों की होती है जो रसवत बोए गये रहते हैं। इस बिदहनी को लेव बिदहब (बिदहना) या लेव मारब (मारना) अथवा लेव हेंगाइब (हेंगाना) कहते हैं। लेव मारने से पानी खेत में भलीभाँति प्रवेश कर जाता है तथा पौधे में बियास आता है।

१०७. फसल के लिये खेत में उगने वाले घास-पात बहुत हानिकर होते हैं इसलिए इन्हें जहाँ तक होता है जमने नहीं दिया जाता और यदि ये जम आवें तो इन्हें निकाल दिया जाता है। घास-पात निकालने के कार्य को निराई, निरवही-निरवाही या सोहनी कहते हैं। सोहनी शब्द का प्रयोग कम प्रचलित है। धान की निराई दो बार की जाती है। एक बार तो तब जब पौधा लगभग एक बीता लम्बा हो जाता है और दोबारा उस समय जब धान रेंड़ने लगता है। दूसरी निरवाही पौधों के बड़े होने के कारण बहुत सँभाल कर करनी पड़ती है। पौधों को हानि न पहुँचे इसके लिये आवश्यक है कि एक सीध में खेत के एक किनारे से दूसरे किनारे तक निराई हो। इस प्रकार निराई होने पर पौधों की एक श्रेणी दूसरी से अलग हो जाती है और बीच में एक मार्ग बन जाता है जैसा कि बालों में माँग काढ़ने से होता है; इस प्रकार निराने को मँगियाइब (मँगियाना) कहते हैं।

१०८. पौधे के कुछ बड़े होने पर उसमें से नए-नए पौधे निकलने लगते हैं जिसे बियास आइब (आना) कहते हैं। एक पौधे में निकले हुए पौधे के समूह को पूँजा कहते हैं। बाल के निकलने के पूर्व डंठल का ऊपरी भाग बाल के कारण मोटा हो जाता है। विकास की इस अवस्था को रेंड़ब (रेंड़ना) कहते हैं। बाल बाहर आने को धान फूटब (फूटना) कहते हैं। सेल्हा और साठी धान फूटता नहीं तभी पक जाता है। जो धान फूटता है उसे बलिहन कहते हैं।

कोष में गर्भाधान संस्कार के निमित्त फूल के प्रवेश करने को फूल घोंटब (घोंटब = निगलना या पी जाना) कहते हैं। यह क्रिया साधारणतः दुपहरिया (दोपहर) में होती है जब कि तेज हवा के बहने से फूल झड़ते हैं। कोष में दाने की पूर्वावस्था दूध के रूप में होती है। अतः फूल घोंटने को दुद्धा लेब (लेना) या दुद्धा घोंटब (घोंटना) भी कहते हैं।

१०६. कभी-कभी धान में एक प्रकार की माछो (मक्खी) लगती है जो दाने को खा जाती है। यह दाने के रस को चूस लेती है। इसे गन्धौरा (गंधौरी) कहते हैं इसे स्पर्श करने पर हाथ बदबू करने लगता है। इससे बचने के लिए, जिस दिन मघा नक्षत्र लगता है उस दिन, खेत के चारों कोनों पर गोबर रख देते हैं। नीम की खली खेत में छिड़कते हैं। कमजोर धान को, जिसमें दाना नाम मात्र रहता है, पइया या पइयाफाँफर कहते हैं।

११०. धान की कटिया जौ-गेहूँ की भाँति लवनी प्रणाली पर होती है। धान कट जाने पर उस खेत को धनखर या धनहा कहते हैं। यदि खेतों में पानी लगा रहता है तो डाँठ को काट कर चारपाई पर रखते है ताकि पानी झर जाय। डाँठ सुखाकर बोझ बनाते हैं।

धान कट जाने पर खरिहान में गाँज के रूप में रक्खा जाता है किन्तु इसका गाँज जौ गेहूँ की भाँति नहीं बनाया जाता है। इसमें बाल जौ-गेहूँ की भाँति बैठा-बैठा कर नहीं रक्खी जाती बल्कि ओह कर (अस्त-व्यस्त करके) रक्खी जाती है। धान कुछ हिरार (हरा) काटा जाता है; यदि यह अधिक सूखने पर काटा जाय तो दानों के झर जाने का भय रहता है। ओह कर रखने से गाँज में हवा और धूप का प्रवेश होता रहता है और डाँठ (डंठल) के लगने (शीत के कारण दागी होना) का भय नहीं रहता।

दँवाई के फल स्वरूप डंठल से धान अलग हो जाता है। धान अलग होने पर डंठल को पुआरा (पयाल) कहते हैं। यह मवेशियों के चारे का काम देता है। पुआरा का बोझ उठाने के लिये उसी की रस्सी बनाते हैं जिसे गोइँठ या गुइँठ कहते हैं।

दँवाई के बाद राशि को ओसाते हैं। ओसाने से धान में जो पइया (खोखला धान) खर-पात और गरदा (गरद) होता है निकल जाता है। पुआल के छोटे-छोटे टुकड़े को पुरेसा, या पुरेसी या पोरसी कहते हैं दीवार पर लगाने के लिए जो मिट्टी बनाई जाती है उसमें पुरेसी डालते हैं इससे मिट्टी फटती नहीं।

अगहनी अथवा जड़हन धान :

१११. जड़हन धान के निम्न भेद पाये जाते हैं—

(क) सइदेइया—यह अच्छे धानों में है यह सहद (शहद) के रंग का ललछहूँ होता है।

(ख) सेल्ही—यह लम्बा व पतला धान है। यह सफेद और लाल दो रंगों का पाया जाता है।

(ग) सुगापंखी—(सुग्गा पंखी) यह सुग्गे के पंखे की तरह हरे रंग का होता है।

(घ) सिंघावर—यह सबसे पहले तैयार होता है इसका टूँड़ अपेक्षाकृत बड़ा होता है।

(ङ) बोग—यह एक प्रकार का मोटा धान है। यह काला और उज्जर (उजला दो रंग का होता है।

(च) बोरो—यह नदी में बोया जाने वाला धान है।

११२. जड़हन धान के लिए पानी बहुत ही आवश्यक है अतः खेत ऐसा होना चाहिए जिसमें ऊँची मेंड़ें बनी हों और पानी रुकता हो।

जड़हन की बोआई के दो अंग हैं—(१) बेहन डालना (२) रोपना।

असाढ़ में धान की बेहन, किसी अच्छे खेत में जहाँ सिंचाई की सुविधा होती है, डालते हैं। इस खेत को बेहनउर कहते हैं। बेहन लेव की अवस्था में अच्छी होती है। रसवत के ढंग पर बेहन डालने के किए धान को दो-तीन दिन पानी में भिगो कर रखते हैं। बेहन के लिए पानी अधिक न चाहिए क्योंकि खेत में पानी लगने से बेहन पीली और कमजोर हो जाती है जिसे लरुआब (लरुआना) कहते हैं। अच्छे खेत में तीन माह में बेहन तैयार हो जाती है।

बेहन से तैयार पौधे को जरई कहते हैं। यही जरई फिर खेत में बैठाई जाती है जिसे जरई रोपब (रोपना) या जरई बैठाइब (बैठाना) कहते हैं। इसे बीया रोपब (रोपना) या बेहन रोपब (रोपना) भी कहते हैं। कियारी में बैठाये जाने के कारण इस क्रिया को कियारी बैठाइब (बैठाना) भी कहते हैं। रोपे हुये धान को रोपहँड़ कहते हैं। एक गलिया (अँगूठे और तर्जनी के बीच) में जितनी बेहन एक बार में आती है उतनी एक बार में उखाड़ते हैं। जब दो गलिया बेहन उखाड़ लेते हैं तब उसकी एक अँटिया बाँध देते हैं। धान के प्रत्येक पौधे को ताग कहते हैं। रोपाई के समय चार छः ताग मिलाकर एक स्थान पर गाड़ते या रोपते हैं। जितने ताग एक जगह रोपे जाते हैं उनके समूह को चुटकी, बान्ह या पूँजा कहते हैं। अतः रोपने को इस क्रिया को पूँजा गाड़ब (गाड़ना) भी कहते हैं। रोपाई की क्रिया ठीक हो इसके लिए खेत को खूब जोतते हैं। छोटे खेत में कुदार से गोंड़ कर रोपते हैं। जब खूब गिलई (गीलापन) हो जाती है तब रोपाई की जाती है। रोपाई के उपरांत बेहन पीली पड़ जाती है और जमीन पकड़ लेने पर हरियराती (हरी होती) है जिसे करपब (करपना) कहते हैं। जहाँ बेहन गल या सड़ जाती है वहाँ नई बेहन खिरप (बैठा) देते हैं।

जितनी अच्छी जोताई होगी उतनी ही जल्दी बेहन जड़ पकड़ेगी। रोपाई का कार्य बहुधा स्त्रियाँ करती हैं। रोपाई के लिए ऐसा समय अच्छा होता है जब बदली हो लेकिन वर्षा और तेज हवा न हो। तेज धूप से बेहन के गल जाने का भय रहता है। तेज हवा रहने पर बेहन के गाड़ने में भी कठिनाई होती है। जिधर की हवा होती है उसी ओर से रोपने का कार्य आरंभ करते हैं। तीन दिन में बेहन जड़ पकड़ लेती है।

खेती को हानि पहुँचाने के लिए दुश्मन खेत में झाँखर डालकर पौधों को खींचते हैं जिससे जड़ें उखड़ जाती हैं। जब वर्षा समुचित नहीं होती तब धान में दाने नहीं पड़ते। ऐसे कमज़ोर पौधों को मुँगारा कहते हैं। यह पशुओं के चारे के काम में आता है।

जड़हन में खुरपी से निराई नहीं होती जमी हुई घास को हाथ से उखाड़ कर फेंक देते हैं।

११३. जड़हन में चरका रोग लगता है। इसमें पत्तियाँ सफेद पड़कर गिर जाती हैं। एक अन्य रोग बँकवा है जिसमें एक प्रकार का कीड़ा पत्तियों को काटकर गिरा देता है। खैरा रोग में पत्तियों पर हलके खैरा रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। कुछ लोग इसके इलाज के लिए सुअरों को खेत में दौड़ाते हैं।

भदई धान की भाँति जड़हन की भी कटाई होती है।

११४. जड़हन धान के गाँज को पही कहते हैं। इसमें बालें बाहर निकली रहती हैं। जड़हन धान पीट या पटक कर निकाला जाता है। पटकने के बाद धान अलग हो जाने पर पोरा या पुआरा (पुआल) का आँटा बाँध देते हैं। लंबे पुआरा को नर्रा कहते हैं। पीटे हुए धान के पुआरा का आँटा बाँध देते हैं जिसे आँटऊ पुआरा कहते हैं। बिखरे हुए पुआरा को छिटऊ पुआरा कहते हैं।

सनई

११५. सनई की खेती से खेत खदीला हो जाता है क्योंकि सनई बहुत अच्छी खाद मानी जाती है। सनई को केवल खाद की दृष्टि से भी बोते हैं, ऐसी दशा में सनई का पौधा जब कुछ बड़ा हो जाता है तब उसे हेंगा से हेंगा देते हैं।

अरहर की भाँति यह भी अफार खेत में बोया जाता है। वर्षा आरम्भ होते ही पैरा छीटकर बो देते हैं। तीन-चार दिन में सनई जम आती है। भादों के अन्त तक यह काट ली जाती है। इसके काटने के लिए दँतारा हँसुवे का प्रयोग किया जाता है।

ऐसा अनुभव है कि असरेखा (अश्लेषा) नक्षत्र की वर्षा सनई की पलई या माथ को मार देता है। पलई मारी जाने पर पेड़ छोटे होते हैं और पेड़ छोटे होने पर रेशे भी छोटे होते हैं। अरहर की भाँति सनई के पेड़ भी कभी-कभी उकठ जाते हैं।

११६. सनई की खेती अधिकतर सन की दृष्टि से की जाती है। सन को सुतली भी कहते हैं। पौधे से सुतली को अलग करने के लिए निम्न पद्धति है। जब पौधा अपनी युवावस्था को प्राप्त होता है उस समय पौधों को काटकर आँटा

बाँध देते हैं। प्रत्येक आँटे को जड़ की ओर से खड़ा करके दोनों हाथों से उठा-उठा कर ठोकते हैं। इस क्रिया को छापब (छापना) कहते हैं। इतना करने के बाद पौधे के पलई वाले भाग को गँड़ास से काट कर अलग कर देते हैं। यह पशुओं के लिए अच्छा चारा है। इसे गूजर कहते हैं। चारे की दृष्टि से यह गरम माना जाता है।

फिर तने के भाग को बोझ के रूप में बाँधते हैं जिसे पूरी कहते हैं। पाँच या सात पूरी को एक में बाँधकर बेरा या बेड़ा बनाकर पानी में डाल देते हैं। बेरा के दोनों किनारों पर मिट्टी छोप देते हैं। मिट्टी छोपने से बेरा पानी में डूब जाता है। यह पानी में पड़े-पड़े पचइयाँ या छठइयाँ (पाँचवें या छठें दिन) सड़ जाता है। इसमें से बदबू आने लगती है। फिर बेड़ा पर की मिट्टी गिराकर उसे बाहर निकाल लेते हैं। तदनन्तर सनई के ऊपर जो सड़ा हुआ भाग होता है उसे हाथ से काँछकर अलग कर देते हैं। इस सड़े हुए भाग को गूरी कहते हैं। इतना करने के बाद पौधे को पानी में पीट-पीट कर धोते हैं। धोने से उसके रेशे सफेद हो जाते हैं। इसके बाद इस साफ की हुई सनई की पूरी को पानी में खड़ी करके पाँच-छः बार उठा-उठा कर हलकोरते हैं। इस क्रिया को खोंचब (खोंचना) कहते हैं। ऐसा करने से सन के रेशे संठे (सनई का डंठल) के ऊपरी भाग में चढ़ जाते हैं। इस धोए हुए रेशे को धोआ कहते हैं; अब पूरी को धूप में इस प्रकार खड़ी करते हैं कि सन वाला भाग ऊपर रहता है। जब सन सूख जाता है तब संठे को खींचकर अलग कर लेते हैं। रेशे को सुतली कहते हैं। थोड़ी-थोड़ी सुतली लेकर एक लुंडी या आँटी बना लेते हैं। सुतली ढेरे पर काती जाती है। कातने के बाद उसे बाध कहते हैं। लपेटे हुए बाध को लूँड़ी कहते हैं। बिना लपेटे हुए बाध को चहूँआ कहते हैं।

ईख

११७. ईख को यहाँ ऊख, ऊखि, ऊँख, ऊँखि, उक्खुड़ अथवा उखुड़ बोलते हैं। ईख दो प्रकार की पाई जाती है। एक देसी, छोटकी (छोटी) या पुरानी; दूसरी परदेसी, बड़की (बड़ी), नउकी या नइकी (नई) बोली जाती है। नई ईख को विलायती या सरकारी भी कहते हैं। पुरानी ईख अब बहुत कम बोई जाती है। नई ईख का प्रचार दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। नई ईख पुरानी ईख की अपेक्षा मजगर (मोटी) लमछर (लंबी) और रसगर (रसवाली) होती है। इसमें गुड़ अधिक पड़ता (तैयार होता) है।

११८. पुरानी ईख के निम्न भेद पाये जाते हैं :

(१) सरौतिया—यह सरकंडा की भाँति पतली होती है और संभवतः इसी आधार पर इसका यह नाम है।

(२) हड़वा या हड़हिया—यह हड्डी सदृश सफेद और कड़ी होती है और इसी आधार पर इसका नामकरण हुआ है।

(३) रेवरा या रेवरवा—यह रेवरा मिठाई की भाँति सफेद, मोटी तथा मीठी होती है।

(४) बड़ौंखा—यह पुरानी ईखों में सब से बड़ी और मोटी होती है इसके पोर भी बड़े-बड़े होते हैं।

(५) मनगो—यह पुरानी ईखों में सब से अच्छी ईख मानी जाती है। यह चुहने (चूसने) और पेरने दोनों कामों के लिए उपयुक्त होती है। यह मोटी और सफेद रंग की होती है पर गाँठों के पास कजरी (कालापन) होती है।

(६) बजड़हिया— यह बाजड़ा (बाजरा) के पौधे सदृश होती है। यह खरीफ फसल के साथ बोई और काटी जाती है। बाजड़े की भाँति इसमें भी बाल होती है। जिसके दाने बीज का काम देते हैं। यही ईख ऐसी है जो अन्न की भाँति बीज से पैदा होती है।

(७) कतारा या केतारा—यह लाल रंग की एक मोटी ईख है।

(८) पौंढ़ा—यह सब से मोटी सफेद रंग की ईख है।

इन पुरानी ईखों में अंतिम दो ईखें ऐसी हैं जो अपनी मोटाई के कारण पेरी नहीं जातीं, केवल चूसने के योग्य होती हैं।

११६. नई ईख का प्रचार सरकारी कृषि विभाग द्वारा होता है। अतः प्रति वर्ष एक-दो नई ईखों का प्रचार देहात में होता रहता है। नीचे इस समय प्रचलित नई ईखों का नाम दिया जा रहा है। जिन ईखों का प्रचार कृषि-विभाग द्वारा होता है उनका उनके यहाँ नम्बर होता है किन्तु किसान इन नंबरों से न तो परिचित होता है और न उसे इनके जानने की आवश्यकता पड़ती है। किसान रूप-गुण के आधार पर ईख का नाम रख लेता है जो धीरे-धीरे गाँव में प्रचलित हो जाता है। नीचे कुछ नई ईखों के नाम उनके सरकारी नम्बरों के साथ दिए जा रहे हैं जो रोचक होंगे—

(१) नरमा (नं० २६०)—यह नरम होती है। चूसने और पेरने दोनों काम के लिए यह बहुत अच्छी ईख है।

(२) भुवहिया (नं० ३१२)—इस ईख में सरपत की भाँति भुआ फूटता है।

(३) ललकी (नं० ३३१)—इसका छिलका कुछ लाल होता है।

(४) पियरकी (नं० ३७०)—यह कुछ पीले रंग की ईख है।

(५) लकड़हिया (नं० ३१३)—यह लकड़ी की भाँति कड़ी होती है।

(६) कइनहिया (नं० १०६)—यह बाँस की कइन सदृश पतली होती है।

(७) बाँसगन्ना या बाँस फ़ारम (नं० ४२१)—इसका छिलका बाँस की तरह कड़ा होता है।

(८) क्लेक्टरहिया या कलेटरिया (नं०२१२) कलक्टर द्वारा प्रचार किए जाने के कारण यह नाम पड़ गया है।

(९) सुसइटिया या सुरसतिया—कोआपरेटिव सोसाइटी (सहयोग समिति) द्वारा प्रचार किए जाने के कारण यह नाम पड़ा है।

(१०) दुलहिनिया—इसका गेंड़ा (माथ पर की पत्तियाँ अन्य ईखों के गेंड़े से हरा-भरा होता है और नीचे की ओर झुका रहता है। इसकी यह अवस्था घूँघट युक्त स्त्री की समता करता है और इसी आधार पर इसका यह नाम पड़ गया है। इसे कहीं-कहीं दुलारमती भी कहते हैं।

(११) दलबादर—इसकी पत्ती अन्य ईखों से चौड़ी होती है तथा गाँठों के पास इसमें कालापन होता है जो काले बादल के समूह की समता करता है।

(१२) बाबूमिश्री—यह मिश्री की भाँति मीठी होती है।

१२०. ईख के लिये दोमट जमीन अच्छी होती है। मटियरा की ईख का रस गाढ़ा और मीठा होता है। इसमें गुड़ अधिक पड़ता है। और इस गुड़ में दाना भी अच्छा पड़ता है। इस गुड़ का रंग अपेक्षाकृत काला होता है।

ईख के खेत की कमाई बहुत अधिक करनी पड़ती है। अच्छे किसान खेत को खन कर तथा उसमें खाद-पाँस डाल कर तैयार करते हैं। ईख के लिए भेंड़-बकरी की खाद बहुत अच्छी होती है। खाद के लिए खेत में ईख की पुरानी एवं सड़ी हुई पत्ती, जिसे कराइन कहते हैं, डाली जाती है। ईख के निम्न प्रकार के खेत होते हैं—

(क) पेड़ी—ईख कट जाने पर जड़ का जो भाग जमीन में शेष रहता है उसे पेड़ी कहते हैं। इसी आधार पर इस खेत को भी पेड़ी कहते हैं। दुबारा ईख काटने के लिए पेड़ी छोड़ने को पेड़ी या पेड़ा राखब (रखना) कहते हैं।

(ख) अठवाँसा खेत—जो खेत असाढ़ (आषाढ़) से माघ अर्थात् आठ मास तक बोने के लिए तैयार किए जाते हैं उन्हें अठवाँसा (आठ मास वाला) कहते हैं।

(ग) उखाव—जो खेत खरीफ कट जाने के बाद ईख बोने के लिए तैयार किए जाते हैं उन्हें उखाव कहते हैं।

रबी कटने के बाद चैत में भी ईख बोई जाती है किन्तु इस प्रकार के खेतों का कोई विशेष नाम नहीं है। ऐसा वे ही लोग करते हैं जिनके पास खेत की कमी रहती है।

१२१. औला—छोटकी ईख बीज के लिए नाप कर बिकती है। इसके नाप के पैमाने को औला कहते हैं। एक औला बराबर चार पाई होता है और एक पाई बराबर सौ हाथ। हाथ के माप के लिए एक सीधी पतली लकड़ी ले लेते हैं जो वस्तुतः

एक हाथ और चार अंगुल होती है। एक पाई ईख नाप चुकने पर उसे गाही (गाही=पाँच) में गिन डालते हैं फिर एक पाई में जितनी गाही ईख होती है उतनी ईखों का अलग-अलग ढेर लगाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक ढेर एक पाई के बराबर समझा जाता है।

बो आ ई :

१२२. बीज को **बीया** बोलते हैं अतः बोने के लिए जो ईख होती है उसे भी **बीया** कहते हैं। बीज की दृष्टि से ईख का **जरखर** (जड़ का भाग) तथा **अँगोर** (आगे का भाग) अच्छा होता है क्योंकि इसमें गाँठें नजदीक-नजदीक होती हैं और इसमें अंकुर जल्दी निकलता है। **बिचखड़** (बीच का भाग) देर में जमता है।

बीया बोने के दो नियम हैं। कुछ लोग ईख भिगो कर बोते हैं और कुछ लोग यों ही बिना भिगोए बोते हैं। भिगो कर बोई जाने वाली ईख कुछ समय के लिए पानी में बोह (डुबो) देते हैं। इसे **बोह वाली** और जो यों ही बिना भिगोए बोई जाती है उसे **अखरा** कहते हैं; बोह वाली जल्दी जमती है।

बोने के लिए बीया को **गँड़ास, गँड़सा, गेंड़सा** या **गेंड़ासा** (एक औजार) से टुकड़ों में काट डालते हैं। एक टुकड़े में साधारणतः तीन चार गाँठें होती हैं। इन टुकड़ों को **पताँड़** या **पेंड़** कहते हैं और इन्हें काटने की क्रिया को **पताँड़ मारब** (मारना) कहते हैं। पताँड़ जब तुरन्त नहीं बोना होता तब उसे एक **खाता** (गड्ढा) में नीचे-ऊपर **पतई** (पत्ती) रख कर ढक देते हैं और उस पर पानी का छिड़काव किया करते हैं ताकि तरी बनी रहे। इस प्रकार पताँड़ रखने को **खाता मारब** (मारना) कहते हैं।

१२३ हल द्वारा खेत में जो निशान बनता है उसे साधारणतः कूँड़ कहते हैं किन्तु ईख की बोआई में इसे **मूहिं** कहते हैं। मूहिं को **चकली** (चौड़ी) बनाने के लिए हल में **बरही** (हेंगा में प्रयोग आने वाली लगभग पाँच हाथ लम्बी रस्सी) या ईख के गेंड़ा को चोटी की तरह गुहकर बाँधते हैं। इस बँधे हुए सामान को **लेदी** कहते हैं। लेदी बँधे हुए हल को **पहिया** कहते हैं। जो साधारण किसान हैं वे इसी हल से अपना काम चला लेते हैं किन्तु अच्छी बोआई के लिए तीन हल होने चाहिए। इनमें से एक हल बोई हुई मूहिं को भाठने के लिए होता है जिसे **भठुआ हल** कहते हैं। एक दूसरा हल मिट्टी छीन (काट) कर नई मूहिं बनाता है जिसे **छिनुआ** हल कहते हैं। इसके पीछे उपर्युक्त पहिया हल चलता है जिसका कार्य छिनुआ द्वारा बनाई हुई मूहिं को **झारकर** (मिट्टी बाहर कर) चकली बनाना है। पहिया घूम जाने के बाद उसी मूहिं में पताँड़ बोया जाता है।

१२४. ईख बोने का ढंग यह है कि एक आदमी मूहिं में थोड़ी-थोड़ी दूर पर पताँड़ गिराता चला जाता है और दूसरा आदमी उसे समुचित ढंग से गाड़ता

जाता है। एक पताँड़ से दूसरे पताँड़ में साधारणतः **पाँव आँतर** (एक पाँव का अंतर) होता है। जब बीया कमजोर होता है अथवा खेत में **देंवका** (दीमक) का भय रहता है तब एक पताँड़ के खोंप (किनारा) को दूसरे पताँड़ के खोंप से सटाकर बोते हैं; इस बोआई को **खोंपा जोर बोआई** कहते हैं। बो जाने के बाद खेत हेंगा दिया जाता है।

गो ड़ा ई :

१२५. पताँड़ बो जाने के दो-तीन दिन बाद पहली गोड़ाई होती है। इस गोड़ाई का मुख्य ध्येय यह है कि जो पताँड़ बोते समय टेढ़े-मेढ़े हो गए हों उन्हें उखाड़ कर फिर से बैठा दिया जाय। इस गोड़ाई को **पताँड़ बैठाइब** (बैठाना) कहते हैं। यह गोड़ाई बेड़े-बेड़े की जाती है। यदि खड़े-खड़े गोड़ाई की जाय, जिस प्रकार कि खेत बोया रहता है, तब कुदार की चोट से पताँड़ के चीर जाने का भय रहता है। बेड़े-बेड़े गोड़ने से यह भय नहीं रहता प्रत्युत लाभ यह होता है कि जो पताँड़ समुचित गहराई पर नहीं हैं या जो टेढ़े-मेढ़े हो गए हैं वे कुदार में बझकर (फँसकर) ऊपर निकल आते हैं; फिर उन्हें कुदार से गड्ढा करके यथा स्थान गाड़ दिया जाता है।

लगभग प्रति सप्ताह गोड़ाई की जाती है। इन गोड़ाइयों को **धुरियाइब** (धुरियाना) कहते हैं क्योंकि इनसे खेत की मिट्टी धूल सदृश हो जाती है जिससे **अँखुवा** निकलने में सुविधा होती है। लगभग दो सप्ताह में अँखुवा बाहर निकल आता है। जब तक यह भीतर रहता है तब तक इसे **अंधा** कहते हैं और बाहर निकल आने पर इसे **पोय** कहते हैं। गोड़ाई बहुत सावधानी से करनी पड़ती है अन्यथा अंधा के कट जाने का भय रहता है। पोय निकल आने पर प्रत्येक मूहिं अलग-अलग दिखाई पड़ने लगती है; इस अवस्था को **मुहियाब** (मुहियाना) कहते हैं। कभी-कभी कुछ पताँड़ नहीं जमते। जो पताँड़ मारे जाते हैं उनकी जगह दूसरा पताँड़ गाड़ देते हैं; नये पताँड़ों के गाड़ने को **खिरपब** (खिरपना) कहते हैं।

सिं चा ई :

१२६. कभी-कभी खेत के **तारु** (भीतरी भाग) की **ओदाई** (नमी) की कमी के कारण पताँड़ बराबर से नहीं जमता। ऐसे समय हाथा से सिंचाई कर देते हैं। यदि पानी की अधिक आवश्कता होती है तब **कियारी** देते हैं। इस समय हलकी कियारी दी जाती है। जब पताँड़ बराबर जम आता है तब पूरी सिंचाई करते हैं। इस प्रकार की सिंचाई में पानी कियारी की मेड़ या **डुड़ही** के बराबर भरा जाता है। पानी अपने सुखे (स्वतन्त्रता पूर्वक) **रेंगने** से कियारी भली-भाँति पानी सोखती है। गर्मी में जब **पछुवाँ** (पश्चिमी) हवा चलने लगती है तब ऐसी सिंचाई की विशेष रूप से आवश्यकता पड़ती है। इस समय खेत की

आँत में तरी चाहिए अन्यथा पौधों को धौंका (लू) मार देता है। मृगशिरा नक्षत्र की तपन (गर्मी) पौधे को सुखा देती है, कहावत है "मृगडाह जब तपै अँगारा, सोइ किसान जो पोय सम्हारा।" अर्थात् मृगशिरा की दाह से जिसने पोय की रक्षा कर ली वही किसान है। इसके उपरांत आर्द्रा में खेत की गोड़ाई खूब की जाती है। पुष्य की तपन ईख के लिए अच्छी मानी जाती है कहावत है, "जब तपै पुक्ख, तब होये उक्ख।" इस समय की सिंचाई बहुत लाभप्रद होती है। ईख के लिए सिंचाई के सम्बन्ध में कहा गया है, "तीन कियारी तेरह गोड़, तब ताका हौदा की ओर" अर्थात् तीन कियारी सींचने और तेरह बार गोड़ने पर ही रस से भरे हौदे की ओर देखिए।

गोड़ाई :

१२७. सिंचाई के बाद गोड़ाई आवश्यक है। कियारी देने के बाद जब पहली गोड़ाई की जाती है तब खेत में बनी कियारियाँ गिरा दी जाती हैं। इसीलिए इस गोड़ाई को **कियारी गिराइब** (गिराना) कहते हैं। इसके बाद होने वाली दूसरी गोड़ाई को **एकरसा गोड़ाई** कहते हैं। यह गोड़ाई खेत **रसगर** रहने पर की जाती है। सिंचाई के लगभग तीन दिन बाद यह गोड़ाई की जाती है। यह गोड़ाई उस समय होनी चाहिए जब खेत की मिट्टी **लदफद** (गीली) हो ताकि गोड़ते समय कुदार में मिट्टी न लगे। मिट्टी इतनी सूखी भी न हो कि ढेले **करेर** (कड़े) पड़ गये हों। इस समय के लिए **बरकल** (न सूखी और न गीली) मिट्टी होनी चाहिए। ऐसी मिट्टी गोड़ते समय बराबर से टूटती है और भुरभुरी हो जाती है। अतः एकरसा गोड़ाई बहुत **ताव** पर होनी चाहिए। यदि गोड़ाई में देरी हुई तो खेत की नमी **भैं** (नष्ट हो) जाती है और खेत **बइठ** (दब) जाता है; मिट्टी सूखने पर खेत **ठनक** जाता है। जब खेत की एकरसा गोड़ाई यथोचित समय पर नहीं होती तब कहते हैं कि खेत **एकरसिगा** अर्थात् ताव आने पर एकरसा गोड़ाई न होने से खेत बिगड़ गया। ऐसे खेत को उपज अच्छी नहीं होती है। एकरसा गोड़ाई के अतिरिक्त अन्य गोड़ाइयों को **धुरियाइब** (धुरियाना) कहते हैं। इनका उद्देश्य खेत की मिट्टी को पोलो तथा नरम बनाए रखना है। जब खेत में पोय बड़ी-बड़ी हो जाती है और हेंगाने से उसके टूटने का भय रहता है तब गोड़ने के बाद खेत हेंगाते नहीं बल्कि पैर से मिट्टी को **पैंतर** (सम कर) देते हैं। इसे **पैंतरब** (पैंतराना) या **लतिआइब** (लतियाना) कहते हैं।

पौधे का विकास :

१२८. प्रथम पोय निकलने के बाद जड़ में से धीरे-धीरे कई नई-नई पोयें निकलती हैं। इस प्रकार पौधे का विस्तार होता है जिसे **बियास आइब** (आना) कहते हैं। पोय बढ़कर जब **करेर मनानं लगती** (कड़ी हो जाती) है तब उसे **डँड़वत** कहते हैं। एक पताँड़ में से जितनी ईखें पैदा होती हैं उनके समूह को

थान कहते हैं। ईख बढ़ जाने पर उसके गिरने का भय रहता है इसलिए मूहिं पर अलग-बगल से मिट्टी चढ़ा देते हैं इसे मूहिं चढ़ाइब (चढ़ाना) कहते हैं। ऐसा करने से जड़ मजबूत हो जाती है। लेकिन इतने पर भी जब ईखें अपने बोझ से गिर जाती हैं तब थोड़ी-थोड़ी ईखों के समूह को गेंड़ा की सहायता से बाँध देते हैं। गोंयड़ खेत की ईख अधिक लम्बी होती है क्योंकि इसमें खाद अधिक रहती है। गोंयड़ की ईख का रस पतला और फीका होता है। ऐसी ईख को लपचा या लपचो कहते हैं। कुछ गोंयड़ खेतों की ईख का रस खारा भी हो जाता है।

जिस खेत में दैंवका (दीमक) होते हैं उसमें खेती को बहुत हानि होती है। क्योंकि दीमक पताँड़ को ही खा डालते हैं। इससे बचने के लिए पताँड़ को हींग के घोल में डुबोकर बोते हैं। लेकिन इतने पर भी दीमक हानि पहुँचा देते हैं। नीम की खली डालने से भी दीमक नष्ट होते हैं। दीमक लगने पर ईख उकठ (सूख) जाती है।

कहा जाता है कि चित्रा नक्षत्र की वर्षा से ईख का गेंड़ा (सिरे की पत्तियाँ) मारा जाता है; कहावत है "चित्रा के बरसले तीन का नास; साली, सक्कर, मास।" अर्थात् चित्रा की वर्षा से साली (शालि) सक्कर (शक्कर) तथा मास (माष-उड़द) को हानि पहुँचती है।

ईख के रोग :

१२६. ईख में निम्न रोग लगते हैं—

(१) कारो—एक प्रकार का कीड़ा है जो ईख के गेंड़ा को हानि पहुँचाता है। इसके लगने पर गेंड़ा धीरे-धीरे सूख जाता है।

(२) फनगी—(पतिंगा) इनका प्रकोप जिस वर्ष होता है उस वर्ष ईख की खेती को बहुत हानि होती है। कहते हैं जिस वर्ष टिड्डो का प्रकोप होता है उसी वर्ष वर्षा में फनगी की उत्पत्ति होती है। वर्षा के अंत के साथ इनका भी अंत हो जाता है। ऐसा विश्वास है कि टिड्डी के बाट से इनकी उत्पत्ति होती है। इनके लगने से ईख का गेंड़ा नष्ट हो जाता है और ईख सूख जाती है।

(३) पिहिका—इस रोग में गेंड़े के बीच का नरम भाग सूख जाता है। इस नरम भाग को सींका कहते हैं। ऐसो अनुभव है कि फागुन की बोई हुई ईख में यह अधिक लगता है।

(४) कानी—इस रोग से ईख का भीतरी भाग कहीं-कहीं लाल पड़ जाता है और ईख का रस दूषित हो जाता है। ऐसी ईखों में रस भी कम हो जाता है। इनको कानी, कनही अथवा किनही कहते हैं।

(५) लवाही—इस रोग के लगने पर ईख लाल पड़ जाती है और सूखकर चिचुक (सिकुड़) जाती है। यह ईख के लिए एक प्रकार का सूखा रोग

है। ऐसी ईखों में रस नाममात्र रह जाता है और किसान को बहुत हानि होती है। कहा जाता है कि जब **सियार** ईख काट देता है तब लवाही रोग हो जाता है।

मकरा

१३०. **मकरा** को **मेड़ुआ** कहते हैं। **मेड़ुआ** के लिए किसी भी ढंग की जमीन हो काम चल जाता है यहाँ तक कि ऊसर में भी यह हो जाता है। एक-दो बाह जोतने के बाद बेंगा छीट कर हेंगा देते हैं। जब पौधा कुछ बड़ा हो जाता है तब खेत **बिदह** देते हैं। आवश्यकता पड़ने पर **निरवाही** भी की जाती है।

मेड़ुआ जब पक जाता है तब उसे हथेली से मींजकर और उसके छिलके को फूँक कर दो-चार फाँक, स्वाद के लिए, खाते हैं इस प्रकार फाँक कर खाने को **भाका** कहते हैं।

१३१. फसल तैयार होने पर धान की तरह **लवनी**-प्रथानुसार **कटिया** होती है। साधारणतः अरहर के साथ इसे बोते हैं; धान के साथ भी कुछ लोग छिटका कर बो देते हैं किन्तु इसमें धान की फसल ही मुख्य होती है। मकरा तैयार होने पर इस की बाल को हँसुआ से फाँक (काट) लेते हैं। शेष भाग धान के साथ कटता है। इसकी डाँठ को **मेड़ुरी** कहते हैं।

कटिया होने पर जब मेड़ुआ घर पर आता है तब डाँठ से **बाल** को **हँसुआ** द्वारा काट कर अलग कर लेते हैं। फिर बाल को एक-दो दिन पड़ा रहने देते हैं ताकि वह **औंस** जाय। औंसने से उसमें गरमी पैदा हो जाती है फिर उसे खटिया पर रख कर दोनों हाथों से **दर्रते** हैं जिससे दाना अलग हो जाता है। बाल से दाना अलग हो जाने पर शेष भाग को **खूंहा** या **खूंही** कहते हैं। यदि बाल भली-भाँति पकी न हो और काटकर कई दिन पड़ी रह जाय तो उसके **ममस** (गर्मी से खराब होना) जाने का भय रहता है जिससे स्वाद में अन्तर पड़ जाता है।

ज्वार

१३२. इसे **जोन्हरी**, **मकई** तथा **मक्का** बोलते हैं। इसके तीन भेद पाये जाते हैं:

१) **उजरकी** (उज्ज्वल रंग की) (२) **ललकी** (३) **पियरकी**। इनमें उजरकी बड़े दाने की और अच्छी होती है। उजरकी का एक भेद **गिरदा** है जिसका प्रचार थोड़े दिनों से है। यह बड़े दाने की होती है। इसका पेड़ भी मोटा होता है।

वह भदईं फसल का एक मुख्य अनाज है। किसी भी खेत में दो-तीन बाह की जोताई के बाद यह खुटहर से बिड़र-बिड़र (दूर-दूर) बोया जाता है।

१३३. जोन्हरी के पौधे में गाँठों पर बाल निकलती है। बाल में जो पके बार (बाल) की तरह रेशा निकला रहता है उसे पूई कहते हैं। बाल के ढकने वाले छिलके को खूही या खूहा कहते हैं। बाल का दाना जब तक बहुत मुलायम रहता है तब तक उसे दुद्धा कहते हैं। बाल पक जाने पर उसे भुट्टा या होरहा कहते हैं। दाना छोड़ाने (अलग करने) पर जो भाग बचता है उसे खुखुड़ा या खुखुंडी कहते हैं। जिस बाल में कम दाना पड़ता है उसे गंडा या गंडहिया कहते हैं।

जोन्हरी के पौधे में पुनुई (सिरे) पर जीरा फूटता है जिसे जीरा निकरब (निकलना) या जीरा लेब (लेना) या जीरा फूटब (फूटना) कहते हैं। इस समय पौधे को पानी की अत्यन्त आवश्यकता होती है। यदि इस समय पानी न मिले तो जीरा नष्ट हो जाता है जिसे जीरा मसकब (मसकना) कहते हैं। जीरा मसक जाने से पौधे को बड़ी क्षति होती है और पैदावार नहीं के बराबर होती है। बाल टूट जाने पर तने को सेंठा, लकठा या लट्ठा कहते हैं। जोन्हरी की सोर (जड़) पक्षी के चंगुल की भाँति होती है इसलिए इसे चंगुल कहते हैं और सोर फेंकने को चंगुल फेंकब (फेंकना) कहते हैं।

जोन्हरी के लिए दो गोड़ाई आवश्यक है। आवश्यकता पड़ने पर निराई भी की जाती है।

जोन्हरी कट जाने पर उस खेत को जोन्हरौटा कहते हैं।

सावाँ

१३४. सावाँ के दो भेद पाये जाते हैं (१) छोटका (छोटा) सावाँ (२) बड़का (बड़ा) सावाँ। यह बहुत हलका दाना है। बोने के समय यदि तेज हवा हुई तो बेंगा (बीज) कहीं अधिक गिर जाता है और कहीं कम। फलस्वरूप खेत में कोई पहँटा (खेत का भाग) विशेष जम जाता है और कोई कम; ऐसे खेत को पहँटाह कहते हैं। सावाँ में धूल मिलाकर छीटते हैं ताकि वह हवा से न उड़े।

सावाँ का पौधा जब कुछ बड़ा हो जाता है तब खेत बिदह दिया जाता है। इससे वर्षा होने पर खेत में पानी भली प्रकार धँस जाता है और पौधे में बियास आता है।

१३५. इसकी कटिया और दवाँई धान की भाँति होती है। जो थोड़ा-बहुत दाना निकालना चाहते हैं वे लतिया कर दाना अलग कर लेते हैं। इसकी डाँठ को सहेंड़ी कहते हैं।

धान की ही भाँति यह ओसाया जाता है जिससे दाना अलग और छिलका तथा पत्तियाँ अलग हो जाती हैं। सावाँ के खोखले दाने को भाभा कहते हैं। सावाँ कटे खेत को सौंहट या सौंहटा कहते हैं।

पान

१३६. पान के निम्न भेद पाये जाते हैं—

(१) साँची—साँची के आधार पर यह नाम है।

(२) कपुरी—इसमें कपूर की भाँति सुगंध निकलती है।

(३) बँगला—बंगाल के आधार पर यह नाम पड़ा है।

(४) महोबिया—महोबा के आधार पर यह नाम पड़ा है।

(५) देसावरी—स्थानीय किस्म के पानों के अलावा जितने भी पान पाये जाते हैं वे देसावरी कहलाते हैं।

(६) देसी—स्थानीय पान के किस्म को कहते हैं।

१३७ पान के लिए मटियरा मिट्टी चाहिए क्योंकि इस मिट्टी में नमी बनी रहती है। पान भीटा (ऊँचे स्थान) पर लगाया जाता है। पान की खेती के लिए पानी तो चाहिए पर पानी रुकना न चाहिए। वर्षा का पानी बह जाय ऐसी जगह पान के लिए उपयुक्त होती है। पान को धूप भी अधिक न लगनी चाहिए। पान लता की भाँति चढ़ने वाली वस्तु है। इन सभी दृष्टियों से पान के लिए छप्पर बनाना पड़ता है। छप्पर थूनों के सहारे रहता है। छाजन सरपत की होती है। इस छप्पर को माड़ो कहते हैं। यह छाजन इतनी घनी नहीं होती कि सूर्य का प्रकाश रोक सके। पान बोने का कार्य बरई करते हैं इसीलिए पान के भीटे का नाम बरइठा भी है। टाटी द्वारा इसे चारों ओर से घेर देते हैं। पान की श्रेणियों को आँतर कहते है। आँतरों के बीच में आने-जाने के लिए जो स्थान रहता है उसे पह या पाहा कहते हैं। पान की लतर चढ़ाने के लिए आँतर में सरकंडे गाड़े जाते हैं जो छाजन के ऊपर तक निकले रहते हैं।

१३८. चैत-बैसाख में पान बोया जाता है। बोने के पूर्व आँतर को सींच कर गोड़ते हैं। खाद के लिए नीम की खली डालते हैं। जब मिट्टी तैयार हो जाती है तब उसमें नाली बनाई जाती है। नाली में पान की लतर (लता)

बैठाई जाती है। लता का टुकड़ा लगभग एक हाथ लंबा होता है। लता लगाने के समय पान का पत्ता नहीं दबने पाता। यह पत्ता बाद में नए पत्तों के निकल आने पर तोड़ लिया जाता है। यह पुराना पान होने से महँगा बिकता है। इस पुराने पान को पेड़ी का पान कहते हैं क्योंकि बोने के लिए जो पान की लता सुरक्षित रखी जाती है उसे पेड़ी कहते हैं। पान का पौधा लगाने के बाद उसे घास, सरपत या ईख की पत्ती से ढक देते हैं। इससे धूप की बचत होती है। ढकने के बाद उस पर दिन में दो बार पानी का छिड़काव करते हैं। इससे तरी बनी रहती है।

१३९. पान लगाने के लगभग चार दिन बाद उसकी गाँठों पर अँखुए निकल आते हैं। अँखुआ निकलने के बाद पौधे को ढाँकने वाली पत्तियाँ हटा ली जाती है। अँखुआ बढ़ते ही उसे सरहरी (सरकंडा) पर चढ़ा देते हैं। इस क्रिया को पान मोरब (मोरना) कहते हैं। पान की खेती में बहुत परिश्रम करना पड़ता है। खाद डालना, गोड़ना, पानी देना तथा पान उतारना (तोड़ना) सभी क्रियाओं में परिश्रम और सावधानी चाहिए। खाद के लिए सरसों की खली भी प्रयोग में आती है। नया पान गङ्गा दसहरा (जेठ सुदी दसमी) को उतारा जाता है। एक साल पान लगाने पर तीन साल तक चलता है।

१४० पान में कभी-कभी एक प्रकार के लाल कीड़े लग जाते हैं जो ठेपी के पास काट देते हैं। पत्तों में काले धब्बे पड़ जाते हैं जिन्हें कारो कहते हैं। पाला तथा ओला पान के लिए बहुत हानिकर होते हैं।

पान तोड़ने के बाद उसके सड़े हुये भाग को अलग करते हैं। इसके लिए सरकंडे या बाँस की दो फलठी ले कर उसकी कतरनी बनाते हैं। पान गिन कर बिकता है। पचास पान की एक कँवरी तथा चार कँवरी बराबर एक ढोली होती है। ढोली को मूँज या कास से बाँधते हैं।

आलू

१४१. आलू के निम्न भेद पाये जाते हैं :—

(१) कटुआ—यह काट-काट कर बोया जाता है। काटते समय आँखा (अँखुआ) न कटना चाहिए। यह आलू बड़ा और लाल होता है।

(२) फुलनहवाँ—इसके पौधे में फूल निकलता है। यह देसी आलू है। यह छोटा और सफेद रंग का होता है।

(३) पटनहियाँ या ललकी—यह पटना की ओर से आता है। यह बड़ा और लाल होता है।

(४) मँदरजिया या मँदराजी या मनराजी—यह बड़ा और सफेद होता है। मद्रास के आधार पर यह नाम है। तीन पाख (पक्ष) में तैयार होने के कारण इसे तिनपखिया भी कहते हैं।

१४२. आलू के लिए गोंयड़ खेत होना चाहिए क्योंकि इसकी मरम्मत भली-भाँति हो सकती है। पलई (दूर) का खेत अच्छा नहीं होता। इसे जौ-गेहूँ की भाँति चौमासा में बोवे तो अच्छा होता है।

आलू के लिए खेत की जोताई अच्छी होनी चाहिए। खेत घन और अवाह जोता जाना चाहिए। यदि खेत ढेलगर रहे तो पानी फुफकार (छिड़क) दे, पानी पाने से ढेला गल जायगा। दूसरे दिन माटी फरहर (सूखी) होने पर खड़े-खड़े और बेड़े-बेड़े दो हेंगा हेंगा दे। इसके बाद दो बाह जोत कर हेंगा दे। तदनन्तर सड़ी हुई खाद बिछा दे इतना करने पर खेत सज जाता है।

सिंचाई के लिए आरम्भ में ही खेत में बरहा बना दिया जाता है। बरहों के बीच वाली जमीन को जिसमें बोआई होती है पाही या परचा कहते हैं। कुदार से मूहिं बनाकर एक-एक बीता पर आलू बोते हैं। मूहिं पर मिट्टी चढ़ा देने पर उसे डुड़ुहा या डुड़ुही कहते हैं। डुड़ुहों के बीच की गहरी जगह को नारी कहते हैं।

खेत बो जाने पर हर तीसरे-चौथे मूहिं गोड़ते रहना चाहिए। गोड़ाई न होने पर खेत एकरस जाता है और आलू देर में तथा कम जमता है।

१४३. आलू जम आने पर नारी में पानी दौड़ाते (सिंचाई करते) हैं। और गोड़ाई के योग्य हो जाने पर कुदार से सेव गोड़ कर मिट्टी लतिया देते हैं। इस समय मूहिं पर कुछ और मिट्टी चढ़ा कर उसे ऊँची कर देते हैं। मिट्टी चढ़ाने पर उसे हाथ या पैर से थपथपा देते हैं ताकि मिट्टी रुक जाय। फिर कई दिन बाद जब मिट्टी कुछ महुला (सूख) जाती है तब मामूली सिंचाई कर देते हैं। इसे पानी कटाइब कटाना) या पानी रेंगाइब (रेंगाना) कहते हैं। पौधा बड़ा हो जाने पर भरपूर सिंचाई की जाती है। इस प्रकार तरै तापर (अंतर दे-देकर) कम से कम तीन पानी दिया जाता है। आलू में पानी देने को आलू भरब (भरना) भी कहते हैं। बरहा से आलू की नारी में पानी काटने को पानी कटाइब (कटाना) या पानी बराइब (बराना) कहते हैं।

१४४. आलू के डंठल और पत्तियों के समूह को गावा कहते हैं। गावा के सूखकर पीला पड़ने को पकठब (पकठना) कहते हैं। गावा पकठ जाने पर पेड़ महुला (कुम्हला) जाता है। इस समय समझना चाहिए कि आलू खनने के योग्य हो गई है।

आलू में गदहिला रोग लगने पर सूराख हो जाता है और आलू खराब हो जाता है।

प्याज

१४५. पियाज (प्याज) के लिए गोंयड़ का खेत चाहिए क्योंकि इसे बहुत खाद तथा पानी चाहिए। इसके लिए चैती फसल की भाँति चौमासा खेत ही अच्छा होता है। यह क्वार में बोया जाता है।

धान की भाँति इसकी भी बेहन डाली जाती है। फिर रोपाई की जाती है। बेहन डालने के पहले इसके बीज को एक दिन पानी में भिगोकर फिर गोबर में एक सप्ताह तक भाठ (ढक) देते हैं। बेहन छोड़ कर ईख की पत्ती से खेत को ढक देते हैं। चार दिन बाद डाभी निकलती है। इक्कीस दिन में बेहन तैयार होती है। बेहन बैठाने के लिए कुदार द्वारा जो पतली-पतली नाली बनाई जाती है उसे घरी कहते हैं। बेहन बैठाने के उपरांत तुरंत पानी रँगाते (सींचते) हैं।

१४६. प्याज में सिंचाई प्रति सप्ताह होनी चाहिए। प्रत्येक बार सिंचाई के पश्चात् गोड़नी की जाती है। प्याज के लिए बाइस बार सिंचाई करनी चाहिए; कहावत है, "बाइस पानी पियाज नाहीं तो भइल छियाज।"

प्याज के फूल को तुक्का कहते हैं। प्याज बैसाख में खना जाता है।

प्याज में निम्न रोग लगते हैं—

ढाहा—इस रोग के लगने पर पौधा गल जाता है।

गँड़पतिया—इस रोग में पत्तियाँ मर जाती हैं।

मिरचा

१४७. मरचा (मिरचा) के लिए भी गोंयड़ का खेत होना चाहिए। यह असाढ़ में बोया जाता है और कातिक से लेकर चैत तक फलता है। मघऊ (माघ का) मरचा अच्छा और तीत (तीता) होता है। चैत का मिरचा छोटा और कम तीत होता है।

मिरचा का बीज बहुत छोटा और हलका होता है। इसकी बेहन डाली जाती है। बेहन डालने में पहले कियारी को पानी से भर देते हैं। पानी रहने पर ही बीज छींट देते हैं और फिर ऊपर से हलकी खाद डाल देते हैं। तत्पश्चात् टाटी से कियारियों को ढक देते हैं। लगभग एक सप्ताह में बीज उग आते हैं फिर टाटी हटा लेते हैं। बीज जम आने पर खेत में राखी छींटते हैं। बेहन तैयार होने पर क्वार में इसकी रोपाई होती है।

१४८. रोपने के बाद पौधों में किसी टोंटीदार बर्तन से पानी डालते हैं जिसे टोंटियाइब (टोंटियाना) कहते हैं। तीन-चार दिन लगातार इसी

प्रकार पानी दिया जाता है फिर पूरी सिंचाई की जाती है। प्रत्येक सिंचाई के बाद गोड़ाई की जाती है। फल आने पर गोड़ाई बन्द हो जाती है। आवश्यकतानुसार समय पर निराई भी की जाती है।

मिरचा में निम्न रोग लगते हैं—

ललमुँहवा कीड़ा—यह कीड़ा बेहन में लगता है और उसे नष्ट कर देता है। इससे बचने के लिए राखी छींटते हैं।

मड़वा—यह पत्तियों का रोग है। पत्तियाँ सिकुड़ कर छोटी रह जाती हैं, बढ़ती नहीं। पत्तियों को इस दशा को **कुञ्जब** (कुँजना) कहते हैं। इस रोग के लगने पर पौधा सूख सकता है।

मूली

१४६. मूली के दो भेद प्रचलित हैं :—

(१) **मोहवा**—यह भादों के अंत में बोई जाती और कुआर के अंत तक तैयार हो जाती है। यह पतली होती है।

(२) **नेवार** या **नेवरवा**—यह मोटी और अच्छी मूली है। यह कुआर के अंत में बोई जाती है और एक मास में खाने के योग्य हो जाती है। यह लगभग माघ तक खाने योग्य रहती है। इसके बीज को साधारणतः आलू की **डुडुही** पर गाड़ देते हैं।

मूली फलने के लिए उसे एक स्थान से उखाड़ कर दूसरे स्थान पर गाड़ते हैं। बीज के लिए ऐसा करना पड़ता है। मूली में जो कंछा निकलता है उसे **कड़री** कहते हैं।

माहो—जाड़े में **पुरवा** बहने पर या बदरी होने पर मूली में यह रोग हो जाता है। जिससे पौधे को हानि पहुँचती है।

जिस मूली के रेशे कड़े हो जाते हैं और बीच में जो रूई की भाँति सफेद हो जाती है उसे **रूर** कहते हैं।

पोस्त

१५०. पोस्त को **पोहता** बोलते हैं। इसके लिए बहुत अच्छी जमीन चाहिए। चैती फसल के साथ कातिक में इसकी बोआई होती है। यह चौमासा खेत में बोया जाता है। जिस खेत में पोस्त बोना होता है उसे खाद-पाँस से अच्छी

तरह सजाया जाता (तैयार किया जाता) है बोने से पहले बीज को रात भर पानी में भिगोते हैं। सबेरे उसे पानी से निकाल कर राखी में मिलाते हैं। फिर पैरा की रीति से बोते हैं। तीन-चार दिन पर फिर खेत जोत कर हेंगाते हैं। खेत कोई बार हेंगाते हैं ताकि खेत की नमी बनी रहे। अठइयाँ (आठवें दिन) अंकुर निकलता है। अंकुर को छोरई कहते हैं। अंकुर निकल आने पर सिंचाई के लिए कियारियाँ बनाते हैं। पौधों के कुछ बड़े होने पर जहाँ पर पौधे घने जमे रहते हैं वहाँ के कुछ पौधों को चुटकी से उखाड़ देते हैं। इस क्रिया को चुटकियाइब (चुटकियाना) कहते हैं।

१५. पौधों के कुछ बढ़ जाने पर सिंचाई की जाती है। सिंचाई के पूर्व बरहों में पानी पहुँचा कर उसकी गीली मिट्टी निकालकर नाली के किनारे छोप देते हैं इससे नाली गहरी होने के साथ-साथ दृढ़ हो जाती है और पानी के कटने का भय नहीं रहता। इस क्रिया को मुरियाइब (मुरियाना) कहते हैं। मुरियाने का काम शाम को करते हैं और सुबह खेत भरते (सींचते) हैं। बरहा में पानी पहुँचाने को बरहा पनियाइब (पनियाना) कहते हैं। सिंचाई के बाद यथा समय खुरपी से गोड़ाई की जाती है। फागुन में ढेका (कली) लगता है। इस समय सिंचाई करने पर फूल खिल जाता है और फल आ जाता है।

अ फी म :

१५२. फल जब इतना बड़ा हो जाता है कि उसमें अफीम (एक प्रकार का गोंद) बैठ जाती है तब शाम को नहनी या नहन्नी से उस पर निशान बनाते हैं। नहनी से चीरने में सावधानी चाहिए, न इतना कम चीरा जाय कि अफीम न बह सके और न इतना अधिक चीरा जाय कि फल खराब हो जाय। अगले दिन प्रातः सितुहा (सुतुई के आकार का लोहे का औजार) में अफीम काछ ली जाती है। अफीम को एक परई में रखते हैं। सितुहा और हाथ में जो अफीम लगी रहती है उसे किसान एक हाँड़ी में धो डालता है। जब अफीम पानी में नीचे बैठ जाती है, तब उसे निकाल कर अलग कर लेते हैं। इसी प्रकार पुनः दूसरी जून (समय) कुछ फलों को चीरा जाता है और उन्हें सुबह काँछा जाता है। चीरने और काँछने की सुविधा के लिए किसान खेत को तीन-चार भाग में बाँट लेता है।

१५३ जब माल (अफीम) आना बन्द हो जाता है तब पौधों को काट कर उन्हें आँटा के रूप में बाँधते हैं, और सूखने के लिए उनको जमीन पर खड़ा करके रखते हैं। सूखने पर फलों को डंडे से पीट कर बीज अलग करते हैं। बड़े फल को ढेढ़ा और छोटे को ढेढ़ी कहते हैं। फल के छिलके के टुकड़ों को पोस्तैरी कहते हैं। फल के अंदर पोस्त होता है।

४

पशु-पालन

गाय

१५४ स्नेह-वश या सुविधा के लिए मनुष्य पालतू पशुओं का भी नाम रख लेता है। गाय के नामों का निम्न ढंग से वर्गीकरण किया जा सकता है :—

जाति के आधार पर :

यहाँ की नस्ल वाली गायों को **देसी** (देशी) कहते हैं। बाहर से आने वाली गायों में **चम्बली** या **चम्बलपारी** तथा **सरजूपारी** हैं जो क्रमशः चम्बल औरों सरजू नदी के आस-पास के प्रदेश से आती हैं।

रङ्ग के आधार पर :

१५५. जो गाय जिस रङ्ग की होती है उसी के आधार पर उसे पुकारते हैं। उज्जर (सफेद) गाय को साधारणतः **उजरको** या **धोरी** कहते हैं। अधिक श्वेत गाय को **धवरचाँदी** तथा **बगुली** कहते हैं क्योंकि चाँदी और बकुल-पंख अपनी श्वेतता के लिये प्रसिद्ध हैं। काली गाय को **काली, कलूटी, कृष्णा, श्यामा, करिअई** तथा **करौंछी** कहते हैं। भूरे रंग की गाय को **भूरी,** लाल रंग की गाय को **ललकी** या **लोहिया** कहते हैं। जिस गाय का रोवाँ या रोआँ (बाल) काला और उज्जर मिला हो उसे **सोकनी** कहते हैं। जो गाय कहीं काली और कहीं सफेद या किसी दो रंग वाली होती है उसे **कबरी** या **चितकबरी** कहते हैं। कई रंग की गाय को **छिबरी** कहते हैं। कुछ गायों के नाम उपमान के आधार पर रक्खे हुए मिलते हैं यथा महुआ के रंग वाली गाय को **महुवर,** महोख पक्षी सदृश रंग वाली गाय को **महोखिया** तथा सियार के रोआँ से मिलने वाली गाय को **सियर रोउवाँ** कहते हैं।

रूप के आधार पर :

१५६ जिस गाय की चाँदी (मस्तक) पर कोई चिह्न पाया जाता है उसे **चेनुली** कहते हैं। मस्तक पर टीका ऐसा चिह्न होने पर **टिकुई** कहते हैं। आँख के चारों ओर कालापन होने पर **कजरी** कहते हैं। जिसके कान और

सींगें एक दूसरी से सटी हुई हों उसे **कनचिपटी** कहते हैं। छोटी-छोटी सींग वाली को **गुंडी** या **मुंडी**, आगे की ओर झुकी हुई सींगों वाली को **घोंची**, फैली हुई सीगों वाली को **मैंनी** तथा ऐसी गाय को जिसकी एक सींग सरग (आकाश) की ओर और दूसरी पाताल की ओर हो उसे **सरग-पताली** कहते हैं। जिसकी सींगें हिलती रहती हैं उसे **डुगडुगइया** कहते हैं। जिस गाय की सींगें सामने की ओर झुकी हों और गाय उन्हें देख सकती हो उसे **भगमानी** (भाग्यवती) कहते हैं। चवँर सदृश घनी पूँछ वाली को **चँवरी** तथा कटी पूँछ वाली को **बाँड़ी** या **डूँड़ी** कहते हैं।

स्वभाव के आधार पर:

१५७. गाय के किसी विशेष स्वभाव के आधार पर भी नाम पड़ जाता है, यथा, लात चलाने वाली गाय को **लतही** या **लतहिया**, मारने वाली को **मरकहिया** तथा हौंकारने वाली को **हौंकरहिया** कहते हैं। जो किसी को देखकर चौंकती या भड़कती है उसे **भड़कनहिया**, जो दूध लगाते समय कूदती-फाँदती या छटकती है उसे **छटकनिहया** तथा भाग-भाग कर खेत खाने वाली को **हरही** या **हरहिया** कहते हैं। कुछ गायें ऐसी होती हैं जो भोजन रुचिपूर्वक नहीं करतीं, जो कुछ भी खाती हैं उसका कुछ अंश छोड़ देती या खराब कर देती हैं ऐसी गाय को **छीबुनि**, **छिबुनही**, **छिबुनहिया**, अथवा **नीपुनि**, **निपुनही** या **निपुनहिया** कहते हैं। जो गाय खूब खाती है और किसी प्रकार के भोजन को छोड़ती नहीं उसे **खबोर** कहते हैं। अनायास भागने को **पदरौंकब** (पदरौंकना) कहते हैं, अतः ऐसी गाय को जो अनायास भागा करती है **पदरौंकनही** कहते हैं। ऐसी गाय को **बगहर** भी कहते हैं। साँप की तरह लपर-लपर जीभ निकालने वाली को **सँपही** कहते हैं। हरही गाय भाग न सके इस उद्देश्य से उसके गले में लकड़ी का एक टुकड़ा पहना दिया जाता है जिसे **ठीकुर** कहते हैं। ठीकुर पड़ी गाय को **ठिकुरही** या **ठिकुरहिया** कहते हैं। अत्यन्त सीधी गाय को **कपिला** तथा ऐसी गाय को जिसे जब चाहे दुह ले **कामधेनु** कहते हैं। एकाध (कोई-कोई) कामधेनु ऐसी होती हैं जो थोड़ा सा दूध बराबर दिया करती हैं; पर ऐसी गाय का दूध व्यवहार में नहीं आता केवल भगवान को चढ़ाने के लिए प्रयोग में आता है।

गर्भधारण से बियाने तक का विवरण:

१५८. बछिया के युवा होने पर उसे **कलोर** कहते हैं। बरदाने का समय आने पर गाय **चोकरती** (चिल्लाती) है। उस समय उसकी योनि से एक प्रकार का तरल पदार्थ निकलता है जिसे **भरहरी** **झरब** (झरना) कहते हैं। ऐसे समय योनि कुछ चौड़ी हो जाती है जिसे **जोइनाब** (जोइनाना) कहते हैं। इन लक्षणों के होने पर गृहस्थ यह समझ लेता है कि गाय के गर्भ-धारण का समय आ गया है और वह बरदाने के लिए इच्छुक है। गाय की इस दशा को **ओहाब**

(ओहाना) या **ओहाइन पर उठब** अथवा **उठान पर उठब** (उठना) कहते हैं और ऐसी गाय को **ओहाइल** (ओहाई हुई) कहते हैं। गाय के बरदाने की क्रिया को **पाल खाब** (खाना) कहते हैं। साँड़ के गाय पर चढ़ने की क्रिया को **पार बहब** (बहना) कहते हैं। कुछ गायें एक पार बहने पर बरदा जाती हैं और कुछ कई पार बहने पर। गर्भ रह जाने को **ठहरब** (ठहरना) कहते हैं। ठहरी हुई गाय को **गाभिन** कहते हैं। गर्भ के कुछ मास बीतने पर गाय का पेट बाहर निकलने लगता है जिसे **पेट उभरब** (उभरना) कहते हैं। गाभिन गाय को **कोरावत** गाय भी कहते हैं। यदि किसी कारण **गाभ** (गर्भ) गिर जाय तो उसे **उलट जाब** (जाना) या **लड़ाय जाब** (जाना) कहते हैं।

जब गाय बियाने के समीप होती है तब वह थन करने लगती है जिसे **थन छोड़ब** (छोड़ना) कहते हैं। थन की भरी हुई अवस्था को **थलकल थन** कहते हैं। इस अवस्था को **ओयर छोड़ब** (छोड़ना) भी कहते हैं। बियाने के दिन निकट आने पर गर्भ नीचे की ओर खिसकता है। इस प्रकार जब गर्भ नाभी से नीचे आ जाता है तब उसे **ढोंढ़ा छोड़ब** या **बाँसा छोड़ब** (छोड़ना) कहते हैं। बच्चे के पैदा होने के पूर्व एक प्रकार का जल गिरता है जिसे **मुतउड़ आइब** (आना) या **मुतउड़ फूटब** (फूटना) कहते हैं।

१५९. बच्चा पैर की ओर से पैदा होता है इसलिए पहले उसका खुर दिखाई देता है; बच्चे की इस दशा को **खुरिआब** (खुरिआना) कहते हैं बच्चे के बाहर निकलने के साथ कभी-कभी गर्भाशय भी निकल आता है जिसे **फूल** या **पुरइन आइब** (आना) कहते हैं। यह खतरनाक अवस्था है। ऐसे समय कोई चतुर व्यक्ति हाथ से पुरइन को भीतर ढकेल देता है। पुरइन बैठ जाने पर गाय को कुछ समय तक बैठने नहीं देते, उसे खड़ी रखते हैं क्योंकि बैठने पर दबाव पड़ता है और पुरइन के फिर निकल आने का डर रहता है। बच्चा पैदा होने के कुछ देर बाद **खेड़ी** या **खेढ़ी** गिरती है। कभी-कभी गाय इसे खा जाती है। ऐसी दशा में गाय को **सरया धान** उबालकर खिलाते हैं ताकि खेढ़ी मल के साथ निकल जाय। बाँस की पत्ती या कच्चो तीसो भी इसी उद्देश्य से खिलाते हैं। गाय को प्रसव के दिन पीने के लिए पानी नहीं देते, अरहर का जूस देते हैं। इससे दूध बढ़ता है।

१६०. पैदा होने पर बच्चे के मुँह में **गेजार** रहता है इसे अँगुली डाल कर साफ कर दिया जाता है। नवजात बच्चे को **पोआ** या **अल्हर** कहते हैं। इसके पूर्व कि बच्चे को थन में लगावें थन में घी चुपर कर उसका **पेउस** निकालते हैं। थन का मुँह पहले-पहल बन्द रहता है. उस पर एक प्रकार की खोज होती है जिसके निकलने के बाद ही दूध निकलता है। खील निकालने को **खील फोरब** (फोड़ना) कहते हैं। बच्चे के लिए स्तन में दूध उतरने को

पेन्हाब (पेन्हाना) कहते हैं। दुहने के पूर्व स्तन में दूध उतरने को ओगरब (ओगरना) कहते हैं। आरंभ के चार-पाँच दिन के दूध को पेउस या फेउस कहते हैं, इसे अशुद्ध मानते हैं। इसमें सोंठ और गुड़ डालकर पकाते हैं। पकने पर इसे इन्नर कहते हैं। आग पर रखने पर पेउस फट जाता है, इससे इसे फटउद भी कहते हैं। दूध शुद्ध होने को फरिचाब (फरिचाना) कहते हैं। लगभग ग्यारह दिन में दूध पीने के योग्य हो जाता है किन्तु सयाने (बड़े-बूढ़े) लोग बरही (बारह दिन) समाप्त होने पर दूध पीते हैं।

१६१. गाय की चारों चूँचियों में बराबर दूध नहीं होता है। यदि किसी चूँची में दूध नहीं होता है तो उसे कानी चूँची कहते हैं। यह चूँची औरों से साधारणतः छोटी होती है। चूँची को छीमी भी कहते हैं बहुत सी गायें दूध देने में कंजूसी करती हैं यानी दूध चुरा लेती हैं ऐसी गायों को चोरकटि या चुट्टी कहते हैं। जो गाय दूध देते समय लात चलाती है उसके पिछले पैरों को एक रस्सी से छान (बाँध) देते हैं जिसे छानब (छानना) कहते हैं। जिस रस्सी से पैर छाना जाता है उसे छाना कहते हैं। अधिक बदमाश (बदमाश) गाय की सींग भी बाँधनी पड़ती है, इस कार्य को सिंघौटा लगाइब (लगाना) कहते हैं। बच्चा दूध न पी सके इसलिए चूँची में गोबर लगा देते हैं जिसे चूँची गोबराइब (गोबराना) कहते हैं। छीमो में कभी-कभी खर्रा या खरवा फट जाता है जो घी लगाने से अच्छा होता है। कभी-कभी गाय का थन सूज आता है इसे थली कहते हैं। इसके लिये थन को गरम पानी से धोते हैं और टोटका के रूप में लकड़ी की कंघी छुआते (स्पर्श कराते) हैं।

१६२. पहला बियाना पहिलौंठी कहलाता है। यदि पहली बार देर से गर्भ रहता है तो इसे चढ़ि के बियाब (चढ़ कर बियाना) कहते हैं। पहले बियाने से दूसरे बियाने में अधिक अन्तर पड़ जाने को भाँज मारब (मारना) कहते हैं। हर साल बियाने वाली गाय को कुरेधिया कहते हैं। जब गाय का बच्चा मर जाता है तब गाय को पेन्हाने के लिए उसके सामने कुछ खाने का सामान रखना पड़ता है जिसे भारा कहते हैं। भारा पर दूध देने वाली गाय को भरही कहते हैं। गाय के धीरे धीरे दूध कम कर देने को दूध तोरब (तोरना) कहते हैं। जब गाय दूध देना बिलकुल बन्द कर देती है तब उसे बिचुकब (बिचुकना) या बिसुकब (बिसुकना) कहते हैं। गाय के दूध देने को लगाब (लगना) कहते हैं। लगती हुई गाय को लगेन या लगहर कहते हैं। बियाने के पाँच-छः मास तक गाय धेनु कहलाती है। कई मास हो जाने पर जब दूध गाढ़ा हो जाता है तब गाय को बकेन या बकेना कहते हैं। ऐसी गाय को जिसके बच्चे मर जाया करें या जो बच्चे के मर जाने पर दूध देना बन्द कर दे ठाँठ कहते हैं। जो गाय कभी गर्भ न धारण करे उसे बाँझ या बहिला कहते हैं।

गाय जहाँ बाँधी जाती है उसे सारि या गउसारि कहते हैं।

बैल

१६३. बैल की ऊंचाई नापने के लिए उसके पिछले पैर के खुर से कूल्ह के नीचे तक एक लकड़ी से नापते हैं। फिर इस लकड़ी को मूठी (मुट्ठी) से नाप लेते हैं। जितनी मूठी लकड़ी होती है बैल को उतनी मूठी का कहा जाता है। गाय की भाँति बैलों के भी नाम सुविधा के लिए रख लिए जाते हैं, जिनका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है :—

जाति के आधार पर :

देवहटिया—ये बारह से चौदह मूठी तक होते हैं। ये देवहा (सरजू) नदी के आस-पास पाए जाने वाले बैल हैं। इन बैलों का हिक्का (पीठ से लेकर कंधे तक का भाग) चौड़ा तथा कमर पतली होती है। मुतान, छुच्छी या नाभी एक दम पेट से सटी रहती है। पूँछ लंबी होती है। मजबूती के कारण इन्हें 'लोहे की गाँठ' कहकर इनकी बड़ाई करते हैं।

चम्मली—चंबल नदी के किनारे पाये जाने वाले बैल चम्मली कहलाते हैं। ये सोलह से अठारह मूठी ऊँचे होते हैं। इनकी सींगें छोटी और ऐंठी हुई होती हैं। ऊँचाई के कारण ये गाड़ी के योग्य होते हैं।

ददरिहा—ददरी (बलिया) के मेले से आने के कारण इन्हें ददरिहा कहते हैं। इनकी मुतान बड़ी होती है। ये भी सोलह मूठी तक ऊँचे होते हैं किन्तु शक्ति में कम होते हैं, ये जल्दी बुड्ढे हो जाते हैं।

गोमतिहा—गोमती नदी के आस-पास पाये जाने वाले बैल गोमतिहा कहे जाते हैं। इनका हिक्का आगे को झुका रहता है। ये चौदह से सोलह मूठी ऊँचे होते हैं। ये भी बड़े मजबूत होते हैं।

लेंहड़िहा—बहराइच और पीलीभीत की ओर से कुछ लोग बैल बेचने आते हैं। इनके साथ बैल के झुंड रहते हैं जिसे लेंहड़ या लेंहड़ी कहते हैं। इन बैलों को लेंहड़ी, डेहरी या अहरी बैल कहते हैं। डेहरी के मालिक को नायक कहते हैं। इन बैलों की सींगें लंबी और ऊपर को उठी होती हैं। लेंहड़ी से बैल छाँटने को लेंहड़ी बेराइब (बेराना) कहते हैं। पूरब से आने वाले बैलों को पुरबिहा तथा पश्चिम के बैलों का पछुमहा कहते हैं।

रंग के आधार पर :

१६४. गाय की भाँति बैलों का भी, उनके रंग के आधार पर, नाम रक्खा जाता है। जिस प्रकार सफेद गाय को धँवरी कहते हैं उसी प्रकार सफेद बैल को धँवरा या

भँवरचाँदी कहते हैं। पक्की बइर (बैर) की भाँति लाल रंगवाले बैल को बइरिया लाल कहते हैं। गेहूँ से मिलते-जुलते रंग वाले बैल को गोहुँअन कहते हैं। हलके काले रंग वाले बैल को काँमड़ कहते हैं। ऐसे बैलों को जिनका कान्ह (कंधा) काला होता है करकन्हा कहते हैं। ऐसे बैल अच्छे माने जाते हैं।

रूप के आधार पर :

१६५. गाय की भाँति बैल के भी मैना, सरगपताली, डुगडुगहा या डुग्गुर, मुंडी आदि नाम होते है। जिस बैल के ललाट पर दोनों भौं के बीच भँवर होती है उसे भँवरिहा, सँवखिहा अथवा सौंफिहा कहते हैं। यह बैल पइलगहा (पै वाला) अर्थात् दोखी (दोषी) समझा जाता है। जिस बैल की जिहवा पर सफेद धब्बा होता है उसे समुन्नर सोख (समुद्र सोख) तथा जिस बैल की पीठ पर साँप के चिह्न हों उसे साँपिन कहते हैं। ये बैल दोखी माने जाते हैं। जिस बैल की आँख कंजा के रंग की होती है उसे कंजहा या बिलरअक्खा कहते हैं क्योंकि बिलार की आँख भी कंजे के रंग-सदृश होती है।

यदि किसी बैल की पीठ या शरीर के किसी अन्य भाग पर मांस लटक रहा हो तो उसे अमहा कहते हैं। ऐसा बैल धार्मिक दृष्टि से नंदी का स्वरूप समझा जाता है। यदि बैल के शरीर के किसी भाग पर जटा की भाँति बाल निकले हों तो उसे जटहा बैल कहते हैं। यह बैल भी नंदी का स्वरूप समझा जाता है, इससे खेती का काम नहीं लेते हैं।

जो बैल वंश वृद्धि के लिए दाग कर छोड़ दिए जाते हैं उन्हें साँड़ कहते हैं।

स्वभाव के आधार पर :

१६६. चंचल बैलों को फैंकट कहते हैं। ऐसा बैल चलने में तेज होता है जो बैल चलने में अच्छे होते हैं उन्हें खर या तीखड़ कहते हैं। और जो बैल चलने में सुस्त होते हैं उन्हें गरियार कहते हैं। जो बैल चलते-चलते बैठ जाते हैं और कठिनाई से उठते हैं उन्हें परुआ कहते हैं। ऐसे बैल जो परिश्रम करने से घबड़ाते नहीं उन्हें ग[illegible] (गम खाने वाला) कहते हैं। जो बैल किंचिन्मात्र छू देने पर छटपटा उठते हैं उन्हें छपकन कहते हैं। अच्छे मजबूत बैल की पनिगत (पानीदार) कहते हैं। गाय की भाँति बैल भी लतहा, मरकहा तथा हौंकरहा होते हैं।

अवस्था के आधार पर :

१६७. बाछा या बछवा के दूध के दाँत गिरकर जब तक नए दाँत नहीं निकलते तब तक उसे उदंत कहते हैं। प्रायः तीन वर्ष के बाद नए दाँत निकलते हैं। दो-दो दाँत एक साथ निकलते हैं। जब आठ दाँत हो जाते हैं तब बैल पूरी अवस्था को पहुँच जाता है। दाँत दिखाई पड़ने को खूँटी आइब (आना) कहते हैं। छः दाँत वाले बैल को छदरि कहते हैं। सात दाँतवाले को सतदरि

कहते हैं। जब छः दाँत पूरे हों और बाकी दाँतों की खूँटी दिखाई पड़ती हो तो उसे ओछाकाना कहते हैं। जिस बाछा को केवल सात दाँत होते हैं और आठवाँ नहीं निकलता उसे अशुभ मानते हैं कहावत है 'सतदरि कहै मैं आवों जाँव कुटुँब परिवार उपरेहितहिं खाँव।' इसी प्रकार नौदरि (नौ दाँत वाले) भी अशुभ माने जाते हैं यथा 'नौदरि कहै नवोदिशि खाँव, लै बढ़नी उपरे-हितहिं खाँव'। बैल के आठ दाँत पूरे हो जाने को सोझ होब (होना) कहते हैं। ऐसे बैल को मिलहर (मिला हुआ) अथवा तउला (तौला हुआ) कहते हैं।

साधारणतः प्रति वर्ष दो-दो दाँत निकलते हैं। इस प्रकार दाँत निकलने को बरिसाथन दाँतब (दाँतना) कहते हैं। ऐसे बैल जिन्हें छः महीने पर ही दाँत निकल आते हैं उन्हें भरदंता, भड़दंता या भड़कदंता कहते हैं। इन बैलों को अशुभ मानते हैं। स्वस्थ बछवा को लाढ़ा कहते हैं। बैल को बरद, बरदा, बरध तथा बरधा कहते हैं।

ब धि या क र ना :

१६८. बैल के दो भेद हो सकते हैं। एक अंडू दूसरा बद्धी या बधिया। अंडू बैल बहुत जोशीले और बदमाश होते हैं। इन्हें अधिकार में करना कठिन होता है इसीलिए इन्हें बद्धी कर दिया जाता है। अंडू बैल गाय को देखकर चिल्लाते हैं और उनका वीर्यपात हो जाता है जिसे नरियाब (नरियाना) कहते हैं। नरियाने से उनकी शक्ति का ह्रास होता है। इसलिए जब बैल चार या छः दाँत का हो तभी उसे बधिया कर देना चाहिए। अधिक अवस्था हो जाने पर बैल की डील गिर जाती है। ऐसे बैल जब बद्धी होते हैं तो उन्हें छतरभंग कहते हैं और ये अशुभ माने जाते हैं।

बधिया करने का कार्य चमार जाति के लोग करते हैं। जब पछुआ बयार (हवा) चलती हो तब बधिया करना चाहिए क्योंकि घाव के लिए पछुआ हवा अनुकूल होती है। बधिया करते समय बाछा को पछाड़ (लेना) दिया जाता है। पाँच-छः आदमी उसे कसकर पकड़ते हैं इसके बाद चमार बैल के अंड-कोषों को एक लकड़ी से बगल करके उस स्थान की नसों को मूसर पर रखकर लोढ़े से कुचल देता है। इस प्रकार बैल की बद्धी हो जाती है। बद्धी सफल होने की पहचान यह है कि उस समय बैल के दाँत और मूँछ के बाल हिल जाते हैं। जिन बैलों की यह अवस्था नहीं होती है उनकी बद्धी सफल नहीं समझी जाती है। कुचली हुई जगह पर हलदी लगाई जाती है।

१६९. बद्धी करने के चार-पाँच दिन बाद तक बैल के अंडकोष फूले रहते हैं। धीरे-धीरे ये सूख जाते हैं। बद्धी सफल होने को बद्धी मानब (मानना) कहते हैं। जब बद्धी नहीं मानता तब कोई अंड कोष छोटा और कोई बड़ा हो

जाता है। ऐसी दशा में बैल को नसहर कहते हैं। नसहर बैलों को पुनः बधिया करना पड़ता है। ऐसे बैलों का स्वभाव क्रोधी और चिड़चिड़ा हो जाता है।

बैल निकालना :

१७०. बाछा या बछवा को हल में चलने की शिक्षा देने के लिए उसे एक अधेड़ बैल के साथ, हल के बजाय एक लकड़ी रखकर. जोतते हैं। युवा बैल सहनशील नहीं होता इसीलिए अधेड़ के साथ अभ्यास कराते हैं। जब उसे लकड़ी के साथ दौड़ने का अभ्यास हो जाता है तब उसे छोटे हल में नाँधते है। इस समय उसे बाएँ-दाँए मुड़ने के इशारों का भी ज्ञान हो जाता है। इस सारी प्रक्रिया को बैल निकारब (निकालना) कहते हैं।

बैल नाथना :

१७१. साधारणत: बैलों के बाँधने के लिए उनके गले में एक रस्सी पहना दी जात है जिसे गराँव या गेराँव कहते हैं और उसी में एक दूसरी रस्सी लगाकर जानवर को एक खूँटे में बाँधते हैं। इस रस्सी को पगहा कहते हैं। लेकिन चचल या शरारती बैल इतने से काबू में नहीं आते हैं। इसलिए उनके नथने में एक रस्सी डालकर उन्हें काबू में किया जाता है। इस रस्सी को नाथी कहते हैं। यह रस्सी पतली, चिकनी और दो-ढाई हाथ लंबी होती है। रस्सी पहनाने के लिए उसे एक सूजा में पिरोकर नथने में से निकालते हैं। फिर इस रस्सी के दोनों किनारों को सींग के पीछे ले जाकर बाँध देते हैं। इस क्रिया को बैल नाथब (नाथना) कहते हैं।

१७२. अधिक शरारती बैल के लिए दोगाही लगानी पड़ती है। दोगाही लगाने का यह ढंग है कि बैल के गर्दन में एक रस्सा पहना दी जाती है। इस रस्सी को कंठा कहते हैं। नाथी की ,रस्सी और कंठे की रस्सी दोनों को लोहे के एक चुल्ले या छल्ले में से निकालते हैं। फिर इस चुल्ले में रस्सी डालकर उसे खूँटे में बाँधते हैं। इसी रस्सी को दोगाही कहते हैं। यदि अधिक उखमजी (ऊधमी) बैल हुआ तो उसके दोनों ओर दोगाही लगानी पड़ती है दोनों ओर दोगाही लगाने को छिरकी या सिरकी कहते हैं। ऐसा करने से बैल अइती (अधिकार) में आ जाता है।

भैंस

१७३. भैंस की दो जातियाँ मिलती हैं एक देसी और दूसरी मुर्रा। देसी, मुर्रा की अपेक्षा, हर दृष्टि से घटिया होती है। लेकिन देहात में मुर्रा भैंस केवल बड़े आदमियों के यहाँ ही देखने को मिल सकती है। मुर्रा का शरीर सुंदर, सुडौल,

भारी तथा भरा हुआ होता है। इसकी सींगें ऊपर को मुड़ी होती हैं संभवतः इसीलिए इसे मुर्रा कहते हैं। मुर्रा अधिक दूध देने वाली होती है।

१७४. भैंस साधारणतः दो ही रंग की पाई जाती है। एक **खैरा** (खैर के रंग-सदृश) दूसरी **करिया** (काली)। खैरा को **भूरी** भी कहते हैं। खैरा भैंस दुधार मानी जाती है। जिस भैंस के रोयें पतले हों वह भी अच्छी मानी जाती है।

१७५. जिस भैंस की **चाँदी** (मस्तक) पर बाल न हों उसे **चन्नुल** कहते हैं। जिस भैंस के थन फटे हों उसे **चरकही** कहते हैं। ऐसी भैंस अच्छी नहीं मानी जाती है।

१७६. गाय की भाँति भैंस भी **लतही, मरकही, हौंकरही** तथा **छटकनही** होती है अतः गाय के स्वभाव के आधार पर रक्खे हुए नाम साधारणतः भैंस के भी हैं।

गर्भ धारण से बियाने तक का विवरण :—

१७७. **पाँड़ी** या **पँड़िया** जब गर्भ धारण के योग्य होती हैं तब उसे **ओसर** कहते हैं। **पाँड़ा** या **पड़वाँ** सयाना होने पर **भैंसा** कहलाता है। जिस समय भैंस **भैंसाने** के लिए इच्छुक होती है उस समय वह चिल्लाती है जिसे **अड़ाहर देब** (देना) कहते हैं। भैंस की इस दशा को **थिराब** (थिराना) और ऐसी भैंस का **थिरायल** (थिराई हुई) कहते हैं। ऐसे समय यह आवश्यक है कि भैंस को भैंसाने का अवसर दिया जाय अन्यथा आठ-दस घंटे बाद उसकी यह अवस्था शांत हो जाती है जिसे **अथिर जाब** (जाना) कहते हैं।

भैंस के बियाने की दशा गाय की तरह समझनी चाहिए। बिया जाने पर, इसे भी **धेनु** कहते हैं और जब दूध देते हुए तीन चार मास हो जाते हैं तब **बकेन** कहते हैं। भैंसा जाने के बाद भी भैंस तीन-चार मास तक दूध देती रहती है। लेकिन दूध का स्वाद भैंसाने के बाद धीरे-धीरे खारा होता जाता है। साधारणतः भैंस सात-आठ **बियाना** बियाती है। बियाने वाले पशुओं का वयस् उनके बियाने से समझा जाता है।

पशुओं के रोग

१७८. पशुओं को साधारणतः निम्न बीमारियाँ होती हैं :—

जानवरों को दवा पिलाने के लिए बाँस का **ढरका** बनाते हैं। इसका एक ओर का मुँह नोकदार और पतला रहता है और दूसरी ओर गाँठ रहती है।

टाँसा—यह साधारणतः पिछले पैरों में होता है। पैर में कभी-कभी दर्द

होने लगता है और ऐसी दशा में पैर की नस तन जाती है। कभी-कभी पैर में झनक भी चढ़ जाती है। यह एक प्रकार का बतास अर्थात् वायु का रोग है।

खाँगा—इस बीमारी में खुर में कीड़े-पड़ जाते हैं। बैल को पानी में खड़ा करने से यह बीमारी दूर हो जाती है क्योंकि पानी से कीड़े मर जाते हैं।

गंडा—पूँछ में जब गुठली ऐसी मांस-वृद्धि हो जाती है तब उसको गंडा कहते हैं।

चाभा—बैलों की जीभ पर बड़े-बड़े दाने पड़ जाते हैं जिनके कारण उन्हें भोजन करने में कष्ट होता है। इसे किसी चाकू अथवा नमक और झावाँ से रगड़ कर साफ करते हैं।

घुरका या घुड़का— यह श्वास-कष्ट की बीमारी है। गले में घरघराहट होती है। इसमें पशु का प्राण तक चला जाता है।

ढाँसा—यह भी फेफड़े की बीमारी है। इसमें पशु ढाँसता अर्थात् खाँसता है।

हलफा—यह श्वास कष्ट का रोग है। इसे हाँफा भी कहते हैं।

नकड़ा—इस बीमारी में नाक से साँस आने-जाने में कठिनाई होती है। औषध के रूप में मदार की पतली डाली नाक में डालते हैं।

सुकडाभा—इसे सुकडैना भी कहते हैं। बैल की तारू (तालु) में एक छेद हो जाता है। इसे बन्द करने के लिए नरई के टुकड़े को छेद में डाल देते हैं।

बाघी -वह बहुत कठिन बीमारी है। पेट के अंदर फोड़ा हो जाता है। यदि यह फूटकर बह जाय और इसका रक्त पाखाने के साथ निकल जाय तब तो बैल बच जाता है अन्यथा मरने की संभावना रहती है।

मेघी—तालू के पास दो अंगुल लंबी और कुछ चौड़ी झिल्ली बन जाती है जिससे खाने-पीने में बड़ा कष्ट होता है। खुरपी गरम करके इसे दागते हैं।

फाठा—इस बीमारी में शरीर के किसी स्थान से खून बहकर निकलने लगता है। यदि यह बंद न हो जाय तो पशु मर सकता है।

पेटउख—इसमें पतले दस्त आते हैं। और पशु का भोजन कम हो जाता है। पतले दस्त आने को पोंकब (पोंकना) भी कहते हैं।

घेंघा—घेंघे में सूजन हो जाती है और खाने-पीने में कष्ट होता है। इस पर चिउँटा के बिल की मिट्टी पानी में सानकर लगाते हैं।

फूली—यह आँख का रोग है। इसमें पुतली पर कुछ उभरा हुआ सफेद दाग पड़ जाता है।

माँड़ा—आँख की पुतली पर पर्दा पड़ जाता है।

मिरगी—कभी-कभी मुँह और नाक से गाज आने लगता है और जानवर मुँह को जमीन में दर्रता (रगड़ता) है।

पेटफुल्ली—इसमें पेट फूल आता है और पेशाब बन्द हो जाती है ।

घुमरी—इसमें चक्कर आता है ।

कभी-कभी चेचक आदि फसली बीमारी का प्रकोप होता है । इसके लिए देवी-भवानी की पूजा की जाती है और उनके नाम पर बीमारी का निकार किया जाता है । निकार करने से, ऐसा विश्वास है कि, बीमारी भाग जाती है। यह एक प्रकार का टोटका है ।

जब गोरू (पशु) बीमार होने लगते हैं तब कहा जाता है कि गोरुओं पर आभा आई हुई है। जब गोरू बहुत अधिक संख्या में मरने लगते हैं तब कहते हैं कि महामाया, जगदंबा या भगौती की बीमारी है ।

पशुओं का भोजन

१७६. पशुओं का मुख्य भोजन सानी है । नाद में पानी डालकर भू सा के साथ कुछ अनाज चोकर और खली डालकर खिलाने को सानी कहते हैं । सानी तैयार करने को सानी चलाइब कहते हैं । सानी के अतिरिक्त उन्हें घास या खेत की हरियरी भी दी जाती है । अँकरी नामक घास जौ-गेहूँ के खेत में होती है, इसे गाय-बैल बड़े चाव से खाते हैं । सूखी चीजों में पुआरा और सेंठा (जोन्हरी का डंठल) दिया जाता है; सानी के साथ इन्हें बाल कर मिला दिया जाता है । समय-समय पर उन्हें सौंहटा (सावाँ का पुआरा). गेंड़ा (ईख के सिरे पर की पत्तियाँ) तथा मुँगारा (बिना फूटा हुआ धान का पौधा) भी दिया जाता है। इन सब को पशुओं का चारा या कोयर अथवा लेहना भी कहते हैं। सावाँ के बालन को सौंड़ेरी कहते हैं । जब सूखा कोयर दिया जाता है तब उसे कोरी कहते हैं । गाड़ी वाले बैलों को सानी खिलाने का अवसर नहीं मिलता है अतः उन्हें कोयर, थोड़ा पानी छिड़ककर, खिलाते हैं जिसे मकोला कहते हैं। बैल जहाँ बाँधे जाते हैं उस स्थान को बरदौर कहते हैं। चारे के लिए आषाढ़ में बजरा-उर्द-मोथी एक में बो देते हैं जिसे चरी कहते हैं। चरी को गँड़ास से बालते हैं । चरी बालने के लिए एक लकड़ी गाड़ते है जिसे नेसुहा कहते हैं ।

पशु चराना

१८०. गोरू शब्द मवेशी के अर्थ में प्रयुक्त होता है जिसमें गाय-भैंस-बकरी

सभी सम्मिलित हैं। चराने वाले को **चरवाहा** कहते हैं। और गोरू चराने के कार्य को **चरवाही** कहते हैं। मवेशियों को **चरवहिया** कहते हैं। जो लोग स्वयं अपने गोरू को नहीं चराते वे चरवाही का कार्य किसी को सौंप देते हैं और उसके बदले में उसे मजदूरी देते हैं।

जिस जगह गोरू चरने जाते हैं उस स्थान को **चरात, चारागाह** अथवा **खरका** कहते हैं। गोरुओं के चरने के लिए जो विशेष स्थान है उसे **रखौना** कहते हैं।

गोरू चरने के लिए प्रातः छोड़े जाते हैं। वर्षा के समय चरवाही का का कार्य बंद हो जाता है। गर्मी में दिन निकलते-निकलते गोरू अवश्य छोड़ दिए जाते हैं और दुपहर (दोपहर) को उन्हें वापस लाकर बाँध दिया जाता है फिर तीसरे पहर उन्हें चरने के लिए छोड़ा जाता है। जाड़े में **दिन चढ़े** (दिन चढ़ आने पर) गोरू छूटते हैं और शाम को वापस आते हैं। रात में गोरू एक साथ किसी घेरे में रखे जाते हैं जिसे **अड़ार** कहते हैं।

गोरुओं में जो बहुत बदमाश, मारनेवाले या भागनेवाले होते हैं उन्हें **सरहँग** कहते हैं। **पैंचल** भी इस अर्थ में प्रयोग होता है। ऐसे जानवरों के गले में एक लकड़ी जो लगभग डेढ़ हाथ लंबी और आदमी की बाँह इतनी मोटी होती है एक रस्सी लगाकर लटका देते हैं। इसे **ठेकुर** कहते हैं। यह जमीन पर **घिसनती** (रगड़ती) चलती है। इससे गोरू दौड़ नहीं सकता क्योंकि एक तो यह गले का बोझ हो जाता दूसरे चलते समय यह पैरों में लगती है। **हरहा** (भागने वाले) गोरुओं के लिए भी यह उपाय किया जाता है। चरवाहा सरहँग गोरुओं को आगे रखता है। इससे दो लाभ होते हैं एक तो ये कमजोर जानवरों को तंग नहीं कर पाते दूसरे इनके आगे रहने से कमजोर जानवरों का रक्षा होती है; **दुब्बर** (दुर्बल) गोरू भी सरहँग गोरुओं के पीछे चलने की कोशिश करते हैं।

१८१. वर्षा में जब बदली होती है तब पशु अत्यंत प्रसन्न देखे जाते हैं विशेषतः भैंसें प्रसन्नता के कारण उछलती कूदती चलती हैं। कभी-कभी ये एक ही दिशा में भागने लगती हैं। इस क्रिया को **माँकब** (माँकना) कहते हैं; इसे **पदरौंकब** (पदरौंकना) भी कहते हैं। जब कभी पशु माँकने लगते हैं तब यह अनुमान किया जाता है कि **बदरी** (बदली) होने वाली है।

१८२. गाँव से गोरुओं के बाहर जाने का जो रास्ता होता है उसे **खोर** या **खोरी** कहते हैं। चरने के लिए गोरू जिस जगह एकत्र होते हैं उस स्थान को **घुट्ट** कहते हैं। बीच-बीच में जिस स्थान पर गोरू विश्राम करके आगे बढ़ते हैं उस स्थान को **अड़ान** कहते हैं। चलते हुए गोरुओं को रोकने को **दोबब** (दोबना) कहते हैं इसका भाव गोरू छेंकने अथवा रोकने से है। चरते हुए गोरू खेत में न पड़ जाँय इस दृष्टिकोण से खेत की मेंड़ पर चरवाहा खड़ा रहता है और गोरुओं

को खेत में जाने से रोकता है। इस क्रिया को डाँड़ देब (देना) कहते हैं। खेत की मेंड़ पर रहने को खेत के डाँड़े रहब (रहना) भी कहते हैं। डाँड़-मेंड़ दोनों शब्दों का साथ-साथ मेंड़ के अर्थ में भी प्रयोग होता है। जब कोई गोरू भाग जाता है तब उसे लौटाने को बहोरब (बहोरना) कहते हैं।

१८३. पशुओं की अधिक भीड़ को हूर कहते हैं। भीड़ की धक्का-धुक्की के अर्थ में हुरमुर शब्द का प्रयोग होता है जैसे, मेला में 'बड़ी हुरमुर बाय' अर्थात् मेला में भीड़ के कारण बड़ी धक्का-धुक्की है। जब कोई जबर या पैनल गोरू किसी दुब्बर गोरू को ढकेलता अथवा खदेड़ता है तो उसे हुरपेठब (हुरपेठना) कहते हैं।

१८४. चरवाहा पशुओं के संकेत के लिए कुछ बोली बोलता है यथा, बछड़ों को बुलाने के लिए वह 'इयाँ हे', 'इयाँ हे' अथवा 'पृहा' का प्रयोग करता है। पँड़िया को 'इयाँ पाँड़ी', 'इयाँ पाँड़ी' कह कर बुलाते हैं। भैंस के लिए 'ही' 'ही' संबोधन प्रयोग में आता है। इन संबोधनों के प्रयोग पर पशु रुक जाते हैं।

१८५. पशुओं के चरने की सामग्री को कदाउर कहते हैं। जौ-गेहूँ कट जाने पर खेत में जो पत्तियाँ या डंठल आदि गिरे रहते हैं उन्हें भी कदाउर कहते हैं। जेठ के महीने में पशुओं को चारे का कष्ट होता है फलस्वरूप गोरू उसरउड़ी (ऊसर की घास) पर ही मुँह रगड़ कर संतोष करते हैं।

१८६. चरने के बाद पशुओं को एक जगह एकत्र करते हैं इसे हिराइब (हिराना) कहते हैं और इस जगह को हिरौनी, हिरवनी अथवा बैठानी कहते हैं। हिरौनी ऐसी जगह बनाई जाती है जहाँ छाया हो और पास में पानी हो। गड्ढे का पानी पशुओं के पीने के काम में तो आता ही है उसमें भैंसें बड़े आनन्द से हिरती अर्थात् लोटती-पोटती हैं।

१८७. गोरुओं के बैठ जाने पर चरवाहे विशेषतः बच्चे भोजन करने चले जाते हैं और फिर भोजन करके लौटते हैं। इस प्रकार बारी-बारी से सब बच्चे खा आते हैं। बच्चों के इस प्रकार घर भेजने को पठौनी कहते हैं। जब सब हिरौनी पर आ जाते हैं तब गोरू फिर से चरने के लिए उभारे जाते हैं। जो गोरू आसानी से नहीं उठता उसे लोढ़ियायल (लेटा हुआ) कहते हैं।

चरवाहों में आपस में झगड़ा हो जाने पर गोलें बन जाती हैं और सब अपने-अपने गोरू अलग कर लेते हैं। इस प्रकार समूह से गोरू अलग करने को गोरू हिगराइब (हिगराना) कहते हैं यह हिगरौवल तब तक बनी रहती है जब तक आपस में वे सब फिर नहीं मिल जाते हैं।

दूध-दही-घी का काम

१८८. दूध-दही-घी का उद्योग विशेषतः अहीर—एक जाति विशेष—ही करते हैं। दूध दुहने के लिए मेंटी (मिट्टी का एक बरतन) प्रयोग करते हैं। जो मेंटी दूध के लिए विशेष रूप से प्रयोग में आती है उसे दुधहँड़ी (दूध की हाँड़ी) कहते हैं। दूध पकाने का कार्य गोइँठी अथवा उपला पर होता है। गोइँठी पशुओं के गोबर से तैयार करते हैं। लकड़ी की आँच से दूध गरम करने की प्रथा नहीं है। गोइँठी धीरे-धीरे सुलगती है। जिस स्थान पर गड्ढा करके गोइँठी जलाई जाती है उसे अँगीठी कहते हैं। मिट्टी की बोरसी या अँगीठी अलग से भी बनती है। बिल्ली आदि से रक्षा के निमित्त दूध को एक हौदे से ढँक देते हैं। इस हौदे में धुआँ के निकलने के लिए छेद होते हैं। दूध इस प्रकार पक जाने पर उसके ऊपर जो मलाई पड़ती है उसे साढ़ी कहते हैं। कंडों की आग पर दूध पकाने को दूध बैठाइब (बैठाना) कहते हैं।

१८९. साधारणतः दूध से दही जमाने की प्रथा है। दही वाली मेंटी को दधिवँड़ या दधिहँड़ कहते हैं। दूध जमाने के लिए दही का जावन अथवा जोरन डालते हैं। इसके अभाव में आम, इमली, आँवला आदि खट्टी चीजों का प्रयोग करते हैं। दूध वाली मेंटी में जो दूध का जला हुआ भाग होता है उसे जरेठी कहते हैं, इसे सुतुई या सुतुही से खुरच लेते हैं। इस खुरचे या करोए हुए पदार्थ को 'खुरचनी अथवा करोनी कहते हैं। दही में जब तक साढ़ी रहती है तब तक उसे साढ़ीदार या सजाव कहते हैं. साढ़ी के हटा लेने पर उस दही को कटुई दही कहते हैं। साढ़ी वाले भाग को मथकर घी निकालते हैं और दही को बेचते हैं।

१९०. दही मथने के लिए उसे मिट्टी के एक बड़े बरतन में डालते हैं। इस बरतन को कमोरी कहते हैं। यह घड़े के बराबर या उससे भी कुछ बड़ा होता है। जिस लकड़ी से दही महते (मथते) हैं उसे खइलर अथवा मथानी कहते हैं। दही में कुछ पानी डालकर मथते हैं। मथने पर जो घी का अंश ऊपर तैरने लगता है उसे मसका अथवा नैनूँ कहते हैं। इसे काँछ कर अलग कर लेते हैं। शेष पेय पदार्थ माठा या मट्ठा कहलाता है।

१९१. मसका से घी बनाने के लिए उसे एक कराही (कड़ाही) में रखकर आग पर चढ़ाते हैं। जब तक उसका पानी जल नहीं जाता तब तक इसमें चिट-चिट या पड़-पड़ की आवाज होती है, आवाज बन्द होने पर घी पका हुआ समझा जाता है। मट्ठा मिले घी को मठार घी कहते हैं। घी पकाने पर मट्ठा नीचे बैठ जाता है। मट्ठे के जले हुए भाग को करोनी या बंझा कहते हैं। ऐसा विश्वास है कि इसके खाने से स्त्री बंध्या हो जाती है। खाने में यह कुछ खटलुस (खट्टी) होती है। रविवार और मंगलवार को खर वार मानते हैं और इन दिनों घी खर करना दोष मानते हैं।

५

अन्य ग्रामोद्योग

कुआँ बनाना

कच्चा कुआँ :

१६२. कुआँ कच्चा और पक्का दो प्रकार का होता है। कच्चा कुआँ साधारणतः सिंचाई के लिए बनाया जाता है। यहाँ पर पानी आठ-दस या बारह हाथ पर मिल जाता है इसलिए किसान सिंचाई के लिये आवश्यकतानुसार छोटी सी कुइयाँ बना लेते हैं, वर्षा आने पर यह नष्ट हो जाती है। जहाँ बहुत बलुही माटी मिलती है वहाँ खोदते समय उसके गिरने का भय रहता है और वहाँ कुआँ बनाने में भी कठिनाई पड़ती है। कुएँ की दीवार न गिरे इसके लिए कुएँ की गोलाई के नाप की बीड़ या कोठी बनाकर कुएँ के अन्दर बैठा देते हैं। बींड़ और कोठी का रूप एक ऐसे गोले पेटारे की भाँति होता है जिसका दोनों ओर का मुँह खुला हो। बांड़ मेउड़ी (एक वृक्ष) की पतली डालियों से और कोठी बाँस के फलठों से बनती है। कोठी बनाने के लिए बिनावट में खड़े-खड़ लगने वाले बाँसों को जमीन में वृत्ताकार गाड़ देते हैं फिर उन्हीं में फलठों की बिनावट कर देते हैं। कुएँ का जितना वृत्त होता है उसे कुएँ का गरभ कहते हैं। कुएँ के गड्ढे को खाँखर या खँखरा कहते हैं। इसी खँखरा में कोठी या बींड़ बैठाते हैं पर इससे यह हानि होती है कि कुएँ का पानी बदबू करने लगता है।

पक्का कुआँ :

१६३. पक्के कुएँ को इनारा कहते हैं। इनारा बनवाने को इनारा बँधवाइब (बँधवाना) कहते हैं। गाँव में एकाध ही पक्के कुएँ बन पाते हैं इसलिए इनका बहुत महत्व होता है। कुआँ खोदाने का कार्य साइत पूँछकर होता है। किसी-किसी गाँव में कोई जानकार होता है। ऐसा विश्वास है कि जानकार को किसी देवी-देवता का इष्ट होता है और वह अप्रत्यक्ष बातों को भी देख लेता है। जानकार से यह प्रश्न किया जाता है कि किस स्थान पर कुआँ खोदने से पानी मिलेगा। इस पूँछने की क्रिया को पानी पूँछब (पूँछना) कहते हैं। जानकार से पँछकर ही लोग कुआँ खोदवाते हैं।

१९४. कुआँ सार्वजनिक उपयोग की वस्तु है इसलिए इस कार्य में गाँव वाले सह-योग देते हैं। चाहे पूँजी एक ही व्यक्ति की हो और उसी के नाम से कुआँ बोला जाय लेकिन कुआँ खोदने और कुआँ बाँधने के अतिरिक्त, जिन्हें मजदूर करते हैं, कुएँ से मिट्टी निकालना, पानी निकालना आदि कार्य गाँव वाले मिलकर करते हैं। इस अवसर पर गाँव के जितने लोग काम करते हैं उन्हें कुएँ का मालिक जलपान के लिए दाना-रस और भोजन के लिये सतुआ-गुड़ देता है।

कुएँ की खोदाई :

१९५ कुआँ की थोड़ी गहराई तक को मिट्टी फरुहे द्वारा बाहर फेंकी जाती है। इस प्रकार के फेंकने को **उलझा फेंकब** (फेंकना) कहते हैं। कुएँ की गहराई में उतरने के लिए कुआँ खोदते समय उसकी दीवार में एक चक्करदार रास्ता बनाना पड़ता है इस रास्ते को **सीढ़ी** या **गोल** कहते हैं। गोल बनाने को **गोल निकारब** (निकालना) या **गोल काढ़ब** (काढ़ना) कहते हैं। मटियरा जमीन में जो कुआँ बनता है उसकी खोदाई में विशेष परिश्रम पड़ता है और दोमट में कम। कुआँ खोदने में बहुधा पीली मिट्टी मिलती है जिसे **पियरवा माटी** कहते हैं। मिट्टी बलुही होने पर फटकर गिरने लगती है, ऐसी मिट्टी को **फटनहिया माटी** कहते हैं। माटी के गिरने के कारण **खाँख** में कहीं-कहीं **पाल** (पोला) हो जाता है। पाल होने को **पाल मारब** (मारना) कहते हैं।

कुएँ की चँड़वाही :

१९६, कुएँ की खोदाई हो जाने पर चँड़वाही होती है। चँड़वाही के लिए घर्रा चलाना होता है। जैसे सिंचाई में आदमी घर्रा खींचते हैं उसी प्रकार इसमें भी; यहाँ नार में मोट बाँधने के बजाय **झउआ** बाँधते हैं। यह झउआ रस्सी से **सिउर** (बाँध) कर बहुत मजबूत बना दिया जाता है। अब इसे **छींटा** कहते हैं। छींटा की रस्सी और नार का सम्बन्ध एक लकड़ी की गुल्ली द्वारा करते हैं जिसे **बितना** कहते हैं। यह नार में इस प्रकार अँटकाया जाता है कि आसानी से अलग किया जा सके। इस छींटा में कुएँ के अन्दर काम करने वाले मिट्टी भरते हैं और घर्रा खींचने वाले इसे बाहर निकाल लेते हैं। छींटा खींचने की सुविधा के लिए कुएँ की **लिलारी** पर दो आदमी खड़े रहते हैं जो छींटा को बाहर खींच कर उसे नार से अलग कर देते हैं। और नार में फिर दूसरा खाली छींटा लगा देते हैं। भरे हुए छींटे की मिट्टी बाहर फेंक दी जाती है। इस पूरी-क्रिया को **चँड़वाही** कहते हैं।

कुएँ का पानी :

१९७. पानी पहले पतली-पतली सोतियों से रिस-रिस कर आता है जिसे **सोती झिरझिराब** (झिरझिराना) कहते हैं। इस प्रकार भीतर से पसीज-पसीज कर जो पानी एकत्र होता है उसे **पसेव** कहते हैं। जब कुएँ में पानी अच्छी तरह दिखाई देता

है तब उसे कुएँ का **पनिआब** (पनिआना) कहते हैं। जब कुआँ पनिआता नहीं या पानी कम निकलता है तब किसी बाँस में एक नोकदार लोहा लगाकर उसे कुएँ की तह में धँसाते हैं ऐसा करने से यदि पानी नीचे हुआ तो तुरन्त ऊपर आ जाता है। इस क्रिया को **रामबाँस डालब** (डालना) या **रामबाँस कूटब** (कूटना) कहते हैं। इतने पर भी जब पानी नहीं दिखाई देता तब कहते हैं पानी **फञ्ज** (गायब) हो गया। कुएँ की सतह में नीचाई तक, पानी का पता लगाने के लिए, लोह का नोकीला छड़ा धँसाते हैं जिसे **सींक धँसाइब** (धँसाना) कहते हैं। जब कुएं में कोई बड़ा **सोता** फूट निकलता है तब उसकी धार को रोकने के लिए उसमें कराही, रजाई, गद्दा, सुतली आदि भरते हैं; यदि ऐसा न किया जाय तो कुएँ की चड़वाही असम्भव हो जाय। इतना करने पर भी कभी-कभी पानी नहीं रुकता। उस समय कुएँ का सारा कार्य बन्द कर देना पड़ता है। इस दशा को **चंदर खुलब** (चंद्र खुलना) कहते हैं। पानी साधारणतः **बलोथर** (बलुही जगह) में मिलता है। जब पानी के धार के साथ अधिक बालू आता है तब उसे **पास आइब** (आना) या **पास फेंकब** (फेंकब) या **पास ढकेलब** (ढकेलना) कहते हैं। बालू के इस प्रकार निकलने को **धावा** या **रेल मारब** (मारना) कहते हैं।

कुएँ की बँधाई :

१६८. कुएँ की बँधाई के लिए यह आवश्यक है कि यह **निमना** या **नीमन** (दृढ़) मिट्टी पर शुरू की जाय। इसलिए कुआँ खोदने वाले को यह प्रयत्न करना पड़ता है कि कुएँ का अंतिम तह **निमना माटी** की हो। निमना माटी पर कुएँ के बैठने का डर नहीं रहता। इसके मिल जाने पर कुएँ की **बँधाई** अर्थात् (पक्की जोड़ाई) के लिए बुनियाद डाली जाती है। जोड़ाई के पूर्व, आधार के लिए, एक गोली चक्राकार लकड़ी बैठाते हैं जिसे **नीचक** या **नेवार** कहते हैं। यह बैलगाड़ी के पहिये की भाँति होती है। इसी पर ईंटा की जोड़ाई होती है।

नीचक में गाड़ी के पहिये की भाँति लकड़ियों के कई जोड़ होते हैं। इनमें से हर एक को **पुट्ठी** कहते हैं। नीचक के लिए **लसदार** (लासा या गोंद वाली) लकड़ी जैसे पलास, बबूल या गूलर अच्छी होती है। बढ़ई नीचक की बनवाई नहीं पाता बल्कि कुएँ में नीचक पड़ जाने पर बढ़ई को गाँव वाले **नेग** देते हैं जिसमें रुपया, वस्त्र तथा बरतन दिया जाता है जो उसकी मजदूरी से कहीं अधिक हो जाता है।

१६९. जहाँ निमना नहीं मिलता, **बलोथर** माटी होती है वहाँ कुआँ बँधाने का दूसरा ढंग है। नीचक में उसके नीचे की तरफ मेंडरा की भाँति **चद्दर** जड़ देते हैं जिसकी धार नीचे की ओर रहती है। जब चँड़वाही होती है तब इसी धार के सहारे नीचक धँसता चला जाता है और बीच में मजदूर चँड़वाही का काम करते

रहते हैं। नीचक एक साथ बराबर से धँसे इसके लिए ऊपर से दबाव डालने की आवश्यकता पड़ती है इस उद्देश्य से नीचक के ऊपर चार-छः हाथ ईंट की जोड़ाई करने के बाद उसको कुछ दिनों तक पड़ा रहने देते हैं और जब वह दृढ़ हो जाती है तब चँड़वाही का कार्य होता है। नीचक कुएँ में अधिक नीचाई पर बैठाया जा सके इसके लिए यह आवश्यक है कि नीचक धीरे-धीरे नीचे की ओर धँसाया जाय। नीचक के नीचे की जमीन खोदना कठिन काम है अतः नीचक के नीचे की सारी जमीन एक साथ न काट कर उसके नीचे छोटे-छोटे पावे के रूप में कुछ जमीन छोड़ देते हैं। इन पावों को एक साथ गिराया जाता है। इनके गिराने के समय बड़ी होशियारी चाहिए। यदि नीचक पर किसी ओर अधिक दबाव पड़ जाय और किसी ओर कम तो नीचक बराबर से नहीं बैठता और जोड़ाई के फट जाने का डर रहता है; इसलिए बहुत चतुर आदमी इस काम को करते हैं। इस क्रिया को गोला गलाइब (गलाना) कहते हैं। गोला की मजबूती के लिए जोड़ाई के चारों ओर खड़े-खड़ बाँस के फलठे लगाकर उन्हें रस्सी से बाँध देते हैं। इतनी सावधानी करने पर भी यह काम खतरे से खाली नहीं रहता।

२००. कुएँ की जोड़ाई का पुराना ढंग यह है कि नीचक पर जोड़ने के लिए मिट्टी के दो हाथ लंबे और एक या दो बीता चौड़े अर्द्धगोलाकार ईंट पाथ लेते हैं इन्हें गाड़ कहते हैं; इसे पका कर ईंट का काम लेते हैं। इसके अलावा कुएँ के जोड़ने में चवन (कंकड़ के बड़े चट्टे) का भी प्रयोग होता है। चवन से बना इनारा बहुत दृढ़ होता है क्योंकि चवन ईंट से कहीं अधिक टिकाऊ होता है। इसका कुआँ टिकाऊ तो होता ही है साथ ही इसका पानी भी ठंडा रहता है। ईंट की जोड़ाई होने पर ईंट की दीवार और खाँखर के बीच में जो जगह खाली रह जाती है उसमें गीली मिट्टी खूब चहँट-चहँट कर भरी जाती है जिसे बगली भरब (भरना) कहते हैं। कुएँ की गहराई की नाप पोरसा से समझते हैं। एक आदमी जितना ऊँचा होता है उतने को एक पोरसा या पुरसा कहते हैं। कुएँ के एक-एक पुरसे पर ईंटा बाहर निकाल देते हैं इससे गहराई का पता तो चलता ही है कुएँ में हिलने (उतरने) वाले को भी सुविधा मिलती है। इस प्रकार की बँधाई को पोरसा बाँधब (बाँधना) कहते हैं।

२०१. कुआँ का ऊपरी भाग जगत कहलाता है। गड़ारी के लिए इस पर थून की जगह पर दो पक्के पावे बनवा दिए जाते हैं जिन्हें छूही भी कहते हैं। जानवरों के पानी पीने के लिए एक हौज बनाते हैं जिसे अहरी कहते हैं। कुआँ साफ करने को कुआँ ओगारब (ओगारना) कहते हैं। जिस कुएँ में पानी कम होता है उसमें ओगारते समय एक छोटी कुइयाँ और बना देते हैं जिसे पेटकुइयाँ कहते हैं। इससे कुएँ का मुसरा खुल जाता है। कुआँ बैठने को कुआँ भसब (भसना) भी कहते हैं। कुएँ की दीवार में फट कर जगह होने को भगाड़ कहते हैं।

———

मकान बनाना

२०२. देहात में मकान को साधारणतः घर कहते हैं। मकान तीन प्रकार के पाए जाते हैं—(१) छप्पर (२) खपरैल (३) पक्का। छप्पर को छान, छानि या छान्हि कहते हैं। खपरैल कच्चा मकान है। पक्के मकान की दीवारें पक्की ईंटों की बनी होती हैं और पक्के मकान की छाजन साधारणतः पत्थर की पटियों या ईंटों से की जाती है। लेकिन पक्के मकान नाम-मात्र मिलते हैं। बैठका (घर से बाहर बैठने का स्थान) तथा गोरुवार (जानवरों के बाँधने के लिए स्थान) तथा गुलउर (गुड़ पकाने का स्थान) छप्पर का ही होता है।

छप्पर के भेद :

२०३. **मड़ई**—इसमें दीवार नहीं होती है। छाजन को थून्हियों के सहारे खड़ी करते हैं तथा बड़ेर को बाँस के कैंचों पर।

मड़हा—यह मड़ई से बड़ा और उससे टिकाऊ होता है। इसकी बड़ेर तथा ओरौती मिट्टी या ईंट के पावे के सहारे रहती है।

छनिहर घर—छप्पर के घरों में यह सब से उत्कृष्ट है। इसमें दीवार बना कर छाजन रख देते हैं। रहने के लिए साधारणतः जनता ऐसे ही घर बनाती है।

ओसार या ओसारा—मकान के सामने ओरौती के नीचे एक निकला हुआ छप्पर बना देते हैं ताकि पानी दूर गिरे। इसमें छान का एक किनारा ओरौती के पास बँधा रहता है और दूसरा थून के सहारे रहता है। यह बैठने-उठने का काम देता है। इसे ओसार या ओसारा लटकाइब (लटकाना) कहते हैं।

छप्पर बनाने की सामग्री :

२०४. छान (छप्पर) बनाने के लिए पहले सभी आवश्यक सामग्रियों को एकत्र किया जाता है। सामग्री के लिए सँगहा शब्द का प्रयोग होता है। रहठा छाजन में बहुत काम देता है। इसकी पतली कंछियों को बाती कहते हैं। बाँस की पतली-पतली कइन भी बाती कहलाती है। रहठा की बहुत पतली कंछियों को, जो बंधन के काम में आती हैं, छनौटी कहते हैं। इसे छिकुला भी कहते हैं। छानि के लिए ईख की पत्ती काम में आती है। ईख कटते समय ही पत्तियाँ छील कर आँटा के रूप में बाँध कर रख दी जाती हैं। छान छाते समय इनकी आवश्यकता पड़ती है। सरपत भी छप्पर छाने के काम में आता है। बड़े बंधन के लिए बाध (मूँज की कती डोरी) काम में आता है।

ठाट (ढाँचा) तैयार करना :

२०५. एक छान में दो पल्ले या फरके होते हैं। छान बीच में बड़ेर पर रुकी

रहता है। इसके दोनों पल्ले ढालू होते हैं। छाजन बनाने के लिए जो ढाँचा तैयार किया जाता है उसे ठाट कहते हैं। ठाट तैयार करने को ठाट ठटब (ठटना) कहते हैं। ठाट बनाने के लिए सब से पहले छप्पर का बीच वाला भाग, जो बड़ेर पर रहता है, बनाया जाता है। इस बीच वाले भाग को मँगारी कहते हैं और इस स्थान पर जो बाती (रहठे की कंछी) लगती है उसे मंगर कहते हैं। मंगर नाम होने के कारण ही छान के बनाने का काम मङ्गलवार को नहीं होता है। मंगर बनाने में पतला बाँस या पतली कइन चाहिए क्योंकि इसी स्थान पर छप्पर के दोनों पल्ले मुड़ते हैं। मंगर तैयार होने पर दोनों फरकों में उसी के समानान्तर दो-दो बाँस रक्खे जाते हैं; एक-एक बाँस छप्पर के किनारों अर्थात् ओरौती पर रक्खे जाते हैं जिन्हें मंझा या माँझा कहते हैं और, एक-एक बाँस मंगर और मंझा के बीच जिन्हें ताँता कहते हैं। मंगर से छप्पर दो भागों में बँट जाता है इसलिए चौड़ाई में लगने वाले बाँस मंगर से ओरौती तक की लम्बाई के होते हैं। इस प्रकार लगने वाले बाँसों को कोरो कहते हैं। जब ये छोटे पड़ते हैं उस समय इनमें जोड़ के रूप में जो बाँस के टुकड़े लगाए जाते हैं उन्हें परभू या भुक्ता कहते हैं। छान के दोनों फरकों में दोनों बगल बाँस न लगाकर रहठा लगाते हैं इन्हें मोख कहते हैं। इस प्रकार दोनों फरकों में कुल चार मोख रहते हैं। खड़े-खड़ (लम्बे-लम्बे) भी कुछ बातियाँ रक्खी जाती हैं जो मंगर के समानान्तर होती हैं। इनकी संख्या १५ होती है। इनमें एक मँगारी पर, दो दोनों मंझो पर, दो दोनों ताँतों पर तथा दो ओरौती के पास रहती हैं। इनके अतिरिक्त दोनों पल्लों में दो-दो बातियाँ मँगारी-ताँता और ताँता-मंझा के बीच में रक्खी जाती हैं। इन्हें बाँधने के लिए छनौटी या बाध प्रयोग करते हैं। जब ऊपर नीचे दोनों ओर गाँठें दी जाती हैं तब उसे मोगली बंधन कहते हैं। इस प्रकार छान का ठाट ठट (बन) जाता है। यही छान का ढाँचा है, ठाट छाने के पहले सरपत अथवा संठा (सनई) का डंठल बिछा देने से छप्पर का नीचे का भाग साफ-सुथरा रहता है।

ठाट पर पत्ती बिछाना :

२०६. ठाट तैयार हो जाने पर उस पर ईख की पाती (पत्ती) बिछाई जाती है। पाती बिछाने के लिए कम से कम दो आदमी हों। एक आदमी एक ओर (किनारे) से पत्तियों को फैलाता है दूसरा दूसरी ओर से। यह क्रिया लम्बाई की ओर से होती है। पत्ती बिछाते समय पत्ती का पतला भाग ऊपर अर्थात् मंगर की ओर होता है और चौड़ा भाग ओरौती की ओर। पत्ती बिछाने का कार्य ओरौती की ओर से प्रारम्भ होता है अर्थात् ओरौती का किनारा समाप्त होने पर उसके ऊपर वाली बाती पर पत्ती फैलाई जाती है और उसके समाप्त होने पर उसके ऊपर वाली बाती पर पत्ती फैलाई जाती है। यही क्रम मंगर के समीप

पहुँचने तक रहता है। जब ओरौती की बाती पर पत्ती फैला लेते हैं तब उसके ऊपर से एक बाती लंबे-लंबे रख कर ऊपर और नीचे की दोनों बातियों को रस्सी से बाँध देते हैं। इस प्रकार ऊपर की बाती से पत्ता दब जाती है। जब दूसरी बाती पर इसी प्रकार पत्ती फैलाते हैं तब पत्ती फैलाते समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि इसके पूर्व बाँधी हुई बाती पत्ती से ढँक जाय। इस प्रकार मंगर तक पत्ती बिछाते और बाँधते छवैये चले जाते हैं।

२०७. छाजन तैयार होने पर सीढ़ी सदृश दिखाई पड़ती है क्योंकि प्रत्येक बार बिछाई हुई पत्तियों की श्रेणी अलग-अलग रहती है। ऊपर और नीचे की बातियों को आपस में बाँधने के लिए छवैये को पत्तियों के बीच से अँगुली डालनी पड़ती है। इस कार्य में छवैयों की अँगुली छिल जाती है। अतः बन्धन बाँधते समय इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि छाजन में कहीं सूराख न रह जाय। पत्ती के ऊपर से जो बाती लगाई जाती है उसके दोनों किनारे मोख में धँसा दिए जाते हैं जिसे **मोखब (मोखना)** कहते हैं। ऐसा करने से बाती भली भाँति कसी रहती है और पत्तियाँ दबी रहती हैं। छप्पर की लंबाई के बराबर बाती या बाँस की कइन मिलने की सम्भावना कम होती है इसलिए दो बातियाँ जोड़कर लगाई जाती हैं। इनका पलई वाला भाग छान के बीच में पड़ता है और मोटा भाग किनारे मोख में दबा रहता है। इस प्रकार दो बातियों को जोड़कर लगाने से किनारे वाले भाग और भी दृढ़ हो जाते हैं। जब मंगर के पास दोनों फरकों की छाजन पहुँचती है तब उस स्थान पर छाजन का एक विशेष ढंग हो जाता है। उस स्थान पर इस प्रकार की छाजन होनी चाहिए कि दोनों फरकों के बीच में कोई अन्तर न रहे। ऐसा करने के लिए मंगर पर पत्ती फैलाई जाती है और ऊपर से बाती रखकर दबा दी जाती है। यह बाती मंगर में बाध से बाँधी जाती है। इस प्रकार मंगर के दोनों ओर ढाल हो जाता है। इस प्रकार की बँधाई को **सरौता मारब (मारना)** कहते हैं। इस स्थान पर जो बन्धन बाँधा जाता है वह कुछ ढीला रक्खा जाता है ताकि छप्पर खड़ा करने पर दोनों फरके दबाव से अलग न हो जायँ।

छान खड़ी करना:

२०८. छान खड़ी करने के पूर्व बड़ेर को ईंट या मिट्टी के पावे पर रख देते हैं। छान को ऊपर उठाने के लिए बाँस के टुकड़ों की मदद ली जाती है। इन टुकड़ों को **सोकारी** कहते हैं। छान को पहले ओरौती की ओर से उठाना आरंभ करते हैं फिर इसे धीरे-धीरे बड़ेर पर चढ़ाने की कोशिश करते हैं। बड़ेर पर मँगारी रक्खी जाती है। इस प्रकार छाजन के दोनों फरके दोनों ओर लटक जाते हैं। फिर मंझा को थूनियों के सहारे रोकते हैं। यदि पावे बने हुए हों तो उन्हीं पर ओरौतीवाला भाग रख दिया जाता है अन्यथा दो बाँसों का

कैंचा या हटका बना कर उसी के सहारे उस भाग को टिका देते हैं। छान की दृढ़ता की दृष्टि से बड़ेर रखने के लिए दोनों ओर पाख बनवा देना अच्छा होता है। बड़ेर के बीचोबीच सहारे के लिए कभी-कभी थाम्ह लगा देते हैं, अथवा बाँस की एक कैंची बना कर लगा देते हैं और उसके दोनों छूरों को पाख की दीवारों में धँसा देते हैं। दीवार में बाँसों के छूर को धँसाने के लिए कुछ गड्ढा कर देना पड़ता है। इस प्रकार लगाई हुई कैंची को कवही कहते हैं। जब बड़ी छान बनानी होती है तो एक छान के स्थान पर दो छान बनाते हैं और फिर दोनों छानों को इस प्रकार एक दूसरे से मिला कर रखते हैं कि जोड़ का स्थान खुला न रहने पावे। एक के ऊपर दूसरे को चढ़ाकर रखना पड़ता है जिसे तर-ऊपर रक्खब (रखना) कहते हैं। एक छान साधारणतः १५ से १८ हाथ लंबी बनाई जाती है। छान की चौड़ाई अधिक नहीं रक्खी जाती; साधारणतः छान से घिरी हुई जमीन की चौड़ाई पाँच से लेकर सात हाथ तक होती है।

परछथी बनाना :

२०९. एक बार की छाई हुई छान दो वर्ष तक चल जाती है। बरसात में इसकी मरम्मत की जाती है। मरम्मत के लिए पहले एक छोटी सी छान अलग बनाई जाती है जिसे परछथी कहते हैं। परछथी इस प्रकार बनाई जाती है—पहले पुआल या हरे सरपत को ऐंठकर रस्सी बनाते हैं। इस प्रकार ऐंठी हुई रस्सी को जोइना कहते हैं। यह रस्सी छप्पर में प्रयुक्त बाती का काम देती है। पहले छान के एक फरके के लिए परछथी बनाते हैं। अतः एक फरके की लँबाई-चौड़ाई के अनुसार परछथी के ताने के लिए जमीन पर चार खूँटियाँ गाड़ते हैं। जोइना को इन्हीं खूँटियों के चारों ओर लपेट कर घेरा बनाते हैं। इसके बाद बीच के खाली भाग में जोइना को ताने की तरह तान देते हैं। इस तरह जो ताना बनता है उस पर ईख की पत्ती फैलाते हैं। पत्ती के ऊपर फिर उसी प्रकार जोइना फैला कर नीचे तथा ऊपर वाले दोनों जोइनों को बाँध देते हैं ताकि पत्ती बीच में दब जाय। एक फरके के लिए परछथी तैयार हो जाने पर उसी प्रकार दूसरे फरके के लिए भी परछथी तैयार करते हैं। परछथियाँ तैयार होने पर उन्हें छान पर डालने का कार्य होता है। इसके लिए परछथी को चौड़ाई की ओर से एक बाँस में लपेटते हैं। फिर उसे छान के एक किनारे के मोख से दूसरे किनारे के मोख तक फैला देते हैं। दोनों परछथियों को फैलाने के बाद बड़ेर पर कुछ पत्ती डालकर उन्हें बाँध देते हैं।

मकान का पिंड :

२१०. मकान बनाने के लिए सर्वप्रथम किसी ब्राह्मण से मुहूरत (मुहूर्त) पूछा जाता है। इसे मुहूरत सोधवाइब (सोधवाना) कहते हैं। तदुपरांत ज्योतिषी से मकान की लंबाई और चौड़ाई पूछी जाती है जिसे

पिंड उतारब (उतारना) कहते हैं। जिसके नाम से पिंड उतारा जाता है वही नींव डालता है। ज्योतिषी पिण्ड उतार कर यह बताता है कि मकान कितना लंबा चौड़ा होने पर शुभ होगा।

मकान की नींव :

२११. नींव अधिकतर ईशान कोण (पूर्व तथा उत्तर का कोण) में डाली जाती है। पहले मकान का मालिक पाँच फरुहा माटी खनेगा उसके बाद मुठहथ (मूठी बन्द हाथ) भर (बराबर) एक लंबा-चौड़ा खाता खोदा जाता है। इस खाते में पानी डाल कर कुछ लोग कछुआ डाल देते हैं; कुछ लोग सोने-चाँदी का साँप और कछुवा बनवा कर डालते हैं। ऐसा इस विश्वास से करते हैं कि शेषनाग पृथ्वी को रोके हुए हैं। फिर गड्ढे को पाट कर एक छोटा सा चबूतरा बना देते हैं। इस पर प्रति दिन दीप जलाया जाता है। उसके बाद मकान के लिए नींव बनाई जाती है जिसे नींव खोदब (खोदना) या नींव झारब (झारना) कहते हैं।

नींव में गीली मिट्टी डाल कर पैरों से कौंड़ते हैं। इस क्रिया को माटी कौंड़ब (कौंड़ना) या चहँटब या खपसब (खपसना) अथवा खबसब (खबसना) कहते हैं। नींव में मिट्टी डालने के पहले पानी भर देते हैं ताकि जमीन को जो कुछ पानी सोखना हो सोख ले। ऐसा करने से दीवार के बैठने का डर कम हो जाता है। जब पानी सूख जाता है तब मिट्टी डालकर खबसते हैं।

दीवार :

२१२. नींव तैयार हो जाने पर देवाल (दीवाल) बनाने के लिए मिट्टी तैयार की जाती है। जिस स्थान से मिट्टी खोद कर आती है उसे गड्र या गड्रा कहते हैं। मिट्टी को पानी डालकर खबसते हैं। इस प्रकार मिट्टी तैयार करने को माटा तोरब (तोड़ना) कहते हैं। जितनी मिट्टी एक बार में ढोकर आती है उसे खेप कहते हैं। वह मिट्टी दीवार बनाने की जगह पर रक्खी जाती है। एक हाथ या डेढ़ हाथ की दीवार उठ जाने पर इसे सूखने के लिए छोड़ देते हैं। जब इतनी दीवार तैयार हो जाती है तब इस पर फिर मिट्टी रक्खी जाती है। इस प्रकार एक बार में दीवार उठाने के लिए जितनी मिट्टी रक्खी जाती है उसे रद्दा कहते हैं। इस प्रकार एक रद्दे के ऊपर दूसरा रद्दा घुमाया जाता है जिसे रद्दा घुमाइब (घुमाना) कहते हैं। दीवार पर जब एक रद्दा दूसरे पर बिना सूखे हुए रक्खा जाता है तब दीवार भिहला कर गिर जाती है। जब एक रद्दे के बिलकुल सूख जाने पर दूसरा रद्दा रखा जाता है तब एक रद्दा दूसरे पर चिपकता नहीं और दीवार में मोटी-मोटी दरारें पड़ जाती हैं और दीवार भी कमजोर हो जाती है। दीवार ज्यों-ज्यों बनती जाती है मजदूर उसे काट-छाँटकर सुडौल बनाता जाता है। इसे देवाल ठीकब या भीत ठीकब (ठीकना) कहते हैं। इससे दीवार साफ-सुथरी बनती है। इस क्रिया के करने वाले को ठिकवइया (ठीकने वाला) कहते हैं। दीवार

की सिधाई एक रस्सी तान कर देखते हैं। इस कार्य को सुतबस करब (करना) कहते हैं। ज्यों-ज्यों भीत (दीवार) ऊपर जाती है त्यों-त्यों चौड़ाई कम करते जाते हैं। इससे भीत का बोझा कम होता जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो भीत के गिरने का भय रहता है। इस क्रिया को भीत तोरब (तोरना या तोड़ना) कहते हैं। भीत तोड़ते समय भीत के बाहरी भाग की मिट्टी को छाँटते हैं। ऐसा करने से भीत का बोझ बाहर की अपेक्षा भीतर की ओर अधिक रहता है। मकान में जब कड़ी पाट कर कोठा बनाया जाता है तब भीत तोड़ने वाली क्रिया का लाभ स्पष्ट समझ में आता है क्योंकि ऐसे मकानों के, हुलसने का भय नहीं रहता है। दीवार तैयार हो जाने पर उसको चिकनी करने के लिए ऊपर से दूसरी मिट्टी लगाई जाती है। इस मिट्टी में पुरेसी (पइया धान) तथा गोबर मिलाते हैं। इसके मिलाने से मिट्टी चिरचिराती नहीं। दीवार पर पानी छिड़क कर तब मिट्टी छोपते हैं और मिट्टी को बाद में हाथ से लीप कर चिकना करते हैं। इतना करने पर दीवार सुन्दर बन जाती है। यह लीपने की क्रिया लगभग प्रत्येक वर्ष वर्षा के उपरांत भी की जाती है; इसे माटी लगाइब (लगाना) या लीपब (लीपना) कहते हैं।

२१३ दीवार बनाते समय उसमें आवश्यकतानुसार सामान रखने के लिए ताख गउँखा या गवँखा बना देते हैं। रोशनी या हवा के लिए दीवार में छोटे-छोटे रोशनदान बनाते हैं जिन्हें बयाला, मुक्का अथवा झरोखा कहते हैं। अंडों के आकार का भी एक ताख बनता है जिसे भड़सड़ा या भड़सरा कहते हैं। दीवार में बाँस या लकड़ी गाड़कर उस पर मिट्टी छोप कर पटनी या पटनई बनाते हैं।

दीवार बनाते समय ही उसमें दरवाजा लगाने का प्रबन्ध कर लेते हैं। दरवाजे की जगह छोड़कर इसके ऊपर आवश्यकतानुसार लकड़ी या पत्थर का एक टुकड़ा रखते हैं और तब दीवार उठाते हैं। इस रक्खी हुई लकड़ी या पत्थर को पटौधन या दुरवन कहते हैं। दरवाजे में नीचे की लकड़ी को चौखट कहते हैं। चौखट के विरोध में दरवाजे के ऊपर जो लकड़ी होती है उसे उतरंग कहते हैं। दरवाजे के दोनों बगल की लकड़ियों को बाजू कहते हैं। दरवाजे में दो पल्ले होते हैं। ये पल्ले बाजू के पीछे अंदर की ओर लगाए जाते हैं। इन पल्लों के उन भागों में जो बाजू की ओर रहते हैं नीचे और ऊपर चूर बना रहता है। यह गोला होता है। इसी चूर के सहारे पल्ला बन्द किया और खोला जाता है। ऊपर के चूर के लिए पटौधन में सूराख रहता है और नीचे के चूर के लिए एक लकड़ी, जिसमें चूर के लिए एक गड्ढा बना रहता है, दीवार के अंदर पेश कर दी जाती है। इस लकड़ी का एक भाग दीवार में होता है और दूसरा भाग, जिस पर चूर चक्कर करता है, बाहर रहता है। इस लकड़ी को ठेहरी कहते हैं।

बड़ेर और धरन बैठाना :

२१४. जिस प्रकार छप्पर में बड़ेर होती है उसी प्रकार खपरैल की छाजन में भी। बड़ेर दोनों पाखों के आधार पर रहती है लेकिन बीच में यह लचे नहीं या टूट न जाय इस दृष्टि से उसके लिए कुछ सहारे की आवश्यकता पड़ती है। जिस प्रकार छप्पर में बड़ेर की मजबूती के लिए बीच में पावा जोड़ देते हैं या थाम्ह खड़ा कर देते हैं उस प्रकार मकान में नहीं करते। पाख बनाते समय ही एक लंबी लकड़ी जिसे धरन कहते हैं, बड़ेर के समानान्तर पर बड़ेर से कुछ नीचे, दोनों पाखों में बैठा दी जाती है। यह लकड़ी टेढ़ी होती है और इसका बीच का भाग इतना उठा हुआ होता है कि वह दोनों पाखों की ऊँचाई की सीध में आ जाय। इस प्रकार बड़ेर के दोनों किनारे पाख पर होते हैं और बीच वाला भाग धरन के सहारे रहता है। जब ऐसी लकड़ी नहीं मिलती तब बड़ेर और धरन के बीच के फासले की पूर्ति के लिए एक लकड़ी लगा दी जाती है जिसका एक सिरा धरन में गड़ा रहता है जिसके और दूसरे सिरे पर बड़ेर होती है। इस लकड़ी को टेड़ुवा कहते हैं। इसके ऊपरी भाग में एक लकड़ी की छोटी पिढ़ई लगा दी जाती है जिस पर बड़ेर आसानी से ठहर सकती है। इस पिढ़ई को कोइलर कहते हैं। कभी-कभी एक ही धरन पर कई टेड़ुवे लगाने पड़ते हैं।

बलहम तथा तिरबंदी करना :

२१५. जिस प्रकार छप्पर में दो फरके या पल्ले होते हैं उसी प्रकार खपरैल की छाजन में भी दो पल्ले होते हैं। बड़ेर ही दोनों पल्लों को अलग करती है। एक पल्ले में जिस प्रकार छाजन के लिए लकड़ियाँ लगाई जाती हैं उसी प्रकार दूसरे में भी। बड़ेर से ओरौती तक मकान की चौड़ाई में जो लकड़ियाँ लगती हैं उन्हें पटुका कहते हैं। पटुका से ही ढाल देखी जाती है। जितनी ढाल या लरकाव पर छाजन होनी चाहिए उतनी ही ढाल पर पटुका रक्खे जाते हैं। ढाल सूत लगा कर देखते हैं जिसे सुतबस करब, (करना) कहते हैं। पटुका का एक सिरा बड़ेर पर जड़ा रहता है और दूसरा दीवार पर रक्खा रहता है। यदि पटुका काफी हो तो छाजन मजबूत होती है और पानी के बहाव में रुकावट नहीं होती है। जिस प्रकार छप्पर में ताँता लगते हैं उसी प्रकार मकान में भी पटुका के ऊपर बड़ेर के समानान्तर थोड़ी-थोड़ी दूर पर ताँता रक्खा जाता है। ताँता रखने के लिए पटुका में एक छोटी सी खूँटी गाड़ दी जाती है ताकि ताँता एक निश्चित स्थान पर रुका रहे और वह आगे न खिसकने पावे। इस प्रकार धरन, बड़ेर पटुका तथा ताँता बैठाने को बलहम करब (करना) कहते हैं।

पटुका पर जो लंबे-लंबे ताँता लगाए जाते हैं उनके ऊपर से पटुका के समानान्तर बाँस या लकड़ी की करियाँ या कड़ियाँ बिछाई जाती हैं। इस

क्रिया को कड़ी बैठाइब (बैठाना) कहते हैं। बाँस या लकड़ी जब चीरकर बिछाई जाती है तब उसे कोरई कहते हैं। जितनी अधिक कड़ियाँ बैठेंगी उतनी ही अधिक छाजन हद होगी क्योंकि छाजन का बंधन इन्हीं से संबंधित होता है। कड़ियों के बैठाने को तिरबन्दी या तिरबन्नी करब (करना) कहते हैं।

२१६. छाजन के लिए ताँता की लंबाई के बराबर सरपत का मूठा या मुट्ठा बनाया जाता है जिसे मुट्ठा बाँधब (बाँधना) कहते हैं। ये मूठी से दबा-दबा कर बाँधे जाते हैं। इस प्रकार मुट्ठों के तैयार हो जाने पर उन्हें कड़ियों पर ताँता के समानान्तर ओरौती से बड़ेर तक बिछाते हैं। मुट्ठों को बिछाने के साथ-साथ उन्हें कड़ियों में रस्सी से बाँधते जाते हैं इस प्रकार वे अपनी जगह स्थिर हो जाते हैं। इस बाँधने की क्रिया को सिउरब (सिउरना) कहते हैं। मुट्ठों की जगह फलठे अर्थात् बाँस के चीरे हुए टुकड़े भी बिछाते हैं। इन फलठों को सिउरते नहीं, इनके ऊपर कड़ियों के समानान्तर दूसरे फलठे बिछा दिए जाते हैं जिन्हें बाता कहते हैं, बाता के ऊपर से कीलें ठोंक दी जाती हैं जो फलठों से होती हुई कड़ी में धँस जाती हैं। फलठों के स्थान पर रउता का भी प्रयोग होता है। रउता का पौधा ईख से मिलता-जुलता है और पतले रोड़ी-बाँस के बराबर मोटा होता है। यह भी छाजन के काम में आता है।

ओरौती का पानी भीत से कुछ दूर गिरे इसके लिये आवश्यक है कि कड़ियाँ दीवार से आगे की ओर निकली हुई हों। लेकिन लंबे बाँसों या लंबी लकड़ियों की कमी के कारण कड़ियाँ दीवार तक ही रक्खी जाती हैं और दीवार के बाहरी हिस्से पर ओरौती के नीचे छज्जा बना दिया जाता है। इसी छज्जे पर से ओरौती का पानी गिरता है। छज्जे के सहारे के लिए जो लकड़ी लगाई जाती है उसे टोड़ा कहते हैं। टोड़ा की मदद के लिए कुछ छोटी-छोटी लकड़ियाँ लगाई जाती हैं जिन्हें कुत्ता या कुक्कुर कहते हैं। इतनी तैयारी के बाद छवाई आरंभ होती है।

ख प ड़ा छा ना :

२१७. घर छाने के लिए थपुआ और नरिया चाहिए। थपुआ के लिए खपड़ा शब्द भी पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त होता है। थपुआ पर से पानी बहता है और नरिया दो थपुओं के उठे हुए भागों को ढकने के लिए होती है। थपुआ लगभग डेढ़ बीता लम्बा तथा छः अँगुल चौड़ा होता है। इसके दाएँ-बाएँ किनारे उठे होते हैं जिन्हें अवँठ कहते हैं। इसका अगला भाग, जिसे जीभ कहते हैं, पीछे वाले भाग से चौड़ाई में इतना सँकरा होता है कि यह चौड़े भाग में सरलता से बैठ जाय। छवाई ओरौती की ओर से आरम्भ होकर बड़ेर की ओर जाती है; खपड़े की जीभ वाला भाग औरती की ओर और चौड़ा भाग बड़ेर की ओर रहता है। पिछले चौड़े भाग पर बाद वाले खपड़े की जीभ चढ़ा कर रक्खी जाती है। इस

प्रकार एक के ऊपर एक खपड़ा रक्खा जाता है जिसे खपड़ा पियाइब (पियाना) अथवा पिया-पिया कर खपड़ा रखना कहते हैं। खपड़ा पियाने में जितनी ही सावधानी रक्खी जायगी छाजन उतनी ही अच्छी होगी और पानी का बहाव उतना ही ठीक रहेगा। दो खपड़ों की अवँठ जहाँ मिलती है उसके ऊपर नरिया रक्खी जाती है। नरिया एक बीता लम्बी और अर्द्ध गोलाई में बनाई जाती है। किसी पोली, लंबी और गोली चीज को आधे-आध लंबाई में काट देने पर जो रूप होता है लगभग वही नरिया का रूप है। नरिया भी ओरौती की ओर से रक्खी जाती है। जिस प्रकार थपुआ एक दूसरे के ऊपर पिया-पिया कर रक्खा जाता है उसी प्रकार नरिया भी एक दूसरे पर पिया-पिया कर रक्खी जाती है। इस प्रकार रखने के लिए यह आवश्यक है कि इसका एक भाग सँकरा और दूसरा उससे चौड़ा हो। ऐसा होने पर ही एक के ऊपर दूसरी नरिया बैठेगी। चौड़ावाला भाग ओरौती की ओर रहता है और सँकरा भाग बड़ेर की ओर रहता है ताकि अगली नरिया के सँकरे भाग पर पिछली नरिया का चौड़ा भाग बैठ सके। इस प्रकार खपड़े और नरिया की पाँत बैठाई जाती है। थपुआ और नरिया बिछाने के पहले सनी हुई मिट्टी और सरपत की आवश्यकता होती है। थपुआ बिछाने के पूर्व मुट्ठों पर सरपत फैलाकर गीली मिट्टी रखते हैं ताकि थपुआ जम कर बैठ सके। खपड़े के नीचे दिए हुए सामान को तराइल कहते हैं। नरिया बैठाने के पूर्व उसके नीचे भी गीली मिट्टी दी जाती है।

२१८. जब नरिया की तीन पाँत ओरौती से लेकर बड़ेर तक बैठ जाती है तब कुछ लोग चौथी पाँत नरिया की नहीं बैठाते हैं। इसकी जगह पर थपुआ को उलट करके अर्थात् उसकी अवँठ नीचे की ओर करके रखते हैं। इस प्रकार के रखने को औंधा मारब (मारना) कहते हैं क्योंकि इसमें खपड़ा ओन्हाया हुआ रहता है और ऐसे खपड़ों को ओन्हउआ या औंधा कहते हैं। इस खपड़े का चौड़ा भाग ओरौती की ओर रक्खा जाता है और सँकरा भाग पीछे की ओर ताकि पीछे वाले खपड़े का चौड़ा भाग अगले खपड़े को औंधाने पर ढक सके। जहाँ पर औंधा मारना होता है वहाँ पर नीचे वाले थपुओं की अवँठ सटा कर नहीं रक्खी जाती क्योंकि खपड़े की चौड़ाई नरिया से अधिक होती है। इस प्रकार औंधा मारे हुए थपुओं के नीचे बड़ेर से ओरौती तक जगह छूटी रहती है। छाजन की मरम्मत के समय इसी खाली स्थान पर मरम्मत करने वाला अपने पैर रख कर चलता है। इस प्रकार औंधा मारने की यह क्रिया छाजन की मरम्मत में सहायक होती है। छाजन की मरम्मत को फेरौटी कहते हैं क्योंकि इस क्रिया में टूटे-फूटे खपड़े फेर-फार (अदल-बदल) दिए जाते हैं।

२१९. दोनों फरकों की छवाई समाप्त होने पर बड़ेरा (बड़ेर के ऊपर का भाग) बाँधा जाता है। कुछ लोग साथ ही साथ बड़ेरा की भी छवाई करते जाते

हैं। **बड़ेरा** की छवाई के लिए उस पर और उसके अगल-बगल गोली मिट्टी रखते हैं। फिर इस मिट्टी पर पूर्ववत् खपड़ा और नरिया रख कर छाजन करते हैं। इस क्रिया को **बड़ेरा बाँधब** (बाँधना) कहते हैं।

२२०. दोनों फरकों के मिलने पर दोनों बगल कोना बन जाता है। इन कोनों को **कुंसिला या कोन्सिला** कहते हैं। यहाँ पर भी मिट्टी रखकर, बड़ेरा की भाँति, छाजन की जाती है। इसे **कोन्सिला बाँधब** (बाँधना) कहते हैं। कोनों पर मिट्टी का **कोहा** या **कलसा** रखते हैं। कोहे का आकार एक बड़े कटोरे की सदृश होता है। यह औंधा कर रक्खा जाता है। इस पर पानी पड़ते ही बह जाता है। कोहे से छाजन की सुन्दरता भी बढ़ जाती है।

२२१ घर के भीतर जब **आँगन** या **बखरी** होती है तब भीतर के फरकों की छवाई में भी कोने होते हैं: इन्हें **कोनिया** कहते हैं। इन कोनियों की छवाई भी सावधानी से करनी चाहिए। चारों ओर से घिरे आँगन में चार कोनियाँ होती हैं। इनकी छवाई भी कोन्सिला की भाँति की जाती है।

२२२ आँगन के चारों ओर जो बरामदा होता है उसे **ओसार** कहते हैं। इसके बनाने के लिए घर की दीवार से कड़ियाँ लटकाते हैं। इन कड़ियों को **खम्हों** (खंभों) पर टेकाते हैं। खम्हे को **खम्हिया** भी कहते हैं। खम्हों के ऊपर लकड़ी का एक मोटा और चौड़ा पटरा रक्खा जाता है जिसे **दासा** कहते हैं। इस दासे पर मिट्टी रख कर तब कड़ियाँ रक्खी जाती हैं। जिस प्रकार साधारण छाजन में ताँता आदि लगते हैं उसी प्रकार इस छाजन में भी। पटुका के स्थान पर जो लकड़ियाँ दीवार से दासा तक रक्खी जाती हैं उन्हें **कमरबल्ला** कहते हैं। घर के बाहर बैठने-उठने के लिए जो खम्हियादार **ओसार** बनाया जाता है उसे **ओसारा, बैठका, बरामदा, दलान या सहन** कहते हैं।

२२३. बड़ेर की छाजन को **बड़ेरी** या **मुँड़ेरी** कहते हैं। छाजन अच्छा होने की पहचान यह है कि उसमें खूब ढाल हो और सामने से खड़े होकर देखने से सारी छाजन एक मालूम हो। ढाल के लिए **लरकाव** तथा **सिधार** शब्द प्रयोग में आते हैं पर **सिधार** शब्द का प्रयोग अधिकतर छान की ढाल के लिए होता है। जब ढाल कम होती है तब ऐसी ढाल को **सेव** या **मचहिल** कहते हैं। ढाल अधिक होने पर उसे **अबाह** या **खर** कहते हैं। फरके के ढालू होने से कहीं पर पानी रुकने की सम्भावना नहीं होती अतः चूने का भी भय नहीं रहता। जिस स्थान से पानी चूता है उसे **चुअना** कहते हैं। चुअना का पता लगाने के लिए वर्षा के समय छाजन में जिस जगह से पानी चूता है उस स्थान को पतली लकड़ी से खोदते हैं; इस प्रकार खोदने से खपड़े हिल-डुल कर टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं और फिर छवैया उस जगह के खपड़ों को

उधेर (हटा) कर वहाँ का चुअना ठीक करता है। ओरौती के नीचे की भीत को पनहाँ बोलते हैं क्योंकि पानी वहाँ से होकर बहता है।

मकान के अन्य भाग :

२२४. कच्चे मकान में पाटन देकर बनाए हुए ऊपरी भाग को कोठा या अँटारी कहते हैं। कोठा बनाने के लिए दो दीवारों पर करियाँ या कड़ियाँ बैठाते हैं। फिर इन कड़ियों पर फलठे आदि बिछाकर उसे मिट्टी से पाटते हैं। लगी हुई कड़ियों के किनारे दोनों ओर की दीवारों में दबे रहते हैं।

२२५. आँगन से पानी के बहने के लिए जो नाबदान बनाया जाता है उसे पड़ोह कहते हैं। पड़ोह बहने का रुख उत्तर या पश्चिम की ओर होना चाहिए; पूर्व और दक्षिण बनाना अशुभ माना जाता है।

पानी रखने के लिए आँगन में एक ऊँचा स्थान बनाया जाता है जिसे घिरउँच कहते हैं।

मिट्टी का काम

२२६ मिट्टी का काम करने वाले को कुँहार, कोंहार अथवा कुम्हार कहते हैं। इसकी स्त्री को कुम्हारिन, कोंहारिन या कोंहाइन कहते हैं। दोनों परानी (प्राणी) मिल कर अपने पेशे को करते हैं; यह बात अवश्य है कि पुरुष के जिम्मे मोटे काम तथा स्त्री के जिम्मे हल्के काम होते हैं। कुम्हार मिट्टी के बर्तन तथा खिलौने बनाता है लेकिन बिलकुल देहाती कुम्हार केवल साधारण बर्तन ही बना पाता है।

इस उद्योग की निम्न अवस्थाएँ होती हैं :—

(१) मिट्टी तैयार करना, (२) बर्तन बनाना, (३) बर्तन सुखाना, (४) बर्तन रंगना, (५) बर्तन नकासना और (६) बर्तन पकाना।

मिट्टी तैयार करना :

२२७. जो समान बनाना होता है उसकी दृष्टि से मिट्टी का चुनाव किया जाता है। थपुआ के लिए साधारण मिट्टी चाहिए लेकिन बरतन गढ़ने के लिए अच्छी लसदार मिट्टी चाहिए। ऐसी मिट्टी को गढ़नी माटी कहते हैं। मटियार मिट्टी बर्तन के लिए सब से अच्छी होती है। मटियार में करइल अधिक अच्छी होती है। इसके अलावा चिकनी मिट्टी भी काम में आती है लेकिन इसमें कंकड़ी अधिक होती है। मिट्टी के बर्तनों को रँगने के लिए काबिस मिट्टी का प्रयोग होता है। यह मिट्टी कम पाई जाती है। साधारणतः किसी गड्ढे की सतह में यह मिट्टी होती है। जिस गड्ढे में यह होती है उस में जब वर्षा का पानी कम हो जाता है तब

पानी के ऊपर लाल रंग की एक परत जम जाती है। इस से कुम्हार यह समझ जाता है कि यहाँ पर काबिल मिट्टी है। पानी सूख जाने पर वह मिट्टी खन (खोद) लेता है।

२२८. मिट्टी खोदने का कार्य वर्षा के अतिरिक्त हर मौसम में होता है। इसलिए वर्षा के लिए भी कुम्हार पहले ही से मिट्टी खोद लेता है। मिट्टी खोदने का कार्य फरसा और कुदार से होता है लेकिन कुदार से आसानी पड़ती है क्योंकि कुदार कड़ी से कड़ी मिट्टी में धँस जाती है। जिस स्थान पर मिट्टी खोदी जाती है वहाँ पर सुरंग-सदृश जगह बन जाती है, क्योंकि कुम्हार ऊपर की मिट्टी छोड़ देता है और नीचे की मिट्टी खोद कर निकाल लेता है. इस स्थान को **मटखना** या **ओंड़** कहते हैं।

२२९. कुम्हार मिट्टी रखने के लिए घर में एक विशेष स्थान बनाता है। इस स्थान को **मटियार** कहते हैं। मिट्टी बनाने के लिए पहले वह उसे **मुँगरी** (लकड़ी का पिटना) से कूट कर बारीक कर डालता है। फिर मिट्टी से कंकड़ बीन कर निकाल देता है। मिट्टी सड़ जाने से मुलायम पड़ जाती है, जिससे बर्तन चिटकता नहीं।

मिट्टी को अच्छी तरह सानने के बाद उसका एक ऊँचा **ढूहा** बना देते हैं। फिर **लहसुर** से उसे काट-काट कर साफ करते हैं। लहसुर पहँसुल की भाँति थोड़ी गोलाई लिए हुए लोहे का एक औजार होता है। इस के दोनों किनारों पर लकड़ी के बेंट होते हैं जिन्हें दोनों हाथों से पकड़ कर कुम्हार मिट्टी के परत-परत काट कर अलग करता है। ऐसा करने से मिट्टी में जहाँ कंकड़ी होती है, निकल आती है। इसके बाद मिट्टी को लकड़ी के पल्ले पर रख कर और उसमें थोड़ी राख मिला कर कुम्हार सानता है। मिट्टी जितनी अच्छी होगी, बर्तन बनाने में उतनी ही सुविधा होगी। मिट्टी के तैयार होने की पहचान यह है कि अँगुली से दबाने पर उसमें गड्ढा हो जाय। तैयार मिट्टी को **सीझी माटी** कहते हैं। इसके बाद कुम्हार मिट्टी को किसी कपड़े या टाट के टुकड़े से ढक देता है। यह टुकड़ा भीगा रहता है। इस से मिट्टी की तरी बनी रहती है।

बर्तन बनाना :

२३०. बर्तन बनाने के लिए सब से अनुकूल समय जाड़े का है। इस समय मिट्टी अच्छी बनती है इसलिए बर्तन भी अच्छे बनते हैं; बर्तन पकाने में भी सुविधा होती है। वर्षा तो बहुत अनुपयुक्त समय है। इसके अतिरिक्त जब **पुरवा** (पूरब की) हवा चलती है उस समय बर्तन बनाने का काम अच्छा होता है; पछुवाँ हवा बर्तन के लिए उपयुक्त नहीं होती क्योंकि उससे बर्तन चिटक जाते हैं।

बर्तन बनाने के निम्न ढङ्ग हैं :—

२३१. (अ) **चाक पर बनाना** :—चाक पहिये की भाँति लगभग डेढ़ हाथ व्यास की गोलाई का होता है। इसकी मोटाई डेढ़ या दो अंगुल होती है।

यह पत्थर का होता है। चाक घूमने के लिए जमीन में एक छोटी-सी खूँटी गाड़ दी जाती है जो इमली की होती है; क्योंकि इमली की लकड़ी मजबूत होती है, और कम घिसती है। इसी पर चाक का मध्यबिन्दु रहता है। चाक आसानी से चक्कर काटे इस लिए उस खूँटी में कभी-कभी तेल लगा देते हैं।

चाक पर बर्तन बनाने के लिए निम्न सामान चाहिए :—

चकइठ—यह एक डंडा है। चाक के किनारे पर एक छोटा-सा गड्ढा होता है; जिसे घुच्ची या घुलसी कहते हैं। कुम्हार इसी सूराख में चकइठ का सिरा डाल कर चाक को बाईं से दाहिनी ओर को चक्कर देता है। चाल ढीली हो जाने पर कुम्हार पुनः चकइठ से चाक को चालू कर देता है। चाक चलाते समय कुम्हार एक पीढ़े पर बैठता है।

चकउढ़, चकवढ़ि, चकउँड या चकउँड़ि—यह बड़े कटोरे की तरह मिट्टी का एक बर्तन है। चाक के पास यह पानी से भरा हुआ रक्खा रहता है क्योंकि बर्तन बनाते समय उसे सवाँरने के लिए कुम्हार को पानी की आवश्यकता पड़ती है।

छेवन या छीवन—यह एक पतला डोरा है जो एक नरकट या लकड़ी में बँधा रहता है; कुम्हार इस से चाक पर बने हुए बर्तन को काट कर अलग कर देता है। कुम्हार को इसी कार्य के कारण मुड़कट्टा भी कहते हैं।

२३२. बर्तन बनाने के लिए चाक पर जो मिट्टी रक्खी जाती है उसे पींड़ा कहते हैं। चलते हुए चाक पर हाथ रखने से चाक हाथ को झटक देता है अतः मिट्टी पकड़ कर बर्तन बनाना बड़े अभ्यास से आता है। मिट्टी को विभिन्न आकार देने के लिए बहुत हल्के हाथ की आवश्यकता है; अँगुलियों तथा कलाई पर विशेष अधिकार होना चाहिए। ऐसे बर्तन जो चाक पर बनते हैं उनकी पेनी (पेंदी) सम होती है। चाक पर बननेवाले बर्तन ये हैं :—

२३३. भरुका—यह पानी पीने का छोटा-सा मिट्टी का बर्तन है। इसमें लगभग पाव भर पानी आता है। इसी को पुरवा और कुल्हड़ भी कहते हैं। इसकी ऊँचाई लगभग आधा बीता तथा मुँह की चौड़ाई चार अंगुल होती है।

घरिया—घड़े का यह बहुत छोटा रूप है। बच्चे इस से खेलते हैं।

दिया या दीया—चिराग जलाने के लिए यह मिट्टी का एक बर्तन है।

दियरी या दियली—यह दिया का बहुत छोटा रूप है।

परई—यह दिये से बड़ी पर पतली और हल्की होती है। इसके कई रूप प्रचलित हैं; जो कटोरे के आकार की होती है, उसे कोसा या कोसी कहते हैं। इस का एक छोटा-रूप ढकनी कहलाता है। परई को कसोरा या कसोरी भी कहते हैं।

कोहा—यह एक बड़ा और गहरा कटोरा कहा जा सकता है। इसमें गाय-भैंस के बच्चे सानी खाते हैं। घर की छाजन में बड़ेर के कोन पर जब इसे उलट कर रखते हैं तब इसे कलसा कहते हैं।

डोकी या डुकिया—इस में बच्चे के लिए बुकुवा या उबटन और तेल रक्खा जाता है।

लबनी या लभनी—ताड़ीकस इसमें ताड़ी चुआते हैं। यह आकार में लम्बी और गोली होती है।

चुक्कड़—यह बहुत छोटा भरुका है। ताड़ी पीने वाले इसका प्रयोग करते हैं।

अथरा—यह छिछले आकार का बड़ा कटोरा कहा जा सकता है।

चिलम—यह तंबाकू पीने के काम आती है।

टोंई, टोंटी या तुतुई—हिंदू-घरों में बच्चे खेलने में इसका प्रयोग करते हैं। इसी का बड़ा रूप बधना है जिसे मुसलमान प्रयोग में लाते हैं।

गमला—फूल या छोटे पौधे लगाने के लिए यह काम में आता है।

नरिया—यह छाजन के काम में आती है। दो नरियों के जोड़ने पर जो गोला रूप होता है उसी प्रकार का गोला और पोला रूप चाक पर बनाते हैं। फिर उसे दो भागों में बाँट कर दो नरिया बना देते हैं। इस प्रकार चाक पर नरिये का जोड़ा बनता है। नरिया साँचे से भी बनती है। नरिये के आकार का एक ठोस साँचा बनाकर उसी के आधार पर नरिया बनाते हैं।

(आ) चाक पर बनने वाले अधूरे बर्तनः—इन बर्तनों के बनाने के लिए नीचे लिखे सामान की आवश्यकता होती है—

अथरी—इसमें राख रक्खी रहती है। चाक पर बने अधूरे बर्तनों को पूरा करते समय राख की आवश्यकता होती है।

पीटन या पिटना—यह लकड़ी का औजार बर्तन पीटने के काम में आता है।

पींड़ या मुठिया—यह मिट्टी का होता है। इसमें मुठिया बनी रहती है जिस को पकड़ कर बर्तन पीटा जाता है। इस का निचला भाग लगभग चार इंच व्यास की गोलाई का होता है।

गहना—यह मिट्टी का एक छोटा डंडा होता है। यह पका होता है। बर्तनों के पीटने में जहाँ पींड़ से काम नहीं ले सकते वहाँ इसका प्रयोग करते हैं।

साधारण बर्तन के चार भाग किए जा सकते हैं—एक, मुँह के पास का भाग जिसे मुँहकड़ा कहते हैं। दूसरा, मुँहकड़ा के नीचे का भाग जिसको गर्दन कहते कहते हैं; इसी को भिम्मा भी कहते हैं। तीसरा, वह भाग है जो भिम्मा और पेंदी के बीच का होता है जिसे पेट कहते हैं। चौथा पेंदी वाला भाग है। गोली पेंदीवाले भाग चाक पर अधूरे बनते हैं। ऐसे बर्तनों को पेंदी बाद में बनती है। ऐसे बर्तन ये हैं:—

हाँड़ी—यह बड़े और छोटे दोनों आकार की बनती है। इसे हम बड़ा लोटा कह सकते हैं। इसका प्रयोग बहुतायत से होता है। यह भोजन बनाने के काम में आती है।

पतुकी—यह हाँड़ी का छोटा रूप है। हाँड़ी-पतुकी दोनों शब्द साथ-साथ भी प्रयोग में आते हैं।

मेंटी—यह भी हाँड़ी के सदृश होती है लेकिन सुंदर गढ़ी हुई होती है। इस का पेट उभरा हुआ होता है। यह दूध-दही के रखने के काम में आती है।

कमोरी—यह घड़े के आकार का बर्तन है। दही मथने के काम में आती है।

सड़का—यह शक्कर बनाते समय सीरा या रस उदहने के काम में आता है। इस के छोटे रूप को सड़की कहते हैं। इसे पकड़ने के लिए गर्दन के पास मुठिया बनी रहती है।

तौला—यह बड़े आकार का बर्तन है। गगरी से बड़ा होता है।

गगरी—यह छोटे घड़े के बराबर होती है।

डोल वा लोट—यह बहुत बड़ी गगरी कही जा सकती है। बरई इस से अपनी पनवाड़ी सींचते हैं।

मेंटा—यह मेंटी से बड़े आकार का होता है।

२३४. पेंदी के अतिरिक्त जब और भाग चाक पर बन जाता है तब बर्तन को चाक पर से उतार लेते हैं और **अथरी** में रखते हैं। अथरी में राखी पड़ी रहती है। कुम्हारिन अथरी से बर्तन को उठा कर उस की पेंदी बनाती है। पेंदी बनाने के लिए बाएँ हाथ की अँगुलियों को बर्तन के अंदर सहारा देने के लिए डाल देते हैं और ऊपर से राखी डाल-डाल कर पींड़ से मिट्टी बढ़ाते हैं। **गहना** का भी प्रयोग आवश्यकतानुसार करते हैं। इस कार्य को **गहब** (गहना) या **सिरोहब** (सिरोहना) कहते हैं। पींड़ और गहना चलाने में बहुत होशियारी चाहिए। इस प्रकार मिट्टी बढ़ा कर या गह कर पेंदी का भाग पूरा कर लिया जाता है। पेंदी बन जाने पर धीरे-धीरे मुँहकड़ा बढ़ाते और **माँठते** जाते हैं अर्थात् हाथ में पानी लेकर उस को बारी को धीरे-धीरे सुडौल बनाते हैं। बर्तन तैयार होने पर अंत में **कनई** (गीली मिट्टी) बर्तन के ऊपर पोत देते हैं। इस से बर्तन के **चिरचिराने** का भय नहीं रहता। बर्तन को सूखने के लिए **साया** (छाया) में रखते हैं।

२३५. (इ) **पाथ कर बनाए जाने वाले बर्तन**:—पाथ कर बनाए जाने वाले बर्तनों में केवल **थपुआ, थपुवा** या **थपुहा** है। इसे **खपड़ा** भी कहते हैं। मकान की छाजन के काम में इस का प्रयोग होता है। थापने के लिए कुम्हार मिट्टी तैयार कर के उस का **ढूहा** लगा देता है। पाथी जाने वाली जगह को वह खूब झाड़-बटोर कर साफ करता है, फिर थोड़ी-थोड़ी सी मिट्टी लेकर उस का **लोआ** बनाता है। तदनन्तर लोए से मिट्टी निकाल कर उसे पींड़ से पीट कर थपुआ बनाता है। कुम्हार के साथ एक काम करने वाला और होना चाहिए क्योंकि थपुआ थापने के बाद उसे पानी लगा कर **माँजना** पड़ता है। माँजने के बाद थपुआ की **अवँठ** या **बारी** (किनारा) खड़ी की जाती है। इस

कार्य के लिए कुम्हारिन साथ-साथ रहती है। इस काम को सयाने बच्चे भी कर लेते हैं। थपुआ तैयार हो जाने पर जब वह कुछ झुरा (सूख) जाता है तब उसे ठढ़ियाया या खड़ियाया (खड़ा किया) जाता है। ऐसा करने के लिए दो खपड़े एक दूसरे के सहारे ओठगा (तिरछे खड़ा कर) दिए जाते हैं। खड़ियाने से हवा लगती रहती है। और खपड़ा जल्दी सूख जाता है।

२३६. (ई) साँचे पर बनाए जाने वाले बर्तनः—बड़े-बड़े बर्तन साँचे से बनते हैं। साँचे को गोंट कहते हैं। जो वस्तु बनानी होती है उसी आकार का मिट्टी का ठोस ढूहा बना लेते हैं; जैसे, हौदा बनाने के लिए हौदे के आकार का ढूहा बनाते हैं। ढूहे पर राखी छिड़क कर उस पर मिट्टी रख कर धीरे-धीरे हौदे का आकार बनाते हैं। हौदे के साँचे का आकार ऐसा होता है जैसा हौदे के ओन्हाने (उलट देने) पर। हौदा जब लगभग तैयार हो जाता है और केवल बारी बनानी शेष रह जाती है तब बारी के लिए मिट्टी की अलग से एक पट्टी बनाते हैं। फिर इस पट्टी को उस बर्तन में जोड़ देते हैं। हौदी (हौदा का छोटा रूप) भी इसी प्रकार बनाते हैं। हौदा और हौदी दोनों बर्तन पशुओं को सानी-भूसा खिलाने के काम में आते हैं। ढोल या लोट से एक बड़ा बर्तन छोंड़ है जिसमें गल्ला रक्खा जाता है। इसका निचला भाग साँचे पर बना कर मुँहकड़ा बाद में बनाते हैं। खिलौना बनाने के लिए भी कुम्हार अपने पास साँचा रखता है, वह दीवाली के अवसर पर हाथी, घोड़ा, सिपाही, ग्वालिन आदि खिलौने बनाता है।

बर्तन सुखाना :

२३७. बर्तन तैयार होने पर उसे साया में सुखाते हैं। जब बर्तन कुछ सूख जाते हैं तब उन्हें धूप में सुखाते हैं। यदि बर्तनों को एकाएक धूप में रख दिया जाय तो उनके चिटकने का डर रहता है। पछुवाँ हवा बहने पर भी बर्तन चिटक जाते हैं। जिस बर्तन में अँकड़ी होती है वह भी चिटक जाता है। जब बर्तन पर चिटकने के कारण दरार पड़ जाती है तो उस पर गोबर और मिट्टी मिला कर लीप देते हैं। किन्तु यह जोड़ बाद में खुल जाता है।

बर्तन रँगना :

२३८. बर्तन पकने से पहले उस पर काबिस पोत देने से बर्तन पर गहरा लाल रंग आ जाता है। काबिस बनाने के निम्न ढंग हैं :—

(१) रेह को पानी में भिगो देने से उस का असर पानी में आ जाता है। इसी से मिट्टी सानते हैं। इस प्रकार जो मिट्टी तैयार होती है उसी से बर्तन रँगते हैं। (२) पहले रेह का पानी तैयार करते हैं। इस के बाद आम की छाल, बाँस की पत्ती, बबूल की पत्ती, अडूस की पत्ती तथा कराइन (पुरानी धान की पत्ती) को एक ओखरी में डाल कर खूनते हैं और रेह का पानी डालते जाते

हैं। इन्हीं चीजों के साथ मिट्टी को भी मिला कर खूनते जाते हैं, इस प्रकार जो मिट्टी तैयार हो जाती है उस का ढूँढ़ा (गोला) बना लेते हैं। इस गोले को आवश्यकता पड़ने पर पानी में भिगो लेते हैं और इस से बर्तन रँगते हैं। (३) कुछ कुम्हार इस में चिचिढ़ा की पत्ती भी मिलाते हैं और सारे सामान को कूट कर रेह के पानी में एक दिन भिगो देते हैं। इसके बाद ओखरी में कूटते हैं और फिर ढूँढ़ा बना कर रख लेते हैं।

रंग गाढ़ा करने के लिए ढूँढ़े को पोतनी मिट्टी में मिला कर दुबारा पोतते हैं।

बर्तन नकासना :

२३६. देहाती कुम्हारों के पास बर्तन नकासने का औजार एक ही होता है। यह नाई की नहरनी या नहन्नी है। इसी से वह नकासने का काम लेता है। वस्तुतः नकासने का काम देहात में बहुत कम होता है। दीवाली पर दीप रखने के लिए बनी झँझरी में प्रकाश बाहर आने के लिए छोटे-छोटे सूराख काट दिए जाते हैं। झँझरी लोटे के आकार की होती है। इन सूराखों के काटने में ही कला है।

बर्तन पकाना :

२४०. बर्तन पकाने के लिए कुम्हार जमीन में एक गड्ढा बनाता है। यह गड्ढा आकार में छिछला होता है। इसे आँवाँ कहते हैं। इसी गड्ढे में बर्तन रख कर उस में गोहरी रख कर बर्तन पकाया जाता है। जब आँवाँ लग जाता है तब भी उसे आँवाँ ही कहते हैं। आँवाँ में प्रयोग करने के लिए गोबर की मुठिया अच्छी होती है। कुम्हारिन पशुओं की बैठानी पर जाकर गोबर इकट्ठा करती है और वहीं पर उसे मूठी से पाथ कर धूप में सूखने के लिए डाल देती है। मुठिया आकार में कुछ गोली होती है। इस की आँच मध्यम श्रेणी की होती है जिसे मद्धिम आँच कहते हैं। इसकी आँच से बर्तन अच्छा पकता है। दूसरे प्रकार का ईंधन गोहरा कहलाता है। इसके दो भेद होते हैं एक बहुत पतला जिसे चिपरा और दूसरा कुछ मोटा जिसे गोहरा, गोहरी या गोंइठा या गोंइठी कहते हैं। बरसात में कुम्हार गोबर इकट्ठा करता है और वर्षा समाप्त होने पर उसे पाथता है। इस पकार गोबर सड़ जाता है। इस गोबर की बनी हुई मुठिया या चिपरी अच्छी होती है। गोहरा या गोंइठा मोटा होने से गम्हीर (गम्भीर) आँच देता है। बर्तन पकाने में इस का प्रयोग यथा-सभव कम करते हैं। गोबर की छोत को सूखने पर कंडा कहते हैं। आँवाँ में इस का भी प्रयोग करते हैं।

२४१. आँवाँ में सब से नीचे राखी होती है। उसके ऊपर मुठहथ (मूठी बंद हाथ की नाप—लगभग डेढ़ बीता) भर उपला लगाते हैं। इस के बाद बर्तनों की परत पर परत बिछाते जाते हैं। सब से पहले बड़े-बड़े बर्तन लगाते हैं। तह को बराबर करने के लिए यथास्थान छोटे-छोटे बर्तन भी रखते जाते हैं। आँवाँ के बीच में एक ऐसी हाँड़ी रखते हैं जिसके बीच में सूराख होता है। इस हाँड़ी का संबंध

आँवाँ में बिछाए गोहरों से होता है। जब तक आँवाँ पूरा नहीं हो जाता तब तक इसी प्रकार की हाँड़ी एक के ऊपर एक करके रखते जाते हैं। इसी हाँड़ी के सूराख के द्वारा, आँवाँ बंद होने पर, आँवाँ के निचले भाग में आग पहुँचाई जाती है, जिससे आँवाँ सुलगता है। बर्तन की प्रत्येक परत के बाद गोहरा जोरियाया (जोड़ा) जाता है। जब अंतिम तह लग जाती है; तब आँवाँ बंद करने के लिए भी एक तह रक्खी जाती है। इस के साथ-साथ गोहरी के छोटे-छोटे टुकड़े जिन्हें करसी कहते हैं, डाल दिए जाते हैं। आँवाँ बंद करने के लिए ईख की पत्ती या कराइन रखते हैं और इसके ऊपर मिट्टी का गारा लोप देते हैं। इस प्रकार आँवाँ ढँक जाता है। अब इसके ऊपर थोड़ी राखो छोप देते हैं। इस प्रकार छोपन या छापन का कार्य समाप्त होता है। आँवाँ में आग डालने के लिए एक आदमी को सीढ़ी या जुआठ पर बैठाकर सीढ़ी को दो आदमी पकड़ कर उठाते हैं और फिर वही आदमी हाँड़ा के सूराखों द्वारा आँवाँ में आग पहुँचाता है। इन हाँड़ियों को नरिहर कहते हैं। चौबीस घंटे में आँवाँ पक जाता है। अच्छा पका हुआ बर्तन खर और कम पका सेवर कहलाता है।

कहीं-कहीं विशेषतः निजामाबाद तहसील सदर (आज़मगढ़) में कुम्हार कुछ विशेष ढंग के बर्तन बनाते हैं; इन बर्तनों को आँवाँ में न पका कर एक बड़े कूँड़े में पकाते हैं और कंडों की जगह धान की भूसी का प्रयोग करते हैं। इस से ये बर्तन पकने पर काले होते हैं इन पर पारे से फूल-पत्ती बनाते हैं। काले बर्तन पर पारे का श्वेत रंग बहुत शोभा देता है। पर ये बर्तन कमजोर होते हैं। ये बाहर शहरों में भेजे जाते हैं। यहाँ गुलदस्ते, तश्तरियाँ, चाय के बर्तन आदि अधिक बनते हैं।

लकड़ी का काम

२४२. लकड़ी का काम करने वाले को बढ़ई कहते हैं। कभी-कभी लोहार और बढ़ई दोनों का काम एक ही कारीगर करता है।

ब ढ़ ई के औ जा र:

बसूला—इसके द्वारा लकड़ी गढ़ी जाती है। बसूला बहुत काम का औजार है। इसका लोहा बहुत अच्छा होता है इसकी धार पानी में बुझाई रहती है। इस क्रिया को पानी चढ़ाइब (चढ़ाना) कहते हैं। पानी चढ़ाने से धार कड़ी और तेज हो जाती है।

रुखान या रुखानी—यह लकड़ी काटने या लकड़ी में गड्ढा करने के काम में आता है इसकी धार लगभग आधी इंच चौड़ी होता है साधारण रुखानी देहाती लोहार बना लेता है पर यह कारखाने से भी बनकर आती है जिसे विलायती रुखानी

कहते हैं। रुखानी अच्छे लोहे की बनती है। इसके सिरे पर लकड़ी का दिस्ता लगा होता है जिसमें रुखान का ऊपरी नोकीला सिरा—गूँज—ठोंका रहता है। रुखानी के प्रयोग के समय उसको ठोंकना पड़ता है; चोट से लकड़ी फट न जाय इसलिए दिस्ते पर रस्सी बाँध दी जाती है।

आरी—यह लचकदार चद्दर की होती है। इसका अगला भाग पिछले से क्रमशः सँकरा रहता है। लकड़ी चीरने के लिए इसके एक किनारे पर रेती से दाँत बना दिए जाते हैं। इसे पकड़ने के लिए लकड़ी का दिस्ता लगा रहता है। आरी कभी-कभी भँज (मुड़) कर टूट जाती है। आरी से जब बाँस काटना होता है तब इसके दाँतों को इस ढंग से बनाते हैं कि एक दाँत बाईं ओर तो दूसरा दाहिनी ओर झुका हो। इस प्रकार की आरी से बाँस काटने में आसानी पड़ती है, सीधे दाँतोंवाली आरी इसमें फँस जाती है और उसके खींचने में कठिनाई पड़ती है। आरी घोंठिल (कुंठित) हो जाने पर रेती से तेज की जाती है।

आरा—आरी से यह बड़ा होता है और बड़ी लकड़ियों के चीरने के काम में आता है। इसके दो भेद होते हैं—(अ) फेटकट आरा—इस आरे के दोनों सिरों पर दिस्ते लगे रहते हैं। जिन्हें पकड़ कर दोनों ओर से आदमी खींचते हैं। इसकी चद्दर को बन्न या बन्नि कहते हैं क्योंकि यह आरा साधारणतः विलायती कपड़े की गाँठों के पक्के बंद से बनता है। (आ) चिरुआँ या चिरुवाँ आरा—इसके चारों ओर लकड़ी का चौखटा होता है। इसकी चद्दर फेटकट आरे से हलकी होती है यह साधारणतः आराकस (आराकश) के पास होता है।

टाँगा या टेंगारा—इससे लकड़ी काटी जाती है। लकड़ी के समूचे टुकड़े को कुंदा तथा फाड़े हुए टुकड़े को चैला कहते हैं चैला के छोटे रूप को चैली तथा अत्यंत छोटे-छोटे टुकड़ों को चूनी कहते हैं। टाँगा खड़े होकर दोनों हाथों से चलाया जाता है। इसके छोटे रूप को टाँगी कहते हैं।

रंदा या रन्ना—लकड़ी साफ करने या चिकनी करने का यह औजार है। रंदा चलाने को रंदा करब (करना) या रंदा फेरब (फेरना) कहते हैं।

बरमा—यह लकड़ी में सूराख करने का औजार है। इसके मध्य भाग में एक लकड़ी लगी रहती है; इसी लकड़ी पर रस्सी लपेटकर बरमा चलाया जाता है। बढ़ई बरमा पकड़ता है और एक अन्य पुरुष रस्सी के दोनों किनारों को बारी-बारी खींचता है जिससे बरमा चक्कर करता है। जब बढ़ई स्वयं बरमा चलाता है तब वह एक धनुही का प्रयोग करता है; धनुही की डोरी बरमा की लकड़ी में फँसा कर दायें-बायें घुमाने से बरमा घूमता है। बरमा के सिरे पर लकड़ी की एक टोपी पहनाई रहती है जिसे बढ़ई बरमा चलाते समय दबाए रहता है। यह भाग बरमा घूमते समय स्थिर रहता है और शेष भाग चक्कर करता है। बरमा के छोटे रूप को बरमी कहते हैं।

गिलमिट—यह मोटी लकड़ी में सूराख करने का विशेष औजार है।

परकार—इससे वृत्त बनाते हैं।

समकोनिया—इससे समकोण नापते हैं।

लकड़ी के गुण-दोष :

२४३. पक्की और मजबूत लकड़ी को **पोढ़, पोढ़गर** अथवा **पोरगर** कहते हैं। कच्ची लकड़ी उलझकर **अइँठा-बाँकर** (टेढ़ी-मेढ़ी) हो जाती है जिसे **बरब** (बरना) कहते हैं। कच्ची लकड़ी में **घुन** लग जाता है, यह जल्दी सड़ती है। पोली लकड़ी को **खोखली** और ऐसी लकड़ी को जो भीतर ही भीतर सड़ जाती है **भँड़छी** कहते हैं। लकड़ी में जहाँ **गाँठ** होती है वहाँ टूटने का भय रहता है।

लकड़ी ढोना :

२४४. जिस लकड़ी को ढोना होता है उसके दोनों किनारों में रस्सी का फंदा लगाते हैं। इस रस्सी को **जोरई** या **सगंधा** कहते हैं। फिर जोरई के दोनों किनारों को दो बाँस में अलग-अलग बाँधते हैं और उन बाँसों को पकड़कर चार आदमी उठाते हैं। इस प्रकार लकड़ी ढोने को **जोरई** या **सगंधा से ढोउब** (ढोना) कहते हैं। साझे का काम ठीक नहीं माना जाता इस संबंध में एक कहावत है **साझे की सुई सगंधा से जाई** अर्थात् सूई इतनी हल्की चीज को ढोने के लिए यदि वह साझे की है तो सगंधा चाहिए। लकड़ी का फंदा ढीला रहने पर लकड़ी हिलती-डुलती है जिसे **डग मारब** (मारना) कहते हैं। जब लकड़ी अधिक वजनी होती है तब उसके ढोने में और आदमी लगाने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में जोरई वाले बाँसों के किनारों पर बाँस के टुकड़े लकड़ी की लंबाई की दशा में समकोण रूप में बाँधते हैं। अब इनमें से प्रत्येक बाँस को दो-दो आदमी उठाते हैं। इस प्रकार लकड़ी के दोनों ओर चार-चार आदमी लगते हैं। ढोने के इस ढंग को **छिउँकी** कहते हैं।

लकड़ी अहारना :

२४५. किसी बड़ी लकड़ी को सुडौल करने के लिए **टँगारा** (कुल्हाड़ा) का प्रयोग होता है। लकड़ी के अगल-बगल के भाग को काट-छाँट कर निकालने को **अहारब** (अहारना) कहते हैं। लकड़ी उलटने को **पलथा खिलाइब** (खिलाना) या **पलथियाइब** (पलथियाना) कहते हैं। अहारने से जब छाल निकल जाती है और लकड़ी चौकोर हो जाती है तब उसे **सिल्ली** कहते हैं। लकड़ी के भीतरी अंश को **हीरा** कहते हैं। सिल्ली को कई टुकड़ों में काटने को **फेंट काटब** (काटना) या **गेंड़ियाइब** (गेंड़ियाना) कहते हैं।

लकड़ी चीरना :

२४६. लकड़ी चीरने के लिए सिल्ली को तिरछे एक बाँस के सहारे खड़ी करते हैं। यह बाँस दो गड़ी हुई थूनियों में बँधा रहता है। लकड़ी की सिल्ली जब इधर-उधर डगमगाती है तब उसे **मेलहब** (मेलहना) कहते हैं। जिस जगह से

लकड़ी को चीरना होता है उस जगह निशान बना देते हैं। यह निशान सूत से लगाया जाता है। सूत को गेरू या कालिख में रँग लेते हैं। सूत से निशान लगाने को सूत **लगाइब** (लगाना) कहते हैं। सिल्ली को दो टुकड़ों में चीरने को **अधवार खोलब** (खोलना) कहते हैं। सिल्ली चीर कर आवश्यकतानुसार पल्ले निकाले जाते हैं। सिल्ली के बगल के पल्लों को **बगला** कहते हैं। लकड़ी चीरने से जो बुरादा गिरता है उसे **भुर्रा** (भूरा) कहते हैं। आरा चलाने के लिए दो आदमी लकड़ी के सामने और एक आदमी पीछे की ओर लगता है। पीछे वाला आदमी आरा चलाने के साथ-साथ यह देखता रहता है कि आरा निश्चित स्थान पर चलता रहे: इस क्रिया को **आरा साधब** (साधना) कहते हैं। आरे की नोक सामने की ओर रहती है इसलिए सामने के आदमियों को अधिक परिश्रम पड़ता है।

नापना, गढ़ना, सूराख करना, खरादना आदि:

२४७. साधारण नाप जोख के लिए बढ़ई एक तीन या चार अंगुल का नपना बना लेता है जिसे **कैंड़ा** कहते हैं। इसी नाप से वह लकड़ी पर निशान बनाता है।

लकड़ी गढ़ने का कार्य बसूले से होता है। गढ़ने की सुविधा के लिए बढ़ई जमीन में एक खूँटा गाड़ लेता है जिसके सहारे पल्ले को टेक देता है। लकड़ी गढ़ते समय बसूला जमीन पर न लगे इस उद्देश से लकड़ी को एक मोटी लकड़ी के टुकड़े पर रखते हैं। इस टुकड़े को **ठीहा** कहते हैं। ठीहे में थोड़ा सा गड्ढा रहता है जिस पर लकड़ी की **बारी** (किनारा) रहती है। गढ़ते समय लकड़ी काटने-छाँटने को **लकड़ी कमाब** (कमाना) कहते हैं।

२४८. लकड़ी गढ़ लेने पर साफ करने का काम **रंदा** से होता है। इस क्रिया को **रंदियाइब** (रंदियाना) कहते हैं, रंदा में एक पतली लोहे की पत्ती लगी रहती है जिसके सहारे लकड़ी की सफाई होती है। कभी-कभी बड़े रंदे की जरूरत पड़ती है जिसे दो आदमी चलाते हैं।

२४९. बड़े सूराख करने के लिए **रुखानी** का प्रयोग होता है। गोल और चौकोर दोनों ढंग के सूराखों के लिए अलग-अलग रुखानी होती है। किसी सूराख में किसी लकड़ी को बैठाने को **सालब** (सालना) कहते हैं। खटिया या चारपाई की पाटी और सिरई को गोड़ों (पावों) के सूराखों में पेश करने को **पाटी और सिरई सालब** (सालना) या **खटिया सालब** (सालना) कहते हैं। छोटे सूराख करने के लिए **बरमा** या **बरमी** का प्रयोग होता है।

२५०. लकड़ी खरादने के लिए कुछ लोहे के औजार होते हैं। जिस ढंग की खराद करनी होती है उस ढंग की खराद के लिए विशेष औजार चाहिए। औजार देहात के लोहार बना लेते हैं। लेकिन देहात में खराद का काम बहुत कम होता है। कुछ बढ़ई पलंग का पावा खरादना जानते हैं। खरादने का कार्य भी बरमा खींचने की तरह होता है; खरादने के औजार को, जिसमें रस्सी लपेटी

रहती है, एक आदमी खींचता है और बढ़ई औजार के सहारे घूमती हुई लकड़ी को खरादता जाता है।

बढ़ई किसान के खेती संबंधी सभी औजारों को समय-समय पर ठीक करता है और उसके एवज में उसे प्रत्येक फसल पर कुछ निश्चित गल्ला मिलता है। इस प्रकार साल भर में जो अनाज मिलता है उसे **साली** या **पाथी** कहते हैं। लकड़ी के कामों में दरवाजा और गाड़ा बनाना ये दो मुख्य काम हैं—

द र वा जा :

२५१. मकान के प्रवेश-द्वार को **दुआरि, मो .र** या **दरवाजा** कहते हैं। दुआरि को बंद करने के लिए जो दरवाजा लगता है उसे अधिकतर **किवाड़** या **केवाड़** कहते हैं। छोटे किवाड़ को **किवाड़ी** या **केवाड़ी** कहते हैं। जहाँ दरवाजा लगना होता है वहाँ, जैसा कि मकान बनाने के विवरण में बतलाया गया है, **पटौंधन** या **दुरवन** दिया रहता है। दरवाजे के पल्लों को लगाने के पूर्व, उसके **उतरंग, चौखट** और **बाजू** को भी दीवार में बैठा देते हैं। उसके साथ ही पुराने ढंग के दरवाजों के **चूर** के लिए ईंट या लकड़ी की **ठेहरी** भी दोनों **बाजुओं** के नीचे लगा दी जाती है।

२५२. एक दरवाजे में दो **पल्ले** होते हैं। प्रत्येक पल्ला दो **तख्तों** के जोड़ से बनता है क्योंकि एक पल्ले की चौड़ाई के बराबर लकड़ी नहीं मिलती है। इन तख्तों को आपस में **गोजहिल्ली** या **गुजहिल्ली** (लकड़ी की बनाई गई कील) द्वारा एक दूसरे से संबंधित करते हैं। तख्ते आपस में जुटे रहें इस दृष्टि से फिर प्रत्येक पल्ले पर बेंड़े-बेंड़ बराबर दूरी पर चार **पुश्तवान** (दो इंच चौड़ी और एक इंच मोटी लकड़ी) जड़ देते हैं। पुश्तवान को **गुलाबा** (एक बड़े लोहे की कील) से जड़ते हैं।

२५३. दरवाजे के ठीक-ठीक और बराबर से बंद होने के लिए बाएँ पल्ले के दाहिने किनारे पर चार अंगुल चौड़ी और दो अंगुल मोटी लकड़ी लगाते हैं जिसे **बेनी** या **बेनिया** कहते हैं। बेनी वाला पल्ला पहले **ओठगाया** जाता है और साधारण पल्ला उसके ऊपर। **सकड़ी** द्वारा बाहर से दरवाजा बंद करने के लिए सकड़ी को साधारण पल्ले में लगाते हैं और **कोढ़े** को उतरंग में। जब सकड़ी पीछे से बीच में लगती है तब कोढ़ा साधारण पल्ले में लगता है और सकड़ी बेनी वाले पल्ले के मध्य पुश्तवान में। दरवाजे को पीछे से बंद करने का एक पुराना ढङ्ग **बिलारी** द्वारा है। दरवाजे के पीछे बीचो-बीच दरवाजे की चौड़ाई के बराबर एक लकड़ी लगाते हैं; यह लकड़ी दोनों पल्लों में जड़े **करुवार** (चूल्हे के आकार का एक कीला) के बीच में रहती है और दरवाजे के खोलने और बंद करने के लिए आवश्यकतानुसार खिसकाई जाती है।

दरवाजे में जब लोहे का जँगला बैठाते हैं तब उतरंग और चौखट में सूराख

कर के लोहे के छड़ लगाए जाते हैं। जँगले के बीच बेंड़े-बेंड़ एक लकड़ी लगती है जिसे डँड़हरी कहते हैं। डँड़हरी में छड़ के आर-पार जाने के लिए सूराख रहते हैं।

छप्पर के मोहार में बाँस के फल्ठों का टटरा लगते हैं। टटरा के ऊपर-नीचे के बाँसों को सिरई तथा दोनों बगल के बाँसों को पाटी कहते हैं। बाँस के फल्ठों को बाता कहते हैं। बरदौर के मोहार में केवल एक बाँस लगा देते हैं जिसे बेंड़ा या ब्यौंड़ा कहते हैं। इसके दोनों हूर दीवार में रहते हैं।

बैल गाड़ी :

२५४. बैलगाड़ी मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है। एकबैलिया गाड़ी जिसे एक्की गाड़ी भी कहते हैं दूसरी दोबैलिया गाड़ी। एकबैलिया में एक बैल लगता है तथा दोबैलिया में दो बैल लगते हैं। दोबैलिया गाड़ी में जब एक बैल और लगा दिया जाता है तब उसे तिनबैलिया गाड़ी कहते हैं। तीसरा बैल दोनों बैल के आगे लगता है। इस बैल के लिए एक बींड़ या बींड़ी बनाई जाती है जो उसकी गर्दन पर रहती है। बींड़ी पुराने टाट और कपड़ों को सी कर बनाई जाती है। गद्दे वाला भाग बैल की गर्दन पर रहता है और उसके दोनों किनारे पिछले दोनों बैलों के जुए के मध्य में बंधे रहते हैं। बींड़ी वाले बैल को बिंड़िहा बैल कहते हैं। साधारणतः यह बैलगाड़ी के पीछे बँधा रहता है। जब गाड़ी को कहीं चढ़ाव पर ले जाना होता है या शुरू शुरू में जब गाड़ी को उभारना होता है तब बिंड़िहा बैल को आगे कर देते हैं। यह बैल अंडू होता है क्योंकि अंडू बैल जोशीले होते हैं और इनका डिल्ल (डील) ऊँचा होता है। बींड़ डिल्ल के सहारे रुका रहता है। बिंड़िहा बैल के लिए देशी नाटा या देवहटिया नाटा अच्छा माना जाता है। बिंड़िहा के अतिरिक्त दोनों बैलों को अलग-अलग पलहा अथवा पल्लहवा बैल कहते हैं। पलहा बैल बद्धी होते हैं। इसके लिए चम्मली बैल अच्छे माने जाते हैं क्योंकि ये ऊँचे, मजबूत तथा सुद्ध (सीधे) होते हैं। जब गाड़ी जोतना होता है तब बैलों को जुए के दोनों पल्लों में अलग-अलग नाध देते हैं। इनकी पगहियाँ गाड़ी के फड़ के लट्ठे में ढीली बाँधी जाती हैं। बिंड़िहा बैल के नाधने पर उसके बींड़ की रस्सी को बैल के पेट के नीचे से बाँध देते हैं ताकि बींड़ गर्दन से खिसक न जाय। बिंड़िहा बैल की दोनों दोगाहियों को गाड़ीवान अपने हाथ में ले लेता है और उसी के सहारे बैलों को हाँकता है।

२५५. देहात में एक छोटी गाड़ी खाद आदि लादने के लिए होती है जिसे गाड़ा कहते हैं इसके पहिए ठोस होते हैं। चलते समय यह बहुत आवाज करती है। छोटी होने के कारण यह सब जगह सुविधापूर्वक आ जा सकती है।

२५६. बैलगाड़ी का प्रमुख अंग पहिया है। पूरी पहिया को चक्का कहते हैं। जमीन में एक खूँटी गाड़ कर उसे केन्द्र मानकर एक रस्सी द्वारा चक्के के विभिन्न

भाग मूड़ी आरागज, तथा पहिए का स्थान वृत बनाकर निश्चित करते हैं। मूड़ी पहिए के मध्य में होती है। आरागज के द्वारा इसका संबंध पहिए से स्थापित होता है। इसके बीचोंबीच आरपार एक सूराख होता है जिसमें से गाड़ी का धुरा निकलता है। इस सूराख को नहीं कहते हैं। मूड़ी और पहिए में संबंध जिन लकड़ियों के द्वारा होता है उन्हें आरागज कहते हैं। जिस प्रकार साइकिल के पहिए में तीलियाँ होती हैं उसी प्रकार गाड़ी के पहिए में आरागज होते हैं। ये संख्या में प्रायः आठ होते हैं। इनका एक सिरा मूड़ी में होता है और दूसरा पहिए की पुट्ठी में। पहिया पूरे चक्के को तो कहते ही हैं पर चक्के के उस भाग को भी पहिया कहते हैं जो पुट्ठियों से बनता है और जो आरागज से संबंधित रहता है। पूरी पहिया के लिए पाँच या छः पुट्ठियाँ चाहिए। दो पुट्ठियों को आपस में जोड़ने के लिए एक पुट्ठी में छेद और दूसरे में चूर या चूरा बनाकर उसे बैठा देते हैं। इस प्रकार सारी पुट्ठियाँ एक दूसरे से जुड़ जाती हैं। जोड़ को मजबूत करने के लिए ऊपर से एक लकड़ी ठोंक देते हैं जिसे जोन्ही कहते हैं। पहिया के ऊपर लोहे का बंद चढ़ा दिया जाता है जिसे हाल कहते हैं इससे पहिया पक्की सड़क पर कम घिसती है। लेकिन देहाती गाड़ियों में हाल चढ़ी हुई पहिया बहुत कम होती हैं क्योंकि वहाँ सड़कें कच्ची हैं।

२५७. गाड़ी का दूसरा प्रमुख अंग फड़ है क्योंकि इस पर सामान लादा जाता है। इसमें दोनों बगल दो लट्ठे होते हैं और इन पर पटरे जड़ होते हैं। किसी-किसी गाड़ी में पटरे नहीं जड़े जाते लट्ठे बाँध दिए जाते हैं। गाड़ी के फड़ के दोनों ओर घेरा बनाने के लिए लट्ठों में सवा या डेढ़ हाथ लंबे लकड़ी के टुकड़े गाड़ दिए जाते हैं। इनका सिरा बाँस रखने के लिए कटा रहता है। इन खूँटों को कटुआ कहते हैं। सामने की ओर जहाँ ये लट्ठे मिलते हैं वहाँ से जुए तक एक मोटी लकड़ी लगी रहती है जिसे सगुनी कहते हैं। इस लकड़ी को गाड़ी बनाते समय बढ़ई सब से पहले बनाता है इसीलिए इसका यह नाम है। फड़ के निचले भाग में पीछे की ओर एक लकड़ी का टुकड़ा लगभग दो हाथ लम्बा झूलता रहता है जो गाड़ी को उलटने से रोकता है। जब गाड़ी पर पीछे की ओर बोझ अधिक हो जाता है तब ऐसी गाड़ी को उलार कहते हैं। उलार गाड़ी को गिरने से बचाने के कारण ही इस लकड़ी को उलरुआ कहते हैं। इसी प्रकार आगे की ओर भी नीचे एक लकड़ी लगी रहती है जो बैलों के एका-एक बैठ जाने पर गाड़ी के बोझ को रोक लेती है और गाड़ी का बोझ जुए पर नहीं पड़ने पाता। इस लकड़ी को उँटहरा कहते हैं। ऐसी गाड़ी जिसका बोझ आगे अधिक रहता है दाबू कहलाती है।

२५८. धुरा के सहारे गाड़ी की पहियाँ चलती हैं। यह लोहे का चार-पाँच हाथ लम्बा छड़ होता है यह फड़ के नीचे बीचो-बीच एक पहिए को दूसरे से

संबंधित करता है। मूड़ी के अंदर धुरा घूमने के स्थान में एक लोहे का टुकड़ा लगा रहता है जिसे आवन अथवा अवाँन कहते हैं। इसके रहने से मूड़ी का सूराख घिसता नहीं है। मूड़ी के पीछे एक लकड़ी होती है जिसे नसौड़ी कहते हैं। इसी में से होकर धुरा मूड़ी में जाता है। नसौड़ी और फड़ के बीच में एक लकड़ी होती है जिसे सवाई या मवाया कहते हैं। नसौड़ी के अगल-बगल पटरियाँ होती हैं जिन्हें सुजावा कहते हैं। मूड़ी की बाहरी ओर फड़ के लट्ठों के बगल में दोनों ओर लकड़ियाँ होती हैं जिन्हें पैजनी कहते हैं। इन लकड़ियों पर चढ़ कर सामान लादने में सुविधा होती है। धुरा बाहर निकालने के लिए इनमें सूराख कर दिया जाता है। ये लट्ठों से बँधी रहती हैं।

२५६. बैलगाड़ी के चलते समय दो बातों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है एक तो गाड़ी उलार न होनी चाहिए दूसरे गाड़ी के बगल या तिरछे गिरने का भय न होना चाहिए। जब गाड़ी चढ़ाव पर जाती है तभी गाड़ी के उलटने का डर होता है। गाड़ी उलटने पर बैल जुए में लटक जाते हैं। यदि तुरन्त ही उनकी रस्सियाँ काट न दी जायँ तो उनके प्राण जाने का भी भय रहता है। गाड़ी में उलरुवा के अतिरिक्त एक मोटी लकड़ी और लगी रहती है जो गाड़ी को उलटने से रोकती है। उलरुवा यदि धोखा दे जाता है तब यह लकड़ी सहारा करती है। इस लकड़ी को थोब कहते हैं। गाड़ी जब ऐसे स्थान पर चलती है जहाँ एक पहिया ऊँचाई पर और दूसरी नीचाई पर हो तब करवट होने का भय रहता है जिसे पल्था खाव (खाना) कहते हैं। ऐसी दशा में बैलों के प्राण संकट में तो रहते ही हैं गाड़ीवान भी कठिन परिस्थिति में पड़ जाता है।

२६०. गाड़ी लादते समय पहिया चक्कर न करे इस उद्देश्य से उसके पास ओट रख दिया जाता है। कुछ गाड़ीवान ओट देने के लिए लकड़ी का ओट अपने साथ रखते हैं। विशेष चीजों के लादने के लिए विशेष व्यवस्था करनी पड़ती है। भूसा लादने के लिए टाट के परदे होते हैं जिन्हे पाखड़ी कहते हैं। भूसा लादने के बाद पाखड़ी को रस्सियों से कस कर बाँध देते हैं। खाद लादते समय गाड़ी के फड़ पर गोनरी या चटाई अथवा टाट बिछाते हैं और दोनों के बगल बाँस का टट्टर खड़ा कर देते हैं इससे खाद गिरती नहीं है। खाद गिराते समय बैलों को खोल दिया जाता है और गाड़ी पीछे को उलार कर दी जाती है। कंकड़ और मिट्टी भी इसी प्रकार लादी जाती है। बरसात में सामान की बचत के लिए उपर से टाट, मोमजामा अथवा पाल डाल देते हैं। इसके अलावा सिरकी की छाजन भी प्रयोग में लाते हैं।

२६१. गाड़ी की धुरी में तेल देने के लिए जब पहिया को बाहर करना होता है तब फड़ को उठाने के लिए उसके नीचे चार-पाँच हाथ लम्बा बाँस या लकड़ी का टुकड़ा लगाते हैं इस लकड़ी को सिधवाई या भरँगा कहते हैं। पहिया अलग कर लेने पर धुरी के उस भाग पर जो आँवन के अंदर रहता है। मुसकी

लपेटते हैं। सुतली लपेटने के पहले उसके रेशे अलग कर लेते हैं। सुतली लपेट लेने पर रेड़ी का तेल चुपड़ते हैं इस के बाद फिर पहिया को धुरी में धीरे-धीरे घुमा कर चढ़ा देते हैं। इस क्रिया को गाड़ी तेलियाइब (तेलियाना) अथवा तुलाउब (तुलाना) कहते हैं. इससे गाड़ी हलकी चलती है।

पक्की सड़क पर चलने वाली गाड़ियों के बैलों के खुर बहुत जल्दी घिस जाते हैं इसलिए इनके खुर में लोहे की नाल बाँध दी जाती है। बैलों के खुर फटे होते हैं इसलिए खुर के दोनों भागों में अलग-अलग नाल लगते हैं।

बैलों को भोजन कराने के लिए गाड़ीवान के पास टाट का झोला होता है; इसी झोले में भूसा-दाना-खरी आदि डालकर उसे थोड़े पानी से करमो देते हैं इस प्रकार की सानी को मकोला कहते हैं। बैल को पानी पिलाने के लिए गाड़ीवान लोहे का एक डोल रखता है।

२६२. बैल को तेज दौड़ाने के लिए उसकी पूँछ को ऐंठना पड़ता है। काँछ (दोनों जंघों के बीच का भाग) छूने पर भी बैल भागता है ऐसा करने को असनिआइब (असनियाना) कहते हैं। बैल जब अधिक थक जाते हैं तब वे जुआ को कंधे से फेंक देते हैं, इसे पल्ला फेंकब (फेंकना) कहते हैं और बैलों की इस अवस्था को उकन्हब (उकन्हना) कहते हैं यथा बैल उकन्हि गइलें अर्थात् बैलों ने कंधे से जुआ फेंक दिया। जब बैलों को बहुत परिश्रम पड़ता है तब कहा जाता है कि बैलों का चहुँआ छूट गया। बैलों का कंधा जुए की रगड़ से कट जाता है जिसे कान्ह आइब (आना) कहते हैं।

चमड़े का काम

२६३. यह उद्योग चमार जाति का है जो लगभग समाप्त हो चुका है। केवल कच्चे चमड़े के पकाने का काम शेष है। जो पशु मरते हैं उनके चमड़े को अलग करके पकाया जाता है और उसी से सामान बनाते हैं। मरे हुए पशु को डाँगर कहते हैं। डाँगर ढोने के लिए गाँव का एक विशेष चमार होता है जिसका यह काम पुश्तैनी होता है। इस चमार को गँवहियाँ चमार कहते हैं। चमार डाँगर को गाँव से बाहर एकांत स्थान में ले जाता है और डाँगर के हाड़-मांस को अलग कर खाल निकाल लेता है। पशु के विभिन्न अंगों के लिए वह निम्न शब्दावली प्रयोग करता है। वह खपड़ोही सर के लिए, भूभुन ओठ के लिए तथा ओझरी पेट के लिए प्रयोग करता है। हृदय को वह करेजा (कलेजा) या चनेरुआ कहता है। हृदय के पास जो नरम (कोमल) मांस होता है उसे फेफसा कहते हैं। गले की नली को घाँटी तथा रक्त को रकत या

रक्कत कहा जाता है। रीढ़ के दोनों ओर अगल-बगल एक पतली नस होती है जिसे **पारही** कहते हैं। किसी-किसी गाय की नाभी (नाभि) में **गोरोचन** (गोलोचन) निकलता है। **खुर** को **खुरी** भी कहते हैं।

चमड़ा सिझाना या पकाना :

२६४. पहले चमड़े को **चूना** और **रेह** के साथ रखते हैं। इससे खाल में लगा हुआ सारा मांस गल कर अलग हो जाता है। इस मांस को अलग करने के लिए एक लोहे का औजार प्रयोग में लाते हैं जिसे **रंपा** कहते हैं। मांस अलग हो जाने पर खाल को पानी में धोते हैं। तदुपरांत आम के पेड़ से **बंडा** (पेड़ का एक रोग जिसकी शक्ल एक पौधे की भाँति होती है) ले आ कर उसे कूट कर पानी में भिगोते हैं और इसी पानी में उस चमड़े को भिगो देते हैं। जब बंडे का प्रभाव चमड़े पर हो जाता है और चमड़ा कुछ लाल हो जाता है तब उसे पानी से निकाल देते हैं। इसके बाद चमड़े को थैले के रूप में सीते हैं। चमड़े की सिलाई मूँज की **सुतरी** से की जाती है। सीने के औजार को **सुतारी** कहते हैं। थैले को टाँगने के लिए तीन बांसों का एक **कैंचा** या **हटका** बनाते हैं। इसी में थैला टाँगा जाता है। थैले में पुनः **खूना** हुआ बंडा भर कर पानी डाल देते हैं। पानी चमड़े के **रोंगटे** से धीरे-धीरे टपकता रहता है और उसके एकत्र होने के लिए नीचे एक हौदा गड़ा रहता है। चुए हुए पानी को **रसी** कहते हैं। इस चुई हुई रसी को पुनः उसी थैले में डाल देते हैं। इस क्रिया को **तोर चढ़ाइब** (चढ़ाना) कहते हैं। इस सारी क्रिया को **चमड़ा पकाइब** (पकाना) कहते हैं जिसमें लगभग एक सप्ताह लगता है। उसके बाद चमड़े के थैले को खोल कर उसमें **खारी नमक** लगा देते हैं। इसके लगाने से चमड़ा मुलायम हो जाता है। गाय-भैंस के चमड़े को **छाला** तथा भेड़-बकरी के चमड़े को **खालि** या **खाल** कहते हैं।

चमड़े के सामान :

२६५. **चलनी**—यह आटा चालने के काम में आती है। इसके चमड़े में सूजे से छोटे छोटे सूराख बना देते हैं और फिर किनारे पर गोलाई में **तरकुल** (ताड़) का **मेखड़ा** लगाते हैं।

झन्ना—यह भी चालने के लिए बनाया जाता है। इससे अनाज झाड़ते हैं।

मोट, चरस और मसक—ये तीनों पानी भरने के सामान हैं। मोट और चरस दोनों सिंचाई के लिए प्रयोग में आते हैं। मसक का प्रयोग शहरों में सफाई के लिए होता है।

भाथी—लोहार के पास यह अंगीठी में हवा करने के लिए होता है। यह एक प्रकार की धौंकनी है।

जूता—देहात में बने जूते को **चमौधा जूता** कहते हैं।

लतरी—स्त्रियों के चप्पल को लतरी कहते हैं।

सल्लू—यह जूता आदि सिलने के लिए चमड़े की पतली डोरी है।

बद्धी—यह सल्लू से मोटी डोरी है इससे तबला, मृदंग आदि मढ़ते हैं।

साँटा—बैल हाँकने के लिए चमड़े की कुछ लच्छियाँ सुटकनी के रूप में बनाते हैं जिसे साँटा कहते हैं।

किस्मत—यह चमड़े का एक थैला है जिसमें नाई अपने सामान रखता है।

चमौटी—नाई के पास चमड़े की एक टुकड़ा होता है जिस पर वह छूरा या अस्तूरा तेज करता है।

मोची के औजार:

२६६. रंपा या राँपी—यह चमड़ा काटने के लिए होता है।

पावदान—इस पर चमड़ा रख कर हथौड़ी से ठोंकते हैं। जूते में काँटी इसी पर रखकर ठोंकी जाती है।

दिहला— इससे चमड़ा पीट कर बढ़ाते हैं।

सुतारी—इससे सिलाई की जाती है।

मोचना—इसका किनारा थोड़ा से कटा रहता है जिसमें सिलाई करते समय डोरी या सल्लू बझा कर खींचते हैं।

लोहे का काम

२६७. लोहे के औजार बनाने वालों को लोहार कहते हैं। बढ़ई और लोहार का काम अधिकतर एक ही आदमी करता है। पर बढ़ई लोहार की अपेक्षा अधिक मिलते हैं। कई गाँवों के बीच में एक लोहार होता है।

लोहार के औजार और काम:

लोहे को बढ़ाने के लिए उसे गरम करना पड़ता है। इस कार्य के लिए उसके पास अँगीठी होती है जिसमें चमड़े की भाथी या भाठी द्वारा हवा पहुँचाने से आग सुलगती है। लोहे को आग में डालकर पहले लोहार उसे तपाता या धिकाता है फिर हथौड़े से पीटता है। जिस चीज पर लोहा रख कर पीटा जाता है वह भी लोहे का होता है उसे निहाव कहते हैं। जब अधिक जोर से पीटना पड़ता है तब एक भारी हथौड़ा प्रयोग में आता है जिसे घन कहते हैं। एक अन्य काम औजारों पर पानी चढ़ाना है। कुदार, फरसा, चाकू, छूरा आदि पर धार चढ़ाने के लिए उन पर पानी चढ़ाना पड़ता है। इस कार्य के लिए लोहे के औजार को आग में गरम करके पानी में बुझाते हैं। कभी-कभी मिट्टी में बुझाते हैं।

इस क्रिया को पानी में बुझाइब (बुझाना) या पानी चढ़ाइब (चढ़ाना) कहते हैं। इससे धार तेज होने के साथ-साथ मजबूत होती है। जब कुदार, खुरपा आदि औजार घिस कर छोटे हो जाते हैं तब इन्हें गरम कर के इन पर नया लोहा पीट कर जोड़ा जाता है। इस क्रिया को अछारब (अछारना) कहते हैं। औजार की धार पतली करने के लिए उसे रेती से रेतना पड़ता है। छूरा, चाकू आदि पतले औजारों को तेज करने के लिए मसालों की बनी हुई एक पहिया होती है। धार को इसी पर रख कर पहिया चलाते हैं जिसे साम धरब (धरना) या साम चढ़ाइब (चढ़ाना) कहते हैं। लोहा काटने के लिए छेनी या छीनी होती है। हथौड़ी से छेनी ठोंक कर लोहा काटते हैं। बारीक लोहे को काटने के लिए लोहे की आरी होती है। लोहे में सूराख करने के लिए जो औजार होता है उसे सुम्मी कहते हैं। लोहे को पकड़ने के लिए सँड़सी होती है; इस कार्य के लिए एक औजार और होता है जिसे चोसा कहते हैं। सूराख में काँटी ठोंकने को काँटी थरब (थरना) कहते हैं।

२६८. लोहार मुख्यतः खेती के औजार यथा, फरसा, खुरपा, खुरपी, हँसुआ, गँड़सा, फार आदि बनाता है। इनके अतिरिक्त कुछ लोहार कूँड़ भी बनाते हैं। गृहस्थी के सामानों में वह टँगारा, बसूला, टाँगी, टेकुरी, टेकुवा, सुज्जा (सूजा), कजरौटा आदि बनाता है। कजरौटा में स्त्रियाँ बच्चों के लिए काजल रखती हैं। वह धरकार के लिए बाँका तथा नाई के लिए नहरनी, कुम्हार के लिए लहसुर और चमार के लिए रपी, सुतारी, मोचना आदि बनाता है। लोहे के बने हुए सभी सामानों की वह मरम्मत करता है।

गुड़-शक्कर-चीनी का काम

२६९. गुड़, शक्कर और चीनी सभी वस्तुएँ ईख के रस से बनती हैं। वह यंत्र जिसके द्वारा रस पेरा जाता है कोल्हू कहलाता है।

कोल्हू :

ईख पेरने के लिए पहले पत्थर तथा लकड़ी के कोल्हू बनते थे जिन्हें क्रम से पथरिया तथा कठउवा या कठउववा कोल्हू कहते थे। परन्तु अब ये दोनों प्रकार के कोल्हू नहीं पाए जाते हैं केवल तेल पेरने के लिए अब भी लकड़ी के कोल्हू की प्रथा है। ईख पेरने के लिए अब मशीन के ढले कोल्हू मिलते हैं जिन्हें कल भी कहते हैं। कल के चल जाने से किसानों को बड़ी सुविधा हो गई है। पत्थर के कोल्हू में बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता था तथा उसमें बड़ी असुविधाएँ थीं। सब से बड़ी हानि यह थी कि उसमें रस कम पड़ता था। उसमें ईख को टुकड़े-टुकड़े करके डालना पड़ता था। यह कार्य गँड़सा से किया जाता

था। ईख के इन टुकड़ों को गेंड़ी तथा गेंड़ी काटने को गेंड़ी बालब (बालना) कहते थे। गेंड़ी के रखने के स्थान को गड़ेना या गड़ेन्ना कहते थे। इस प्रकार गेंड़ी बालने के लिए एक आदमी की और आवश्यकता होती थी। एक बार में पेरने के लिए जितनी गेंड़ी डाली जाती थी उतने को एक घान कहते थे। कोल्हू का जाठ इतना भारी होता था कि उसके निकालने और अंदर डालने में कई आदमियों को आवश्यकता पड़ती थी। इसी काम के लिए कई आदमियों को रात में जगना पड़ता था। आधी रात को इनकी पारी बदलती थी। पारी बदलने के समय को परेउ लगब (लगना) कहते थे जाठ निकालते समय उसके सहारे के लिए दो बाँसों का कैंचा बनाया जाता था जिसे लमेसा कहते थे। इस कोल्हू को चलाने के लिए बड़े-बड़े बैलों की आवश्यकता पड़ती थी। इसका रस स्वादिष्ट होता था। इन कोल्हुओं में केवल पुराने किस्म की देसी ईख पेरी जा सकती थी।

२७०. लोहे के कल ढले हुए होते हैं। कल में दो या तीन बेलन इस प्रकार होते हैं कि वे सब एक साथ चलते हैं—उनके इस प्रकार चलने से ईख दबती जाती है, रस गिरता जाता है और खोइया अपने आप अलग हो जाती है। इसमें केवल एक आदमी ईख लगाने के लिए और एक आदमी बैलों को हाँकने के लिए चाहिए। ईख का रस एक गड़े हुए नाद में गिरता है। खोइया के टुकड़े रस में न गिर जायँ इस उद्देश्य से जिस जगह ईख लगाई जाती है वहाँ एक छोटी सी लकड़ी लगा देते हैं जिसे मुँगरी कहते हैं। कल में तीन बेलन होते हैं जिन्हें मूड़ी कहते हैं। बेलन के बीच में एक गोला लोहा होता है जिसे मुसरा कहते हैं। बेलन के सिरे पर दाँत कटे होते हैं, इन्हें ककनी कहते हैं। जिस प्रकार घड़ी में बने चक्कर एक दूसरे की मदद से चलते हैं उसी प्रकार इसमें एक मूड़ी का दाँत दूसरे को अपने में फँसाए रहता है सब से छोटी मूड़ी को बेलना कहते हैं। इस बेलना के कसने पर सभी मूड़ियों की ककनी कसी हुई चलती है और इसको ढीली कर देने पर सब को ककनी ढीली चलती है। बेलना को इस प्रकार कसने और ढीला करने के लिए एक पेंच होता है जिसे बालटू कहते हैं बालटू में चूड़ी बनी होती है बालटू कसने के बाद उसे रोकने के लिए उस पर डेबरा चढ़ा दी जाती है। कल गाड़ने के लिए लकड़ी की एक पिढ़ई ऊपर और एक नीचे लगाते हैं। इन पिढ़इयों से मूँड़ी के मुसर का सम्बन्ध रहता है इन पिढ़इयों के चारों कोनों पर चार पावे लगे रहते हैं जो जमीन में गड़े रहते हैं। पिढ़ई और पावे का सम्बन्ध ठीक हो इस उद्देश्य से उस स्थान पर लोहे की काँटी ठोक देते हैं जिसे गाँक कहते हैं। कल चलाने के लिए उसकी बड़ी मूड़ी के मुसरे से एक लम्बी लकड़ी सम्बन्धित की जाती है, इस लकड़ी को हरिस कहते हैं। हरिस में मूड़ी का मुसरा जाने के लिए सुराख कर देते हैं। यह सुराख मुसरा की रगड़ से कट न जाय इसलिए सुराख के भीतर एक लोहा लगा देते हैं जिसे सामा कहते हैं।

हरिस का बैलों के जुए से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एक लकड़ी होती है जिसे काढ़ा कहते हैं। काढ़ा बाँस के फेंदा (जड़ सहित निचला भाग) का अच्छा होता है क्योंकि यह बहुत मजबूत होता है। काढ़े का एक किनारा लकड़ी की एक खूँटी द्वारा हरिस से संबन्धित कर दिया जाता है दूसरा किनारा जुए में बाँध दिया जाता है। इस प्रकार कल द्वारा ईख की पेराई होती है। बैल जिस रास्ते से चलते हैं उसे पौंदर कहते हैं। जिस स्थान पर कोल्हू गाड़ा जाता है उसे कोल्हाड़ या कोल्हुआर कहते हैं।

गु ल उ र :

२७१. गुड़ पकाने के लिए दो प्रकार के भट्ठे बनते हैं। एक छोटा, दूसरा बड़ा। छोटे भट्ठे पर केवल एक कड़ाह चढ़ता है और बड़े पर दो कड़ाह चढ़ते हैं। भेली बनाने के लिए एक तथा गुड़ या राब बनाने के लिए दो कड़ाह होने चाहिए। एक कड़ाह की अपेक्षा दो कड़ाह में रस अधिक पकता है। भट्ठे को गुलउर भी कहते हैं पर यह शब्द साधारणतः उसी भट्ठे के लिए प्रयुक्त होता है जिस पर दो कड़ाह चढ़ते हैं, गुड़ बनने के स्थान के लिए भी यह प्रयुक्त होता है। जब एक कड़ाह रहता है तब साधारणतः उसे भट्ठे पर ठींकते (जड़ते) नहीं बल्कि भट्ठे के ऊपर ही रखते हैं और शीरा तैयार होने पर कड़ाह को भट्ठे पर से उतार लेते हैं।

२७२. गुलउर पर लगने वाले दोनों कड़ाह दो ढंग के होते हैं। एक बड़ा और दूसरा छोटा होता है। बड़ा कड़ाह आगे की ओर रहता है और छोटा पीछे की ओर। बड़ा कड़ाह गहरा होता है इसलिए इसे कुड़उआ या कुड़उववा कहते हैं; छोटा कड़ाह छिछला होता है और इसे छिटउवा या छिटउववा कहते हैं। जो कड़ाह आगे रहता है उसी में गुड़ पकाया जाता है, पिछले कड़ाह में रस गरम होता है और जब वह पक जाता है तब गुड़ बनाने के लिए वह आगे वाले कड़ाह में ले आया जाता है। अगले कड़ाह में आँच अधिक लगती है और पिछले में कम; दोनों कड़ाह गुलउर में ठीके हुए रहते है। यदि कड़ाह बराबर से ठीके नहीं है तो आँच बराबर से नहीं लगती। जब कड़ाह में किसी स्थान पर आँच अधिक लगती है तब गुड़ के जलने का भय रहता है। इस प्रकार जलने को छवँका लगना कहते हैं। कड़ाह में रस डालने को रस बोझब (बोझना) कहते हैं। एक बार में कड़ाह में जितना रस बोझा जाता है उसे पाग कहते हैं। कड़ाह कुछ ऊँचाई पर रहता है। कड़ाह के अगल-बगल को ऊँची जमीन को पारही या पारी कहते हैं; शीरी देखने वाला यहीं बैठता है। गुलउर में झूँक झोंकने के लिए जो मुँह बना होता है उसे मुँहकड़ा कहते हैं; इसे झुकउवा या झोकवा या झुकवा भी कहते हैं। गुलउर के पीछे धुवाँ निकलने का जो मुँह होता है उसे पोछउवा, पोछवा या पिछवा कहते हैं। खर-पात झोंकने के लिए एक लकड़ी

होती है इसे झुकनी कहते हैं। आँच बढ़ाने के लिए आग को कभी-कभी खोदने की आवश्यकता पड़ती है; जिस लकड़ी से यह कार्य किया जाता है उसे खोदनी कहते हैं। आग झोंकनेवाले को झुकवइया कहते हैं।

२७३. गुलउर के पास दो वृत्ताकार स्थान एक मेली बनाने के लिए और दूसरा खोइया दहाने के लिए बने होते हैं जिन्हें क्रमशः चकरा और खोइहरा कहते हैं। छोटकी ईख की ही खोइया दहाई जाती है बड़की ईख की नहीं क्योंकि छोटकी ईख की खोइया नरम और बड़की ईख की खोइया कड़ी होती है। खोइया दहाने के लिए उसे खोइहरा में रख कर ऊपर से पानी डाल-डाल कर काँड़ते हैं जिससे खोइया का रस पानी में उतर आता है। इस रस को रसी कहते हैं। रसी चूने के लिए खोइहरा के पास हौदी गड़ी रहती है जिसे गड़िया कहते हैं। वस्तुतः यह कार्य उस समय अधिक होता था जब पथरिया कोल्हू चलते थे और छोटकी ईख पेरी जाती थी अब तो छोटकी ईख बहुत कम बोई जाती है। रसी को पका कर जो शीरा बनता है उसे चोटा कहते हैं। इसे बहुत गरीब लोग ही खाते-पीते हैं।

२७४. शीरा बनाने के लिए कड़ाह के अतिरिक्त जो बर्तन आवश्यक होते हैं उनमें हौदा मुख्य है। इसमें रस रक्खा जाता है। जिसमें कच्चा रस रक्खा रहता है उसे रसहा हौदा और जिसमें पक्का रस या शीरा रक्खा जाता है उसे गुरहा हौदा कहते हैं। गुर या राब बनाने के लिए जो हौदा होता है उसे भी गुरहा हौदा कहते हैं। एक दूसरा पात्र खपड़ा है। यह छोटा हौदा सदृश होता है किन्तु हौदी से इसकी बारी (किनारा) पतली होती है। हौदी की अपेक्षा यह हल्का और सुइलार (सुरियार) अर्थात् लम्बा होता है। इसके द्वारा कड़ाह से शीरा उदह कर हौदे में ले जाते हैं; शीरा ले जाते समय बहुत सावधानी होनी चाहिए अन्यथा जल जाने का डर रहता है। खपड़ा पकड़ने के लिए उसके दोनों बगल कपड़ा रखते हैं। दोनों हाथों से इसे कस कर पकड़ना पड़ता है। सइका भी मिट्टी का पात्र है; इसके द्वारा कोल्हू के पास से रस लाकर कड़ाह में डालते हैं। इसे पकड़ने के लिए इसमें मुठिया लगी रहती है। इसमें नम्बरी वजन से लगभग बारह सेर रस आता है। इससे छोटे बर्तन को सइकी कहते हैं जिसमें लगभग डेढ़-दो सेर रस आता है। इससे भी छोटा बर्तन जमुनी है जिसमें लगभग आध सेर रस आता है। इसे सुनुई या लब्जी भी कहते हैं। सइका और सइकी के मध्य के बर्तन को मझोला कहते हैं जिसमें लगभग छः सेर रस आता है। शीरा उदहने के लिए लकड़ी की एक बड़ी कलछी होती है जिसे तामी कहते हैं। रस को मैल छानने के लिए पौना (लोहे को एक बड़ी झन्नी) होता है।

कोल्हाड़ में झोंकने के लिए जो खर-पात संग्रह किया जाता है उसे सँगहा कहते हैं। सँगहा के लिए ईख की पत्ती बहुत काम देती है। ईख छीलते समय

जितनी टूटी-फटी पत्ती निकलती है सब सँगहा में काम दे जाती है। इसके अतिरिक्त खोइया को धूप में सुखा कर रख देते हैं और वह भी झूक के लिए बहुत काम देती है। सँगहा सम्बन्धी सारा काम गँवहियाँ चमार करता है। प्रत्येक गाँव में एक-दो चमार ऐसे होते हैं जो गाँव कमाते हैं अर्थात् गाँव का डाँगर ढोते हैं तथा गाँव के प्रत्येक घर की सौरी-बियौरी कमाते हैं। यह चमार गाँव की परजा है और गाँव के लोग इसके जजमान हैं। इसकी यह जजमानी पुश्तैनी है। कोल्हाड़ के लिए सँगहा जुहाने (एकत्र करने) का काम भी इसी का है। यह खेत से पत्ती ढो कर गुलउर पर पहुँचाता है। यही खोइया भी सुखाता और उसे एकत्र करता है। इसके बदले में उसे प्रति दिन पाँच ईख तथा कुछ रस दिया जाता है। इसके अतिरिक्त एक परई गुड़ (लगभग १ सेर) भी वह पाता है।

कोल्हाड़ चलाने में सहयोग :

२७५. बहुधा गाँव में कोई सम्पन्न किसान कोल्हू गाड़ता और गुलउर बनाता है; वह उससे अपना कार्य लेता है और उसे किराये पर भी चलाता है। कभी-कभी कुछ लोग मिलकर भी कोल्हू और कड़ाह खरीद लेते हैं और वे साझीदार हो जाते हैं। जितने साझीदार होते हैं सब मिलकर काम करते हैं। यह सहयोग ईख छीलने से ले कर गुड़ बनाने तक बराबर बना रहता है। साधारणतः एक कोल्हू में आठ साझीदार होते हैं। सब के लिए पारी बँध जाती है। एक साझीदार को पेरने के लिए कितने दिन दिए जाँय इसका निश्चय उसके दिए गए बैलों के अनुसार होता है। एक जोड़ी बैल वाले को एक दिन पेरने का समय दिया जाता है। आधा दिन उसके हिस्से में पड़ता है जो एक ही बैल दे सकता है। इस प्रकार उसकी दो पारी मिलकर एक पारी होती है। जब एक एक पारी सब की हो जाती है तब उसे एक भाँज कहते हैं। सहयोग को ग्रामीण जनता अँगवार कहती है। किसी के यहाँ इस उद्देश्य से काम करना कि वह भी अपने यहाँ आवश्यकता पड़ने पर काम करेगा अँगवार करब (करना) कहलाता है। किसी के किए हुए अँगवार के बदले अँगवार करने को अँगवार देब (देना) कहते हैं। जो लोग स्वयं अँगवार नहीं देते वे अपने एवज में अपना मजदूर कर देते हैं जिसे मेहनार कहते हैं। जब तक कोल्हाड़ का काम रहता है तब तक उसका मालिक उसे एक रुपया मासिक वेतन देता है और कोल्हाड़ पर उसे पीने के लिए रस मिलता है; जब उसके मालिक का गुड़ बनता है तब उसे एक परई गुड़ भी मिलता है। वर्षा में कभी-कभी कोल्हाड़ बंद हो जाता है; इसे कोल्हाड़ बइठब (बैठना) कहते हैं और ऐसे दिन को बैठक का दिन कहते हैं। बैठक के दिन यदि कोई साझीदार कोल्हाड़ चला कर अपना गुड़ बनाना चाहता है तब इसमें सब का सहयोग नहीं होता है, सारा काम बिना साझीदारों की मदद के करना पड़ता है। किन्तु इस कार्य के लिए भी सब की स्वीकृति लेनी पड़ती है। इस प्रकार बैठक से लाभ

उठाने को **औंझा मारब** (मारना) कहते हैं। यह दिन भाँज में सम्मिलित नहीं समझा जाता है।

२७६. ईख छोलने का कार्य प्रातः काल किया जाता है। सब साझीदार खेत पर जाते हैं और ईख काटने और छोलने का कार्य करते हैं। काटने वाले को **कटवैया** तथा छोलनेवाले को **छोलवैया** या **छुलवैया** कहते हैं। कटवैया अपनी मदद के लिए किसी से भी सहायता ले सकता है। ईख छोलने पर जो **गेंड़ा** निकलता है वह ईख छोलनेवाला अपने मवेशियों के लिए ले जाता है और ईख खेत के मालिक की होती है। कटवैया ईख का बोझ बनाकर उसे कोल्हाड़ पर पहुँचाता है। जिस रस्सी से ईख का बोझ बाँधा जाता है उसे **गतार** कहते हैं। ईख के निचले भाग में ईख की छोटी-छोटी जड़ें होती हैं जिन्हें **जेरुका** कहते हैं। छुलवैया इन्हें छाँटता है जिसे **खैंचड़ब** (खैंचड़ना) कहते हैं। छोलते समय ही वह अच्छी-अच्छी पत्तियों को सम करके रखता जाता है जिसे **समकियाइब** (समकियाना) कहते हैं। इन पत्तियों का फिर **आँटा** बाँध दिया जाता है। इन्हें **अँटऊ पतई** कहते हैं। समकियाने को **पतई बैठाइब** (बैठाना) भी कहते हैं। खेत में बिखरी हुई पत्ती को **ओहुआ** अथवा **छिटऊ** पतई कहते हैं। अँटऊ पतई छप्पर बनाने के लिए रख दी जाती है और छिटऊ गुलउर में झोंकने के काम में आती है।

२७७. कार्तिक शुक्ल एकादशी को जिसे **दिठवन** एकादशी (देवोत्थान एकादशी) भी कहते हैं ईख का **नवा** या **नवान** होता है। इसे **गाँठ फोरने** की साइत भी कहते हैं क्योंकि ईख **चुहने** (चूसने) का आरंभ इसी दिन से होता है। एक बार में जितना टुकड़ा चूसने के लिए दाँत से काटा जाता है उसे **गुल्ला** कहते हैं और चूसने के बाद जो नीरस चीज बाकी बचती है उसे **चेफ** कहते हैं।

ईख के नवान के बाद ईख का पेरना आरंभ होता है। पीने के लिए जो रस पेरा जाता है उसे **पेरुआ रस** कहते हैं। जिस रस में पानी की मिलावट नहीं रहती उसे **अबगा** रस कहते हैं। पानी मिले रस को **पनियउवा** कहते हैं। पेरुआ रस पेरने के लिए जिसका बैल पहले नँधता है उसी का अंत तक नँधा रहता है; लोग अपना-अपना रस पेर लेते हैं और खोइया उसकी होती है जिसके बैल होते हैं।

२७८. जब गुलउर चलाना होता है तब उसकी साइत पूछी जाती है इसे **मूक की साइत** कहते हैं। इस दिन भेली बनाई जाती है। इस भेली को **भडरौ की भेली** कहते हैं। इस दिन को **भडरौ का दिन** कहते हैं। इस दिन भेली सब को प्रसाद के रूप में बाँटी जाती है। पुरोहित तथा परजा लोग भी इस दिन भेली पाते हैं। भडरौ हो जाने पर सब अपनी-अपनी पारी के दिन **पेराई** करते हैं। अपनी-अपनी पारी के दिन लोग अपने-अपने पुरोहित के लिए पाँच ईख निकाल देते हैं जिसे **पँचौखा** कहते हैं।

भेली, गुड़ या राब बनाना :

२७६. भेली का शीरा सब से कड़ा होता है। कड़े शीरे को **खर शीरा** कहते हैं। राब का शीरा इससे हलका होता है। जब शीरा बहुत बहुत हलका हो जाता है तब उसे **रबनी** कहते हैं। वस्तुतः रबनी केवल गरीब लोग बनाते हैं। रबनी बरसात में खराब हो जाती है। भेली का शीरा बहुत साफ नहीं किया जाता लेकिन राब के लिए जो शीरा बनाया जाता है वह अधिक साफ किया जाता है क्योंकि राब से ही शक्कर बनाई जाती है।

२८०. कड़ाह में रस डालने के बाद उसमें आँच लगाते हैं। जब रस से बाफ निकलने लगती है तब उसे **बफियाब** (बफियाना) कहते हैं। इस समय सन-सन की ध्वनि निकलती है जिसे **सनकब** या **सनसनाब** (सनसनाना) कहते हैं। जब रस भली-भाँति गरम हो जाता है तब रस की मैल रस के ऊपर आ जाती है जिसे **महिया** कहते हैं। महिया अलग करने को **महिया काटब** (काटना) या **महिया मारब** (मारना) कहते हैं; इस क्रिया को **मैल कमाब** या **रस कमाब** (कमाना) भी कहते हैं।

२८१. रस कमाने का कार्य **पौना** से किया जाता है। महिया काटते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बहुत तेज आँच न हो। तेज आँच होने से मैल रस के ऊपर एकत्र न होकर फैल जाती है जिसे **मैल फूटब** (फूटना) कहते हैं। मैल फूटने पर उसे पौना से उठाने में कठिनाई होती है।

२८२. मैल काटने के लिए भिंडी का पंचांग या एक जंगली पौधा **दुल्ला**, जो भिंडी के ही ढंग का होता है, डाला जाता है। दुल्ला डालने से मैल कट जाती है और शीरा जल्द साफ हो जाता है: पर अधिक दुल्ला पड़ने से रस में कुछ खट्टापन आ जाता है और उसका गुड़ प्रभाव में कुछ गरम होता है।

२८३. अगले कड़ाह का रस पिछले की अपेक्षा शीघ्र गरम होता है। अगले कड़ाह का रस जब कुछ पक जाता है तब उसमें से कुछ हिस्सा पिछले कड़ाह के रस में डालते हैं। इस गरम रस को **कोहरा** कहते हैं और इसे आगे के कड़ाह से पीछे के कड़ाह में डालने को **कोहरा करब** (करना) कहते हैं; इसे **रस फेरब** (फेरना) भी कहते हैं।

२८४. कोहरा करने के उपरांत अगले कड़ाह का रस तेजी से खौलने लगता है और तर-ऊपर होने लगता है जिसे **मड़ियाब** (मड़ियाना) कहते हैं। रस के कुछ गाढ़ हो जाने पर उसमें **बुल्ला** (बुलबुला) उठने लगता है। बुल्ला उठने को **फूला उठब** (उठना) या **फूला लेब** (लेना) भी कहते हैं। बुलबुले का आकार मजीरा (एक बाजा) की तरह होने के कारण शीरे की इस अवस्था को **मजीरा लेब** (लेना) भी कहते हैं। इस समय रस में काफी तेज चाल हो जाती है जिसे

चाल आइब (आना) कहते हैं। ऐसे समय पिछले कड़ाह से थोड़ा-थोड़ा रस आगे के कड़ाह में डालते जाते हैं। इस प्रकार पिछले कड़ाह का रस अगले में ले आया जाता है। इस क्रिया को चालब (चालना) कहते हैं। चालने के फलस्वरूप सारे रस का शीरा शीघ्र बन जाता है। पिछले कड़ाह के खाली हो जाने पर उसे ठंडा करने के लिए उसमें पानी डालते हैं जिसे कड़ाह जुड़वाइब (जुड़वाना) कहते हैं। शीरा बनते समय जब बद्-बद् की आवाज होती है तब शीरे के गाढ़े होने की सूचना मिलती है। शीरा गाढ़ा होने पर जब उसमें तार बँधने लगता है तब बहुत सावधानी से आँच दी जाती है। अधिक आँच होने से कड़ाह में शीरा लग (जल कर छपट) सकता है अथवा शीरा खर हो सकता है। तार आने को सूत आइब (आना) या सूत उड़ब (उड़ना) भी कहते हैं।

२८५. मेली के योग्य शीरा होने पर उसको उतार लेते हैं। मेली का शीरा इस योग्य होना चाहिए कि उसकी मेली बन सके। मेली बनाने के लिए शीरा को चकरा में डालते हैं। चकरा में शीरा उड़ेलने (गिराने) के बाद उसे ईख के अँगोर या अँगोरी से चला-चला कर ठंडा करते हैं। जब शीरा मेली के योग्य हो जाता है तब उसे चकरा के बीच में एकत्र कर देते हैं। फिर दोनों हथेलियों की की सहायता से मेली बनाते हैं। छोटी मेलियाँ मुट्ठी से बनाई जाती हैं जिन्हें मुठिया या पिड़िया कहते हैं।

२८६ गुड़ या राब के योग्य शीरा हो जाने पर उसे कड़ाह में तामी से उठा-उठा कर ओसाते (गिराते) हैं जिसे झोरब (झोरना) कहते हैं। ओसाने के बाद शीरे को तामी द्वारा खपड़े में उदह कर हौदे में डालते हैं। फिर हौदे के शीरे को एक रेंड़ के डंडे से मारते हैं, इस क्रिया को गुड़ मारब (मारना) या गुड़ डोलाइब (डोलाना) कहते हैं। राब जितनी ही मारी जाती है उतनी ही अच्छी बनती है क्योंकि मारने से ही उसमें दाने पड़ते हैं। राब जब भली-भाँति नहीं मारी जाती तब न तो वह ठीक से जमती है और न उसमें दाने ही पड़ते हैं। कहावत है, अपने मरवइया बिना राब भइ रबड़ी अर्थात् मारनेवाले के न होने से राब पतली रह गई। गुड़ शब्द राब के पर्याय रूप में प्रयुक्त होता है।

२८७. गुड़ या राब को घर में ले जाकर रखने को गुड़ करब (करना) कहते हैं। गुड़ मिट्टी के बर्तनों में रक्खा जाता है। गुड़ रखने पर जम जाता है, जम जाने पर जो पतला भाग ऊपर रहता है उसे फाट कहते हैं।

२८८. कड़ाह धोने पर जो गरम-गरम धोवन निकलता है उसे धोनारी कहते हैं। इसे मजदूरों को पीने के लिए देते हैं या गरीब किसान अपने काम में लाते हैं। रस पकते-पकते जब गाढ़ा हो जाता है तब उसे स्वाद के लिए गरम-गरम पीते हैं; इसे औटी कहते हैं।

२८९. छोटकी ईख की एकत्र महिया को छींटा (सरकंडा की छोटी चटाई)

से एक सूराखदार हौदे में छानते हैं। इस हौदे की सूराख ठेंठी से बंद की जाती है इसीलिए इसे ठेंठीदार हौदा कहते हैं। महिया का रस सूराख से छन कर दूसरे हौदे में गिरता है। इस छने हुए रस को मइछना (महिछना) कहते हैं। यह पशुओं को दिया जाता है। बड़की ईख का मइछना नहीं तैयार किया जाता है। संपन्न किसान मइछना नहीं बनाते हैं।

शक्कर बनाना :

२६०. शक्कर बनाने के लिए गुड़ को लोथा में बाँधते हैं। लोथा अच्छे गजी का बनता है जिसे लोथहिया कपड़ा कहते हैं। जुलाहे इसे लोथा के लिए ही बनाते हैं। यह बहुत गाढ़ा कपड़ा है। इसकी चौड़ाई चौदह गिरह होती है। दो गज लंबे टुकड़े से एक लोथा बनता है। लोथा बनाने के लिए इस कपड़े को लंबाई की ओर से दोहरा सीते हैं। उसके बाद एक ओर के दोनों सिरों को एक में मिला कर सीते हैं। ऐसा करने पर यह बस्ते के आकार का हो जाता है। इस समय कपड़े में तीन कोने रहते हैं। इन कोनों में छोटी-छोटी रस्सियाँ बाँध देते हैं। लोथे में राब भरने के बाद इन रस्सियों को आपस में बाँध देते हैं और लोथे के तीन ओर खुले हुए किनारों को मुर्रियाते (ऐंठते) हैं। मुर्री लगाने से लोथा कस जाता है। लोथे को और कसने के लिए उसके कोनों को गुड़ सहित रस्सियों से बाँध देते हैं। इस प्रकार बाँधने से तीनों कोने मिट्टी के ढेले के आकार के दिखाई पड़ते हैं। इस बँधाई को गलिया बाँधब (बाँधना) कहते हैं। चूँकि बंधन के स्थान का घेरा गलिया के आकार का होता है इसीलिए इस बँधाई को गलिया कहते हैं। अँगूठा और तर्जनी के मध्य में जितना स्थान घेर उठता है गलिया कहलाता है।

२६१. लोथा बँध जाने के बाद, शीरा चुआने के लिए, उसे एक के ऊपर एक करके रखते हैं। शीरे के लिए जमीन में तगाड़ गड़ा रहता है। तगाड़ हौदा सदृश मिट्टी का छिछला बर्तन है। तगाड़ पर छींटा रक्खा जाता है और इस छींटे पर लोथे रक्खे जाते हैं। लोथे का शीरा छींटे से होता हुआ तगाड़ में चूता है। लोथों को दबाने के लिए उनके ऊपर मिट्टी का भीरा रक्खा जाता है। कहीं-कहीं पर तगाड़ नहीं गाड़ते फर्श पक्की बना कर उसमें नाली बना देते हैं। इन नालियों पर गोनरा (पुआल की चटाई) बिछा कर तब लोथे रक्खे जाते हैं। जो शीरा इन लोथों से चूता है उसे बन्हुई कहते हैं।

२६२. लगभग चार-पाँच दिन में बन्हुई चू जाती है। तदुपरान्त लोथे को खोल कर बँधी शक्कर एक कपड़े पर फैला देते हैं। इस शक्कर को उलदा शक्कर कहते हैं। इस शक्कर को फिर गरम पानी से सानते हैं; इसे पीठी सानब (सानना) कहते हैं और इस सानी हुई शक्कर को पीठी सानी शक्कर कहते हैं।

२६३. शक्कर की और सफाई के लिए लोथे को पुनः भरकर उसी प्रकार रखते

हैं। लोथा रखने के बाद उसके ऊपर चढ़ कर उसे काँड़ते हैं; इस क्रिया को **लोथा काँड़ब** काँड़ना) कहते हैं। ऐसा करने से बन्हुई चूने में सुविधा होती है। बन्हुई निथर जाने पर लोथे पर बुज्जा (बुजबुजा) छूटने लगता है जिसे **गजाब** या **गाज आइब** (आना) कहते हैं। बुज्जे का रंग लाही सदृश होता है इसलिए इसे **लाही** कहते हैं। इस लाही को गरम पानी से धोते हैं। इस क्रिया को **लोथा धोइब** (धोना) कहते हैं। यह क्रिया शक्कर की सफाई के लिए अत्यंत आवश्यक है। लोथा धोने से लोथे के छिद्र खुल जाते हैं। लोथे के धोने का कार्य यदि ठीक समय पर न हो तो शक्कर के **लौट, फिर** या **घूम जाने** का भय रहता है। घूमी हुई शक्कर का रंग अच्छा नहीं आता है।

२६४. लोथे के शक्कर को फिर एक कपड़े पर फैला कर उसे पैरों से रगड़ते हैं। इस क्रिया को **पाटा मारब** (मारना) या **पाटा डालब** (डालना) कहते हैं। पाटा डालने से शक्कर में सफाई और चमक आ जाती है और दाना **खसर-खसर** करने लगता है। बढ़िया चमकदार शक्कर को **बगबगा** अर्थात् बगबग चमकने वाली शक्कर कहते हैं।

कच्ची चीनी बनाना :

२६५. जब कच्ची चीनी बनानी होती है तब शीरे को हौदों में रखते हैं। इस प्रकार रखने को **गढ़ करब** (करना) कहते हैं। गढ़ करने से शीरा ठंडा होता है। गढ़ करके शीरे को तामी से ओसाते हैं। ऐसा करने से शीरे की लस्सी टूटती है। जब गढ़ ठंडा हो जाता है तब उसे दूसरे हौदों में बदलते हैं; इसे **पियाइब** (पियाना) कहते हैं। हौदे में गढ़ पिया देने पर वह लगभग दो सप्ताह में जमता है और उसमें दाने पड़ते हैं। जब **माल** (सामान) बढ़िया जमता है तब वह ककरी की तरह **चेहरा** (फट) जाता है। अब इस जमे हुए गढ़ को काट-काट कर ठेंठीदार हौदे में रखते हैं। इस क्रिया को **गढ़ काटब** या **नाद काटब** (काटना) कहते हैं। हौदों में गढ़ रखने के पहले उसकी पेंदी में सरकंडे के टुकड़े बिछाकर उस पर सरपत की चटाई **चँटते** (बिछाते) हैं। ऐसा करने से शीरा धीरे-धीरे चूता है। इन हौदों से जो शीरा एकत्र होता है उसे **चोटा** कहते हैं।

२६६. जिन्हें बड़े पैमाने पर व्यापार की दृष्टि से काम करना होता है वे हौदों की जगह पर पक्की ईंट के **खाते** बनवाते हैं। एक खाता लगभग दो गज लंबा, एक गज चौड़ा और एक गज ऊँचा होता है। खाते की फर्श में लंबी-लंबी नालियाँ बनी रहती हैं। इन नालियों से चोटा बह कर एक जगह एकत्र होता है। जिस प्रकार हौदों में सरकंडे के ऊपर चटाई बिछाई जाती है उसी प्रकार यहाँ पर बाँस के फलठे बिछा कर उस पर सरपत, पुआल या कुश की चटाई फैलाते हैं; इन चटाइयों को **चँटगा** कहते हैं और इन्हें फैलाने को **चँटगा चँटब** (चँटना) कहते हैं। इसके बाद इनके ऊपर गढ़ गिराते हैं।

२९७. चोटा जब चू जाता है तब गद कुछ साफ हो जाता है। इसकी और सफाई के लिए उस पर गरम पानी का छिड़काव करते हैं जिसे रुक्खा देब (देना) कहते हैं। इससे ऊपरी सतह नरम पड़ जाती है और चोटा के चूने में सहायता मिलती है। नाँद यदि कड़ी अर्थात् सूखी कटी हो तब तो रुक्खा देना ठीक होता है। अन्यथा नरम (भली-भाँति न जमी हुई) नाँद में पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती।

२९८. रुक्खा देने के कुछ घंटों बाद जब ऊपरी सतह मुलायम पड़ जाती है तब उसे गोड़ा जाता है; इस क्रिया के लिए लोहे का सुतुहा, जो सुतुही सदृश पर उससे बड़ा होता है, बना रहता है। इसी से खाते को गोड़ते हैं। इस गोड़ने की क्रिया को खतिआइब (खतिआना) कहते हैं। इसके उपरांत खाते को सेवार (नदी की एक घास) से ढक देते हैं। साधारणतः तीन दिन के बाद सेवार हटा लेते हैं। सेवार रखने से गद की चीनी में सफेदी आ जाती है यह सफेद चीज पछनी या परछनी कहलाती है। गद में जितनी गहराई तक सफेदी आ जाती है उतने भाग की पछनी को सुतुहा से अलग कर लेते हैं। पहली पछनी सब से साफ होती है। इसे पहला फूल कहते हैं। पछनी हटाने के बाद खाते को खतिया कर पुनः नई सेवार से ढक देते हैं। फिर तीसरे दिन सेवार हटा कर दूसरी पछनी खुरच लेते हैं। उसके उपरांत उसे पुनः सेवार से ढक देते हैं। यह क्रिया तब तक होती रहती है जब तक सारा गद पछनी के रूप में नहीं हो जाता है। अंतिम पछनी को तरायल कहते हैं; यह सब से खराब होती है। पहली पछनी सब से अच्छी और उसके बाद की क्रमशः घटिया या नरम होती जाती है। इसके बाद एकत्र पछनी को पाटा डाल कर पैरों से रगड़ते हैं। इस क्रिया को पाटा कसब (कसना) कहते हैं। यह क्रिया कुछ देर धूप में की जाती है। पाटा कसने से चीनी में सफेदी और चमक आ जाती है। इतना करने के उपरांत कच्ची चीनी तैयार हो जाती है।

पक्की चीनी बनाना :

२९९. पक्की चीनी बनाने के लिए भेली गलाई जाती है। इस क्रिया को भेली भूनब (भूनना) भी कहते हैं। राब या गुड़ भी गला कर चीनी बनाते हैं। भेली और गुड़ को इस प्रकार दुबारा कड़ाह में गलाना पड़ता है। इसीलिए इससे बनाई हुई चीनी को पक्की चीनी कहते हैं। भेली बनाते समय एक बार शीरे की सफाई की गई थी पर अब पुनः अब सफाई करनी पड़ती है। इस बार भी दुल्ले से सफाई की जाती है लेकिन इतने से पूरा काम नहीं होता है। इसके लिए दूध और पानी मिलाकर दुधवानी बनाई जाती है क्योंकि इस से शीरा बहुत अच्छा साफ होता है। दुधवानी को शीरा में छोड़ने को दूटा मारब (मारना) कहते हैं। अब जो मैल निकलती है उसे कचरी कहते हैं।

३००. शीरे में उफान आने पर उसको शांत करने के लिए ठंडा पानी डालना पड़ता है। उफान शांत होने से मैल ऊपर आ जाती है। इस प्रकार पानी देने से

भी मैल कटने में सहायता मिलती है। पानी डालने को जूड़ देब (देना) कहते हैं। चीनी के लिए यह आवश्यक है कि उसमें लसी न हो क्योंकि शीरा जितना ही आरर होगा उतना ही उसमें दाना पड़ेगा। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए शीरे में रेड़ी की गुद्दी (गूदी) पीसकर डालते हैं इसे दावन; कहते हैं।

३०१. शीरा भली भाँति तैयार होने पर इसका गद्द करते हैं। जिस प्रकार कच्ची चीनी तैयार करने के लिए गद्द बनाना पड़ा था ठीक उसी प्रकार सारी प्रक्रियाएँ इस पक्की चीनी के लिए भी करनी पड़ती है। इस बार जब पछनी तैयार होती है तब उसकी पुनः सफाई की जाती है। पछनी को पूर्ववत् ठेंठीदार हौदे में रखते हैं। इस बार जो शीरा चूता है उसे ठोपारी कहते हैं। यह चोटे से कहीं अधिक साफ और अच्छी होती है; क्योंकि इतनी सफाई होने के बाद इसमें चोटे का अंश नाम मात्र रह जाता है। ठोपारी चू जाने पर पछनी बहुत साफ हो जाती है। जो लोग और बढ़िया चीनी बनाना चाहते हैं वे ठोपारी चूने के बाद गद्द को पुनः ठेंठीदार हौदे में रखते हैं। अब की बार जो शीरा चूता है उसे चुअन कहते हैं। यह बहुत अल्प मात्रा में निकलता है और इसका स्वाद बहुत मीठा होता है।

३०२. ठोपारी चूने के बाद ही साधारणतः चीनी को पूर्ववत् पाटा डालकर कसते हैं। कसने से चीनी बहुत सफेद और चमकदार हो जाती है। इस समय चीनी को झन्ने से चालते हैं। चालने से जो टुकड़े बड़े रहते हैं वे अलग हो जाते हैं। इन टुकड़ों को ठोरी या ठुर्री कहते हैं। ठुर्री अलग हो जाने के बाद पुनः चीनी के सब रवे बराबर हो जाते हैं। इस प्रकार चीनी बड़ी सुंदर हो जाती है। निकली हुई ठुर्री को पीस कर फिर चीनी में मिला देते हैं।

३०३. चीनी से जो चोटा चूता है उसे कड़ाह में डालकर कुछ लोग पुनः चीनी बनाते हैं। इस प्रकार बनी हुई चीनी दोमा चीनी कहलाती है और इस चीनी से चुए हुए चोटे को दोमा चोटा कहते हैं।

३०४. दोमा चीनी से चुए हुए चोटे से भी कुछ लोग चीनी बनाते हैं। इस चीनी को सोमा चीनी कहते हैं और इससे चुए हुए चोटे को सोमा चोटा कहते हैं। किन्तु यह चीनी निकृष्ट होती है और इसे बहुत कम लोग पसंद करते हैं।

कपड़े का काम

सूत पक्का करना :

३०५. कपड़ा बुनने का काम जुलाहा करता है। वह बाजार से मिल का सूत खरीद कर ले आता है और अपने घर में उसे बुनता है। इस कार्य में उसका सारा परिवार बच्चे से लेकर बूढ़े तक लगा रहता है। साधारणतः जुलाहे गजी

(एक कपड़ा) बनाते हैं जिसमें सूत नं० ५, ८, १०½, ११½, १२½, १६½, १८½, २०½, तथा २२½ लगते हैं। सूत के बंडल में सूत के मोटे-मोटे पोले होते हैं और हर एक पोले में छीरे होते हैं। छीरे की सिकुड़न को मिटाने के लिए उसके बीच में दोनों हाथ डाल कर उसे कई बार झटकते हैं। फिर उसे दोनों घुटनों में अँटकाते हैं। इसके बाद तीन छीरा एक हाथ में और दो दूसरे हाथ में माला की तरह लेते हैं जिसे लरियाइब (लरियाना) कहते हैं। फिर इन्हें एक दूसरे के साथ गाँछ देते हैं तदनन्तर अथरा (मिट्टी का तसला) में पानी डाल कर उन्हें भिगो देते हैं। पानी में सूत भिगोने को सूत पक्का करब (करना) कहते हैं। २४ घंटे सूत भिगा रहने से वह पक्का समझा जाता है।

ताना—पाई करना :

३०६. ताना के लिए छीरे को फटक-फटक कर एक चरखी पर चढ़ा कर के नारा (लकड़ी की नली) भरते हैं। एक नारा के लिए एक छीरे का सूत पर्याप्त होता है। सूत अरुझे नहीं इस दृष्टि से प्रत्येक छीरे में रंगीन सूत बँधा रहता है जिसे बनिका बोलते हैं। चरखी पर सूत चढ़ाने के बाद बनिका खोल कर अलग कर लेते हैं। छीरे का एक टोंक (किनारा) लेकर नारा भरना आरंभ करते हैं। सूत टूटने पर उसमें मुर्री (एक प्रकार का बट) लगाते हैं जिसे मुर्रियाइब (मुर्रियाना) कहते हैं। नारा पर सूत बराबर से भरना चाहिए; यदि नारा बराबर से नहीं भरा जायगा तो उसमें से सूत आसानी से नहीं निकलेगा। बराबर से न भरे हुए नारे को ढगढोलन कहते हैं। नारा भर जाने पर उसे पानी में भिगो देते हैं।

३०७. ताना करने का साधारण ढङ्ग यह है कि दो नारों को दो लोहे के सरागों में पिरो कर सरागों को दो सरकंडों में खोंस देते हैं। इस प्रकार सरकंडे में लगा हुआ नारा सूत खुलने के साथ-साथ घूमता जाता है। सरागे की नोंक पर एक घुंडी होती है ताकि नारा बाहर न निकल जाय। जितने सै (राछ का सौ खाना) का ताना करना होता है उसके हिसाब से ताना करते हैं; राछ के सूराखों से ही सूत निकलता है। ताने का एक छोर एक खूँटे में रहता है दूसरा दूसरे में। ये दोनों खूँटे एक ही ओर रहते हैं; एक तीसरे खूँटे में ताने का मध्य भाग रहता है। ताना करते समय एक खूँटे से दूसरे खूँटे तक दौड़ लगाना पड़ता है। जब ताना पूरा हो जाता है तब जहाँ-जहाँ साँथी (अँ०क्रॉस) रहती है वहाँ-वहाँ सरई पहना दी जाती है जिसे सर पहनाइब (पहनाना) कहते हैं। साँथी के दोनों ओर एक-एक सर डालकर दोनों सरों के किनारों को आपस में सूत से बाँध देते हैं ताकि वे गिरें न।

ताना उठाने के लिए दो आदमी चाहिए। दोनों आदमी दोनों खूँटे से ताना निकालकर दोनों ओर दो लंबी, गोली और चिकनी लकड़ी लगाते हैं ताकि सूत मिल न जाय। इसे सिरारा कहते हैं। सिरारा लपेटते समय सरई रख कर लपेटते

हैं। सरई लगाने से लपेटने में कसाव रहता है। इस प्रकार दोनों ओर से ताना लपेटने पर जो लुंडी तैयार होती है उसे एक मचिया पर रख देते हैं।

३०८. पाई के लिए ताना में माड़ी लगाई जाती है। गेहूँ की रोटी को पानी में भिगो देते हैं। रात भर में रोटी गल कर माड़ी के रूप में हो जाती है। उसे छान कर अथरा (एक मिट्टी का बरतन) में रखते हैं। इसी माड़ी में तानी भिगोते हैं। उस लपेटी हुई तानी को बिथरी कहते हैं और उसमें माड़ी लगाने को लेवरब (लेवरना) कहते हैं। बिथरी को अथरी पर रख कर लपेटते हैं फिर चिगुरे हुए तागों को सीधा करने के लिए ताना को एक ओर से खींचते हैं। प्रत्येक सर पर झटका देने से सूत सीधे हो जाते हैं।

३०९. ताना फैलाने के लिए सहारे की आवश्यकता होती है अतः बाँस का कैंचा बनाकर उस पर बाँस का टुकड़ा रख कर उसी पर ताना फैलाते हैं। बाँसों को माझा कहते हैं। ताना के दोनों किनारे पर जो कैंचा होता है उसे खोभनी कहते हैं। यह रस्सी द्वारा खूँटे में बँधी रहती है। ताना फैलाने के बाद दो-तीन आदमी तागे को छिटकाते हैं। साधारणतः इस कार्य को स्त्रियाँ करती हैं; पुरुष तानी को कूँचा द्वारा माँजता है। कूँचा खस का बना होता है। कूँचे को दोनों हाथों से पकड़ कर ताना माँजा जाता है। माँजने की क्रिया एक ही दिन में होती है। माँजने से माड़ी सूख जाती है। इस सारी क्रिया को पाई करब (करना) कहते हैं। पाई तैयार होने पर सर की जगह पर बनिका (सूत) बाँध देते हैं। इससे उनकी साँथी बनी रहती है और लुंडी बनाने में भी सुविधा होती है। फिर पाई को बाध की भाँति लुड़ियाते (लपेटते) हैं। जिधर से पाई का माँजना आरम्भ करते हैं; उधर से ही उसे लपेटना शुरू करते हैं; जब सारी पाई लपेट उठती है तब दूसरी ओर का सिरा निकाल कर सूत को ऐंठ देते हैं; इसे अँगूठी करब (करना) कहते हैं। इस मुरेरे भाग को फिर लुंडी में घुरेस देते हैं।

बय भरना और भाँज करना :

३१०. पाई तैयार होने पर पनिक द्वारा बय में सूत पहनाया जाता है। मुरेरे हुए भाग के एक-एक सूत को तोड़ कर फिर उसका एक सिरा एक बय में दूसरा दूसरे बय में पहनाते हैं; इस प्रकार सारा सूत बय में पहना दिया जाता है। सूत के ये दोनों भाग फिर राछ के एक नक्खे (सूराख) में से निकाले जाते हैं। सारा सूत पहन जाने पर थोड़े-थोड़े सूतों को एक समूह में गठिया (बाँध) देते हैं। फिर इन के अन्दर से एक सरई पहनाते हैं। इस सरई को लपेटन में पतली रस्सियों से बाँध देते हैं। इन रस्सियों को जोत कहते हैं। प्रत्येक बार बय भरने की झंझट न करनी पड़े इसलिए कपड़े का थान उतारते समय भरी हुई बय को नहीं काटते, उतना भाग छोड़ देते हैं। इस छोड़े हुए भाग को

गेठुआ कहते हैं। इसी गेठुआ में हर बार पाई का सूत मुर्री द्वारा जोड़ देते हैं। इस प्रकार गेठुआ हमेशा करगह में पड़ा रहता है।

३११. अब बुनाई के लिए भाँज तैयार करते हैं। पाई का कुछ भाग फैला कर बनिका की जगह सरई पहनाते हैं। एक ओर से सरई पहना कर दूसरी ओर से डोरा (सूत) बाँधते हैं। इससे बुनाई के समय जो सूत टूटता है उसका पता चल जाता है। जितनी लंबी भाँज रखनी होती है उतनी दूर पर एक लकड़ी लगाते हैं जिसे भँजनी कहते हैं। भँजनी रख कर भाँज को उलटते हैं इस प्रकार भँजनी बीच में पड़ जाती है, इसे अब चपनी कहते हैं। फिर इस के ऊपर एक चपटी लकड़ी रखते हैं। चपनी में दो रस्सियाँ बँधी रहती हैं जिन्हें जोत कहते हैं। भाँज को बाँधने के लिए एक लम्बी रस्सी होती है जिसके एक सिरे पर दो रस्सियाँ होती हैं। इन्हीं दोनों रस्सियों में चपनी का जोता बाँधा जाता है। रस्सी का दूसरा सिरा जुलाहे के पास उसकी बाईं ओर एक खूँटे से बाँध दिया जाता है। भाँज से कुछ दूरी पर एक खूँटा गाड़ा रहता है जिसे महतवा कहते हैं; इस खूँटे से भाँजवाली रस्सी मुड़ती हुई जुलाहे के खूँटे में आती है। इस प्रकार रस्सी से भाँज तना रहता है और जुलाहा आवश्यकतानुसार इसी रस्सी द्वारा भाँज को कड़ा और ढीला करता है। शेष भाँज लँड़िया कर के अलग टाँग देते हैं और आवश्यकता पड़ने पर फैलाते हैं। भाँज के नीचे बय के पास करगह के समानान्तर एक लकड़ी रहती है जिसे खरकौट कहते हैं; इससे पाई कुछ उठी रहती है और बुनाई में सुविधा होती है। बुनाई के समय थान की चौड़ाई बराबर रहे इसके लिए दो लकड़ियों के किनारे नोंकीला लोहा लगाकर उसे कपड़े के दोनों किनारों में धँसाते हैं। इन लकड़ियों का दूसरा किनारा इस प्रकार बँधा रहता है कि दोनों ओर तनाव रहता है।

बुनाई के समय सूत भिगो लिया जाता है ताकि सूत टूटे नहीं। ऐसा करने के लिए एक कपड़ा भिगोकर रखते हैं जिसे पोतारी कहते हैं।

करगह और कपड़ा बुनना :

३१२. करगह का मुख्य भाग राछ है जिसके द्वारा ठोंक-ठोंक कर कपड़ा बुना जाता है। राछ के ठोंक से कपड़े की बुनाई घनी होती है। राछ करगह में लगी रहती है। बायें हाथ से करगह चलाते हैं। जहाँ पर करगह पकड़ा जाता है वहीं राछ के सामने ढरकी, सटल या ढोटा के दौड़ने के लिए सड़क बनी रहती है। उसी पर से ढरकी घूमती है। ढरकी को चलाने के लिए झटका देना पड़ता है। इस झटके के लिए हत्थे के दोनों ओर बक्स बने रहते हैं। ढरकी इसी के अन्दर चली जाती है। ढरकी को पुनः बाहर फेंकने के लिए बक्सों के अन्दर लकड़ी का एक औजार होता है जिसे पीकर कहते हैं। झटका देने के लिए एक रस्सी होती है जिसका संबंध दोनों पीकरों से होता है। रस्सी में एक लकड़ी की मुठिया बँधी रहती है। इस मुठिया को दाहिने हाथ से पकड़ते हैं। जब मुठिया को बाईं ओर

झटकते हैं तब दाहिनी ओर के पीकर में और जब दाहिनी ओर खींचते हैं तब बाईं ओर के पीकर में धक्का लगता है, पीकर में धक्का लगने पर वह ढरकी को धक्का देता है और ढरकी दौड़ती है। ढरकी में नरा भर कर रखते हैं जिससे सूत निकलता है। हत्थे के दोनों बगल में जो लकड़ी होती है और जिसके सहारे वह लटकता है वह पंखा कहलाता है। पंखे के ऊपरी भाग में बेंड़े-बेंड़ लकड़ी लगी रहती है जिसके सहारे वह लटकता रहता है। करगह चलाने के लिए जो समकोण लकड़ी दोनों ओर गड़ी रहती है उसे खूँटा कहते हैं। बय लटकाने के लिए ऊपर एक गोला रूल होता है जिससे बय आसानी से नीचे ऊपर होती है। बय जिस लकड़ी में पहनाई जाती है उसे बयसर कहते हैं। बयसर के नीचे एक लकड़ी होती है जिसे पवसार या पावसार कहते हैं। दोनों बयों को नीचे ऊपर करने के लिए गड्ढे में दो पावदान या पावड़ियाँ होती हैं जो दोनों पैरों से बारी-बारी दबाई-उठाई जाती हैं। एक पावड़ी दबाने से एक बय नीचे आती और दूसरी ऊपर जाती है; इसी प्रकार दूसरी पावड़ी से दूसरी बय नीचे आती और पहली बय ऊपर जाती है। बय के नीचे ऊपर आने पर हर बार ढरकी फेंकी जाती है। इस पूरी क्रिया से कपड़े की बुनावट होती जाती है।

२१३. थान लपेटने के लिए एक लकड़ी चौपहल होती है जिसे लपेटन कहते हैं। इसे घुमाने के लिए इसमें दाहिनी ओर सूराख बने होते हैं। जब लपेटन घुमाना होता है तब इसी सूराख में एक लकड़ी डालकर उसे घुमाते हैं। इस लकड़ी को गिरदानक कहते हैं।

ऊन का काम

भेड़ मूड़ना :

२१४. ऊन का उद्योग करनेवाली जाति गड़ेरिया है। गड़ेरिया भेड़ पालता है और उससे ऊन पैदा करता है। वर्ष भर में दो बार गड़ेरिया भेड़ों के बाल (ऊन) काटता है—एक चैत में दूसरा कुआर में। चैत का बाल उत्तम होता है। कुछ लोग वर्ष भर में तीन बार बाल काटते हैं—फागुन, असाढ़ और कातिक में। एक बार में एक भेड़ से लगभग पाव भर ऊन निकलता है। बच्चों के बाल मुलायम और गरम होते हैं। भेड़ के बाल काटने को भेड़ मूड़ब (मूड़ना) कहते हैं।

२१५. बाल काटने से पहले भेड़ को खूब धो-धो कर नहलाते हैं ताकि मैल साफ हो जाय। नहलाने के बाद जब ऊन सूख जाता है तब बाल काटते हैं। बाल काटने के लिए लोहे की हँसिया या कैंचा होता है। खेत की कटाई के लिए जिस

हँसिया का प्रयोग करते हैं वह बाल काटने के काम में भी आती है। कैंचा बहुत कम गड़ेरियों के पास होता है; यह कैंची के आकार का पर उससे बड़ा होता है। गड़ेरिया भेड़ को सुला (लेटा) कर उसे अपने पैरों के नीचे दबा कर बाल काटता है। बाल को काटकर उसे डंडे से पीटते हैं ताकि उसका गर्दा (धूल) झड़ जाय।

ऊन धुनना और कातना :

३१६. बाँस का करीब २॥ हाथ का फलठा होता है। इसके दोनों सिरों को कुछ पतला करके तथा चमड़े की दोहरी ताँत बाँध कर धुनकी बनाते हैं। धुनकी को बायें हाथ से बीचो-बीच पकड़ कर दाये हाथ से ताँत को धीरे-धीरे ऊन में ही खींचते हैं, धुना हुआ ऊन पीछे हटता जाता है। ताँत को चमार या मोची बनाता है। यह दोबट होती है। ताँत चिकनी रेशे की अच्छी होती है। धूप या गर्मी से ताँत जल्द टूट जाती है। लगभग छः सात सेर ऊन धुनने के बाद ताँत बदलनी पड़ती है। किसी साफ, तर (नम) और निर्वात स्थान में ऊन धुनते है। यह तीन-चार बार धुनने पर कातने योग्य हो जाता है। जब इसका एक-एक बार अलग-अलग हो जाता है और इसमें फुटकी नहीं रह जाती और गर्द नीचे बैठ जाती है तब समझना चाहिए कि ऊन धुन गया। ऊन धुन जाने पर कातने के लिए मोटी-मोटी पूनी बना लेते हैं।

३१७. सूत कातने का जो चरखा होता है वही ऊन कातने का भी है अन्तर केवल यह है कि ऊन कातने के चरखे में ताँत का अवाल लगाते हैं। दायें हाथ से चरखे में लगी हथेली को घुमाते हैं और बायें हाथ से पूनी पकड़ते हैं कभी-कभी चमरख में जहाँ तकुआ रहता है तेल लगाते हैं जिससे चरखा तेज और हल्का चलता है। एक घंटे में एक छटाँक ऊन कात सकते हैं। कताई का काम परिवार में औरतें करती हैं। मर्द बुनाई करते हैं। गर्मी के अतिरिक्त प्रत्येक ऋतु में कताई होती है। ऊन को कातने के बाद परेता पर लपेटते हैं फिर उसकी अँटिया बना कर रखते हैं।

ताना-पाई करना :

३१८. धुने हुए ऊन को कात कर नरी तैयार की जाती है ऊन को दोहरा करके जितना लम्बा कम्बल बनाना होता है उतना लम्बा ताना करते हैं। चार हाथ लंबे कम्बल में दो सेर और पाँच हाथ लम्बे कम्बल में अढ़ाई सेर ऊन लगता है। यदि ताना करते समय ऊन टूट जाय तो उसे सूत में मिला कर उल्टी गाँठ दे देते हैं।

३१९. ऊन को चिकना और कड़ा करने के लिए बेल के गूदे या खली को पानी में भिगो कर खूब ढाली कर लेते हैं। फिर उसी पानी को सूत में लगा कर हाथ से माँजते हैं। ऐसा करने से ऊन बुनाई योग्य हो जाता है।

बुनाई के हथियार :

३२०. ओखर—यह महुवे की एक मोटी गोली लकड़ी है। इसमें तीन छेद होते हैं इसमें ही ताने का एक सिरा बाँधते हैं और ज्यों-ज्यों कम्बल तैयार होता जाता है त्यों-त्यों उसमें लपेटते जाते हैं।

छड़—यह लोहे की एक हाथ लम्बी. गोली सीधी छड़ होती है इसमें ताने का दूसरा सिरा बाँधते हैं।

सहता—यह बाँस का एक हाथ लम्बा, गोल और मोटा टुकड़ा होता है। इसको उठे हुए ताने के बीच में लगाते हैं।

चपना—यह बाँस की एक इंच चौड़ी फलठी हैं; इससे बै उठाते हैं।

तन्ना—यह बाँस का लगभग तेरह अंगुल लंबा एक टुकड़ा है; इसके दोनों किनारों को बुनी जाने वाली पट्टी के दोनों किनारों में खोंसते है ताकि पट्टी की चौड़ाई में तनाव रहे और वह ठीक से बुनी जा सके।

बै या बय—एक आठ हाथ लम्बी बारीक रस्सी द्वारा बै बनाते हैं जिसके अन्दर ताने का सूत रहता है।

बैभरना—यह बाँस की एक हाथ लम्बी पतली लकड़ी है जिसमें बै भरी रहती है।

बेंव—इससे बुनी हुई पट्टी को ठोंक कर सूत गफ करते हैं।

डाँड़ी—एक लकड़ी जिसे ताने के सिरे पर लगाते हैं।

डोरी—यह एक २० हाथ लम्बी रस्सी है; इसके सिरे पर एक मुद्धीदार रस्सी लगाकर उसे ताने में बाँध कर ताने को कसते हैं।

खूँटी—ताने को कसने के लिए उसके आखिरी सिरे पर यह गाड़ी जाती है।

पट्टी बुनना :

३२१. जिस प्रकार टाट की पटिया (पट्टी) बुनी जाती है उसी प्रकार ऊन की भी। जब पटिया तैयार हो जाती है तब वह एक दूसरे से सूजा द्वारा दोहरे ऊन से जोड़ दी जाती है। चार घंटे में एक पट्टी बुनी जा सकती है। एक पट्टी लगभग एक हाथ चौड़ी और ४ या ५ हाथ लंबी होता है। तीन-चार पटिया जोड़ने पर एक कमरा (कम्बल तैयार होता है। एक परिश्रमी आदमी ८ घंटे प्रति दिन काम करके एक कम्बल तीन दिन में तैयार करता है।

३२२. गड़रिया पहनने के लिए ऊन की पट्टी का अंगा और फतुही तथा ओढ़ने के लिए घोघो बनाते हैं। घोघी ओढ़ने से वर्षा में भीगने का डर नहीं रहता है। पट्टी का आसन या असनी भी बनती है।

तेल का काम

३२३. तेल का उद्योग तेली करता है। तेल पेरने का यंत्र कोल्हू कहलाता है। यह लकड़ी का होता है। इसे सभी बढ़ई नहीं बना सकते। पथरिया कोल्हू और इसकी बनावट एक ही ढंग की होती है अंतर केवल यह है कि यह लकड़ी का और उससे छोटा होता है।

कोल्हू :

३२४. कोल्हू के मध्य में एक गड्ढा होता है जिसे हढ़ोढ़ा कहते हैं। इसी में पेरने वाला सामान डाला जाता है। हढ़ोढ़ा से तेल चूने के लिए एक नारी (नाली) बनी होती है जिससे तेल बाहर निकलता है, इसे नेरुआ कहते हैं। नेरुआ के नीचे तेल रोपने के लिए मेंटी (मिट्टी का एक पात्र) रक्खी जाती है। हढ़ोढ़ा लकड़ी के कई टुकड़ों से बनता है जिन्हें पाचर कहते हैं। पाचर घिस जाने पर उसे बदल दिया जाता है; इस क्रिया को पचरवाइब (पचरवाना) कहते हैं। पाचर बबूल की लकड़ी का अच्छा होता है क्योंकि यह लकड़ी कम घिसती है। हढ़ोढ़ा में तेल पेरने के लिए एक लंबी व मोटी लकड़ी चलती है जिसे जाठ कहते हैं। जाठ का नीचे के भाग जो मूड़ सदृश गोला होता है और हढ़ोढा में पाचर से सटकर चलता है मूड़ी कहलाता है। जाठ का ऊपरी किनारा नोकीला होता है, इसे चूर कहते हैं। इस पर कलछुल सदृश एक लकड़ी लगी रहती है जिसे ढेंका कहते हैं। ढेंका का खोरियावाला भाग चूर पर रहता है और उसकी डाँड़ी वाले भाग में एक सूराख करके गुल्ला (लकड़ी का एक टुकड़ा) डाल देते हैं और इस गुल्ले में एक रस्सी अँटका कर इसका सम्बन्ध कातर से करते हैं जिस पर हँकवैया बैठकर बैल को हाँकता है। कातर कोल्हू के निचले भाग से सट कर चलती है; इस स्थान को घघरा कहते हैं। कातर के इस भाग में एक अर्द्धचंद्राकार लकड़ी इस अभिप्राय से जड़ी रहती है कि कातर अपने स्थान पर ही चले; इसे कनेटा कहते हैं। पाचर के पिछले भाग में एक खूँटी गड़ी रहती है जिसे मरिखम कहते हैं। इसी मरिखम में एक गुल्ला लगा कर मरिखम और ढेंके के गुल्ले को एक रस्सी से संबंधित कर देते हैं। रस्सी बड़ी होने से कभी-कभी झटके से टूट जाती है और इसके टूटने पर कातर से बैल के पैरों में चोट लगने का भय रहता है इसलिए रस्सी के स्थान पर एक बाँस का टुकड़ा लगाते हैं जिसे कादा कहते हैं। कादा के दोनों किनारों पर सूराख रहते हैं जिनमें गुल्ला लगाकर रस्सी के द्वारा इसका संबन्ध ढेंका और मरिखम के कर देते हैं।

३२५. कोल्हू नाँघे जाने वाले बैल के कंधे पर एक बींड़ (पुराने कपड़े की गद्दी) रखते हैं जिस के दोनों ओर रस्सियाँ लगी रहती हैं जिनका संबन्ध कातर से रहता है। बैल के चलने से कातर घूमती है। और कातर घूमने से जाठ घूमती है जिससे

पेराई की क्रिया होती है। बैल के चक्कर करने की जगह को पउदरि कहते हैं। घेरा कम होने के कारण बैल को घूमने में कष्ट होता है। वह घूमने में कठिनाई न उपस्थित करे इसलिए उसकी दोनों आँखें बन्द कर दी जाती हैं। इन्हें ढकने के लिए बड़े कोसे के आकार का मूँज का ढक्कन बना दिया जाता है जिन्हें ढोंका कहते हैं। ये बैलों की आँखों पर चश्मे की भाँति पहना दिए जाते हैं। बैल हाँकने के लिए तेली कातर पर बैठता है। इसका दाहिना हाथ बैल के चूतर (चूनड़) या पुट्ठे पर रहता है जिसके सहारे वह बैल को हाँकता है। बायें हाथ से वह हढ़ोढ़ा के ऊपरी भाग से निकलती हुई घानी को बटोर कर पुन: हढ़ोढ़ा के अंदर डालता जाता है। बैल हाँकने के लिए हुट तथा उसे खड़ा करने के लिए हो, होर अथवा खड़ा रह कहते हैं। पउदरि बैल के पेशाब से गीली न हो जाय इसलिए उसका मूत किसी परई या भरुका (मिट्टी का बर्तन) में रोप लेते हैं। गोबर के चोत या छोत भी हटाते रहते हैं ताकि पउदरि गंदी न हो और उसमें चहँटा न हो। इतना करने पर भी बहुधा बैल का मल-मूत्र पउदरि में गिर जाता है। जब मल-मूत्र से पउदरि गीली हो जाता है तब उसमें राखी छींट कर उसे सुखा देते हैं अथवा ऊपर से राखी-पाती पत्ती) डाल देते हैं। राखा-पाती धीरे-धीरे सड़कर खाद बन जाती है जिसे कचार कहते हैं।

३२६. एक बार में जितना माल पेरने के लिए डाला जाता है उसे घानी कोल्हू में और माल डालने को घानी लगाइब (लगाना) कहते हैं। थोड़ी देर में घानी पिसकर पाचर में लिपटने लगती है; इस अवस्था को घानी बैठब (बैठना) या जमब (जमना) कहते हैं। घानी जम जाने पर जाठ का पूरा-पूरा दबाव पड़ता है और तेल निकलना आरंभ होता है। तेल पहले गाज (फेन) के रूप में निकलता है। घानी से जब तक पूरा-पूरा तेल नहीं निकल जाता तब तक उसे कच्ची घानी कहते हैं। साफ घानी को जिससे तेल निकल गया हो निथरी घानी कहते हैं। जाठ ढीली होने पर अथवा मूड़ी के नीचे धान समा जाने पर कोल्हू जाठ को बाहर फेंक देता है; इसे जाठ फेंकब (फेंकना) कहते हैं। इस समय जाठ और धान को बाहर निकाल कर जाठ को फिर से डालना पड़ता है।

३२७. तेल निथर जाने पर जो पदार्थ बचता है उसे खरी (खली) कहते हैं। इसे निकालने के लिए लोहे की रुखाना या हल का फार रखते हैं। जिस मेंटा में तेल एकत्र होता है वह तेल रखते-रखते बहुत मजबूत हो जाती है। ऐसी मेंटी को पोखी मेंटी कहते हैं। जिस कपड़े से मेंटा पोछी जाती है वह तेल लगते-लगते लसर-लम्मर करने लगता है और उसमें तेल की काटि (मैल) छोप उठती (जाती) है। इस कपड़े को चीकट कहते हैं।

३२८. तेल बेचने के लिए तेली मिट्टी की नपी हुई घरिया (मिट्टी का एक बर्तन) रखता है जिसे नपना कहते हैं। आधी छटाँक, छटाँक, आध पाव,

तथा पाव भर के नपने को क्रमशः अधछटंको. छटंकी, अधपई, तथा पौआ कहते हैं। इन छोटे-छोटे मिट्टी के बर्तनों को घरिया या घोंचिया कहते हैं। पहले बाँस काटकर उसका नपना बनाते थे जिसे कुप्पी कहते थे। मेंटी से तेल निकालने के लिए परी होती है; इसे पकड़ने के लिए इसमें डाँड़ी रहती है।

तेल के पदार्थ और उनकी पेराई :

३२६. तीसी—यह पेरने के लिए खून कर लगाई जाती है।

तिल्ली—यह सब से नरम तिलहन (तेल वाला पदार्थ) है। इसे न खूनना पड़ता है और न दरना; यह ज्यों की त्यों लगाई जाती है।

कोइनी—महुआ के पेड़ के फल को कोइना कहते हैं। कोइना के भीतर की गुठली को कोइनी कहते हैं। इसे निकालने के लिए कोइना को पानी में थोड़े समय के लिए भे (भिगो) देते हैं और जब उसका छिलका कुछ नरम पड़ जाता है तब दो पत्थरों के द्वारा उसे दर कर कोइनी अलग कर लेते हैं। एक-एक कोइना को बांढ़ा से फोड़ कर भी कोइनी निकालते हैं। फिर कोइनी को धूप में सुखाते हैं। यह तीसी की भाँति खून कर लगाई जाती है।

नीम—इस के फल को निमकौड़ी कहते हैं। इसे सड़ा कर धोते हैं। धोने के बाद बीज अलग हो जाता है। फिर उसे सुखा कर टीकुर (सूखी) जमीन पर रख कर किसी पिढ़ई या लकड़ी के छोटे से पल्ले से दरते हैं, फलस्वरूप गूदा बाहर निकल आता है। इसी गूदे को पेरते हैं।

सरसों—तिलहन में सब से मुख्य चीज यही है। बारहो मास इसकी पेराई होती है। सरसों पहले सूप से पछोरते हैं फिर इसकी अमनिया (बिनाई) कर इसे साफ करते हैं। इस प्रकार सफाई होने के बाद उसे चाकी में दरते (दलते) हैं। कोल्हू में डालने के पूर्व इसे करमोते (पानी से भिगोते) हैं; पिसाई के समय भी बीच-बीच में कोल्हू में थोड़ा पानी डालते हैं; इससे घानी में अधिक तेल बैठता (पड़ता) है।

बाँस का काम

३३०. बाँस साधारणतः ऐसे स्थान पर लगाया जाता है जहाँ खेती की हानि न हो; बहुधा बाग के चारों ओर, जलाशय के किनारे या किसी बेकार जमीन में इसे लगाते हैं। इसके लिए दोमट मिट्टी अच्छी होती है यद्यपि यह ऊसर में भी हो जाता है। ऊसर के बांस बाढ़ (वृद्धि) में कम लेकिन मजबूत होते हैं; मटियरा का बाँस विस्तार नहीं करता पर अपेक्षाकृत ठोस और मजबूत होता है।

३३१. बाँस फैलनेवाले वृक्षों में से है। जिस प्रकार केरा (केला) की एक पूती से धीरे-धीरे बहुत सी पूतियाँ निकल आती हैं और कुछ दिनों में केले के बहुत से

वृक्ष तैयार हो जाते हैं उसी प्रकार एक बाँस लगाने पर कुछ दिनों में बाँस की कोठी तैयार हो जाती है। बाँस कट जाने पर शेष भाग खूँटे की भाँति दिखाई पड़ता है, संभवतः इसीलिए बाँस के स्थान को खूँटी भी कहते हैं। कोठी शब्द का इस अर्थ में प्रयोग केवल बाँस के लिए ही मिलता है। बाँस की कोठी या खूँटी के समूह को बँसवारी या बँसवाड़ी कहते हैं।

३३२. बाँस लगाने के लिए नए बाँस का फेदा (जड़ सहित तना वाला भाग) खोद कर नई जगह लगाते हैं। वर्षा में बाँस में नई-नई आँखें निकलती हैं अतः उसी समय इसे लगाना ठीक होता है। मृगडाह नखत (मृगशिरा नक्षत्र) में बाँस के लगाने की प्रथा है। लगाने के पूर्व बाँस को एक रात पानी में भिगो देते हैं; इससे तरावट बनी रहती है। वर्षा न होने पर इसे सींचते रहते हैं। बाँस खनते समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि उसकी आँखें न कटें क्योंकि ये ही विकास करके नए-नए बाँस का रूप धारण करती हैं। आँख बढ़कर जब बाँस का रूप धारण करती है तो उसे करिल कहते हैं। इस प्रकार एक बाँस से कई बाँस उत्पन्न होते हैं और बाँस का परिवार बढ़ता जाता है।

३३३. बाँस के जड़ वाले भाग को जरौधा, तने को पेड़हरा तथा पलई या सिरे के भाग को पलौठा कहते हैं। बाँस के गाँठों पर से कंछे निकलते हैं जिन्हें कइन कहते हैं. ये पतली-पतली डालियाँ छप्पर और खपरैल की छाजन में काम देती हैं। इन्हीं गाँठों पर, बाँस की रक्षा के लिए, एक पत्ता निकलता है जो बाँस को लगभग चारों ओर से ढके रहता है; करिल के बढ़ने के साथ ही यह भी बढ़ता है। यह पत्ता, बाँस मजबूत हो जाने पर, स्वयं झड़ जाता है; इसको सिपोलो कहते हैं। यह नाम संभवतः इसलिए है कि इसका आकार छोटे सूप की भाँति होता है। बच्चे इससे अपने खेल में सूप का काम लेते हैं। इसका ऊपरी भाग रोएँदार किन्तु भीतरी भाग जो बाँस पर चिपका रहता है अत्यंत चिकना होता है; इसलिए बच्चे इस पर गुड़ आदि रख कर खाते हैं। बाँस में फूल आते हैं लेकिन फल बहुत कम; जो बाँस फलता है वह सूख जाता है। इस प्रकार बाँस में फल लगना उसके विनाश का चिह्न है, कहावत है, 'केरा बीछी बाँस अपने फरे या जनमले नास अर्थात् केला बाँस फल देने तथा बीछा बच्चा देने पर मर जाती है। किसी-किसी बाँस के भीतरी भाग में चीरने पर छोटे-छोटे हल्के नीले रंग के टुकड़े प्राप्त होते हैं जिन्हें वंसलोचन कहते हैं; कहा जाता है कि स्वाति नक्षत्र के जल से इसकी उत्पत्ति होती है। बाँस में कराइन (छान की पुरानी पत्ती) खाद का अच्छा काम करती है खूँटी के बाहरी भाग के बाँसों में आँखें अधिक निकलती हैं। आँखों के निकलने को पौधब (पौधना) कहते हैं; इस समय कहा जाता है कि बाँस 'पौधत बा', अर्थात् बाँस में नए-नए पौधे निकल रहे हैं। भीतर के बाँसों में आँखें कम निकलती हैं अतः भीतर वाले बाँस ही काटे जाते हैं। बाँस कटने से उसकी जड़

से नई-नई आँखें निकलती हैं। अतः पुराने बाँस का कटना लाभप्रद होता है। बाँस अन्हियारे (अँधियारे) पाख में काटने पर घुन जाता है। अतः इसे अँजोर पाख (शुक्ल पक्ष) में ही मकान आदि के लिए काटते हैं। लोगों का ऐसा अनुभव है कि बाँस काटकर यदि उसे पानी में कुछ दिन डाल कर रक्खा जाय तो उसके घुनने की संभावना नहीं रहती। बलुही जमीन के बाँस दोमट तथा ऊसर के बाँसों की अपेक्षा अधिक घुनते हैं।

३३४. बाँस ग्रामीण लोगों के बड़े काम की वस्तु है। बाँस ऐसा लंबी चीज और कोई नहीं होती; खेत की सिंचाई के लिए ढेंकुर के लिए इसका बल्ला लगाते हैं। पुर में घुरई इसी की बनती है। मकान में तो इसका बहुत ही उपयोग होता है। छप्पर की छाजन तो बाँस के बिना तैयार करना कठिन हो जाय, खपरैल की छाजन में कोरो व कड़ी के रूप में इसका प्रयोग अत्यधिक होता है। इसके अतिरिक्त चीरने पर इसके फल्ठे छाजन में बहुत उपयोगी होते हैं। ठट्टर बनाने के काम में भी ये आते हैं। बाँस की लाठी बनती है। बाँस को चीर कर इसके अनेक उपयोगी सामान बनाते हैं, यथा बेंड़ी, पलरा, पलरी, तरावू, दौरा, दौरी आदि। बड़े सामानों के अतिरिक्त पंखा, पानदान आदि छोटे-छोटे सामान भी बनते हैं।

बाँस के भेद:

३३५. **भलुआ**—बाँसों में यह सब से मोटा पर, पोला होने के कारण, मजबूत कम होता है। किन्तु सामान बनाने के लिए यह सब से अच्छा होता है। लंबाई में यह सब से अधिक होता है। इसमें गाँठें दूर-दूर होती हैं अतः कइन अधिक नहीं होती हैं। साधारणतः जो बाँस लंबे होते हैं उनमें गाँठें और कइनें कम होती हैं; नाटे कद के बाँस टेढ़े, गठीले तथा कंछेदार होते हैं।

३३६. **बँसफूल या फुलबाँस**—यह भलुआ से छोटा और कम मोटा होता है। इसकी पत्तियाँ भी उससे छोटी होती हैं किन्तु मजबूती में यह उससे कहीं अधिक होता है, यह कड़ी जाति का बाँस है। इसके लाठी-डंडे बनते हैं।

३३७. **दुबिहन**—यह अपेक्षाकृत ठोस बाँस है। इसकी सब से बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लचक होती है और यह जल्दी टूटता नहीं, अन्य बाँस जरा से ही दबाव से टूट जाते हैं पर यह बोझ संभाल लेता है। लचक से इसकी लाठी बहुत अच्छी मानी जाती है। यह मोटाई में मध्यम श्रेणी का बाँस है अतः यह सभी काम में आता है। सिधाई की दृष्टि से भी यह अच्छा होता है। सीधे बाँस को छरहरा बाँस कहते हैं। दुबले-पतले नवयुवक के लिए 'नवा छरहरा' प्रयोग करते हैं।

३३८. **मुमेर**—यह गँठीले बाँसों में से है। यह दुबिहन से लंबाई में छोटा एवं पतला होता है। यह ठोस और बहुत मजबूत होता है, लाठी के लिए यह उत्तम बाँस है। एक मुमेर में दो लाठियाँ निकल सकती हैं।

३३९. **कँटवासी**—यह अपने ढंग का एक ही बाँस है। इसकी गाँठों पर

काँटे होते हैं इसी कारण इसे कँटवासी कहते हैं। यह पतला, टेढ़ा तथा अत्यंत गठीला बाँस है। इसमें कइनें अत्यधिक होती हैं जो बाँस को लता की भाँति जकड़े रहती हैं अतः इसकी खूँटी एक घनी काँटेदार झाड़ी सदृश होती है जिसमें घुसना असंभव होता है। इसमें से बाँस काट कर निकालना एक टेढ़ी खीर है यह बाँस केवल लाठी या छड़ी के काम में आता है। इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं। जंगली कँटवासी की अपेक्षा लगाई हुई कँटवासी सीधी और साफ होती है। इसमें कइनें भी कम होती हैं। छाजन के लिए इसे काटकर काम में लाते हैं क्योंकि इसकी छाजन बहुत मजबूत तथा टिकाऊ होती है। इसके घुनने का डर नहीं होता है।

धरिकार और बाँस के सामान:

३४० गृहस्थी के साधारण उपयोग में जहाँ तक बाँस आता है वहाँ तक तो गृहस्थ उसे काट छाँट कर अपनी आवश्यकतानुसार स्वयं बना लेता है या बढ़ई से बनवा लेता है किन्तु जहाँ तक बाँस के उद्योग का सम्बन्ध है यह **बँसफोर**, **धरिकार** तथा **डोम** करते हैं। **बँसफोर** तथा धरिकार एक ही वर्ग की दो शाखाएँ हैं, उन्हें ही **बँसफोर धरिकार** या **बेनुबंसी धरिकार** कहते हैं। बँसफोर अधिकतर घूम-घूम कर अपना पेशा करते हैं, उनका कोई स्थान नहीं होता है। बेनुबंसी गाँव में बस गए हैं और विवाह आदि उत्सवों पर **सिंघा** तथा **तुरही** बाजा बजाते हैं। डोम को, कुछ लोग इन्हीं के वर्ग का मानते हैं पर इनका रहन-सहन इनसे गिरा हुआ होता है। गाँवों में ये बहुत कम हैं। बाँस का काम करने के कारण इस उद्योग के करने वालों को **बँसकट** कहते हैं।

३४१. बाँस के काटने तथा चीरने के लिए धरिकार के पास **बाँकी** होती है। यह इस्पात की बनी होती है। पकड़ने के लिए इसमें **मुठिया** लगी होती है। बाँस फाड़ने, चीरने तथा काटने के लिए यह बहुत अच्छा औजार है। बारीक काम के लिए उसके पास **छूरी** होती है। बाँस को काटते या चीरते-फाड़ते समय उसके नीचे किसी लकड़ी या फेदे (बाँस की जड़ के समीप का भाग) को वह रखता है जिसे **ठीहा** या **मूँगरि** कहते हैं।

३४२. बाँस के दो गाँठों के बीच के सादे भाग को **अँकउरा** कहते हैं। जब टुकड़े में केवल एक गाँठ हो तो उसे **पोर** कहते हैं। इस प्रकार एक पोर में दो अँकउरा निकल सकते हैं। धरिकार को बारीक काम के लिए बाँस की पतली-पतली तीलियाँ या पत्तियाँ चाहिए, उसके लिए उसे बाँस को खड़े-खड़ फाड़ना पड़ता है। बाँस को फाड़कर वह चार बराबर फल्ठों में करता है। इसमें दो फल्ठे ऐसे होते हैं जिनमें गाँठें होती हैं और दो फल्ठे ऐसे निकलते हैं जिनमें गाँठों का निशान मात्र रहता है। गाँठ वाले दोनों हिस्सों को **गँठी** तथा चिकने हिस्सों को **चींसी** या **चींहुर** कहते हैं। चींसी में भी दोनों भाग दो प्रकार के होते हैं। गाँठ के समीप वाला भाग नर तथा गाँठ से दूर वाला भाग मादा कहलाता

है क्योंकि पहला दूसरे से कड़ा होता है; इन्हें क्रमशः मँड़सँड़ तथा जोइयँड़ कहते हैं। मादा वाले भाग की तीलियाँ लचीली तथा मुलायम होती हैं और इसके चीरने में भी सुविधा होती है। इसका सामान साफ, सुथरा तथा सुन्दर होता है। फल्ठे से पतली-पतली तोली बनाते हैं जिन्हें सार कहते है जिसके सहित सार को दिउली कहते हैं। दिउली चीर कर तेरवन या तेरहवन बनाते हैं। फल्ठे की पतली परन्तु चौड़ी पत्ती को पाती कहते हैं जो पंखे के बुनने में काम देती है। इससे मोटी और चौड़ी पत्ती को पाटा कहते हैं। दौरा दौरी की बुनावट में ताना इसी का करते हैं। बाँस का मोटा पाटा जो लगभग डेढ़ अंगुल चौड़ा और एक अंगुल मोटा होता है दौरे के मेंडरा बनाने के काम में आता है। बाँस का सार और पत्ती आदि बनाते समय जो छीलन गिरता है उसे लीमी कहते हैं। बाँकी के द्वारा बाँस साफ करने को रोलब (रोलना) कहते हैं। बाँस की पत्ती नोकदार बनाने को चोखियाइब (चोखियाना) कहते हैं। बाँस के पतले चुभ सकने वाले छोटे टुकड़ों को खेंच, पैंच, फइँच अथवा खपीच कहते हैं।

१४३. बाँस के सामानों में दौरा-दौरी सब से अधिक बनती है। यह चौड़े मुँह का सब से बड़ा बर्तन है। दौरा को पाथी भी कहते हैं। दौरे से जो बड़ा बर्तन होता है उसे ढरवा कहते हैं। दारा बनाने में बाहर और भीतर का ढाँचा अलग-अलग बनाना पड़ता है। बाहरी ढाँचे का खँखरा कहते हैं। इसमें पाटा से ताना करके सार से बिनाई की जाती है। दौरे के भीतर वाले ढाँचे की बनावट जो चटाई सदृश चिकनी और साफ होती है बेनी कहलाती है। इसकी बिनावट पत्तियों से की जाती है; बिनावट शुरू करने को बेनी अथवा पूरन छानब (छानना) कहते हैं। बेनी की बुनावट तीन-दो, तीन-दो होती है, अर्थात् तीन पत्तियाँ उठतीं और दो दबती हैं। इसी तरह से सारी बिनावट होती है। एक साथ उठनेवाली पत्तियों को गावा कहते हैं। दो-दो पत्तियों के उठाने को दोवावनि कहते हैं। बेनी उलट कर बिनी जाती है, इस प्रकार बिनने को डाँड़ कहते हैं। जब बेनी लगभग तैयार हो जाती है और केवल किनारे का भाग बाकी रहता है तो पत्तियाँ जोड़ कर उसे भरने को पंखिला करब (करना) कहते हैं। बेनी तैयार हो जाने पर खाँखर के अन्दर उसे बैठा देते है। इसे खोल बैठाइब (बैठाना) भी कहते हैं। तदुपरान्त किनारे पर मेंड़रा लगाकर बंधन से बाँधते हैं, बंधन भी बाँस का ही होता है। दौरा की पेनी (पेंदी) से बिनावट का वृत्त बढ़ता जाता है और कुछ दूर जाकर फिर घटने लगता है। इस उभड़े हुए मध्य भाग को पाँजर तथा पाँजर से मेंड़रा तक सँकरे होते हुए भाग को चूरी कहते हैं। पाँजर लगभग एक बीता और चूरी आधी बीता ऊँची होती है। दौरे की इस प्रकार की बिनावट से दो लाभ होते हैं एक तो उसमें स्थान बढ़ जाता है दूसरे उसका मेंड़रा भी दोनों हाथों से पकड़ा जा सकता है। वृत्त की मजबूती के लिए खाँखर में पेंदी

के मुड़ाव पर तीन सार एक साथ चोटी की भाँति तर-ऊपर करते हुए बिनते हैं इसे **गाड़न** कहते हैं। गोलाई में बाँधने को **तेंवर** कहते हैं। मेंड़रे पर जो चौड़ी पत्ती दी जाती है उसे **गात** कहते हैं। मेंड़रा के पास दो सार एक साथ ऐंठ कर या बटे हुए रूप में देते हैं जिसे **मोरवट** कहते हैं। अंतिम बिनाई को **तिकिच** कहते हैं।

२४४ **तेराजू** का **पलरा** तथा पानी उबहने के लिए **बेंड़ी** बाँस की ही बनती है। गर्मियों में **पंखा** भी बहुतायत से बनता है। विवाह के अवसर पर धरिकार वर-पक्ष को **डाल** और **चोंगा** बनाकर देता है। डाल पर **ताग-पाट** रक्खा जाता है। चोंगा द्वारा लावा उठा कर डाल पर डालते हैं। बाँस की **छतरी** (छाता) जो चरवाहों के बड़े काम की चीज है धरिकार ही बनाता है।

सोने-चाँदी का काम

२४५. सोने-चाँदी के **गहने** (आभूषण) बनते हैं। गहना बनाने का काम **सोनार** (स्वर्णकार) करता है। सोनार जहाँ बैठकर **गहना गढ़ता** है उस स्थान को **बेदी** कहते हैं। यह स्थान वह प्रति दिन **लीपता** है। सोनार के पास सोना-चाँदी गलाने के लिए मिट्टी की **बोरसी** होती है। बोरसी घर की स्त्रियाँ बनाती हैं। बोरसी में इमली या बबूल का कोयला रख कर आग **सुलगाते** (जलाते) हैं। आग धौंकने के लिए बाँस की **पंखी** होती है। आग फूँकने के लिए वह बाँस की एक नली रखता है जिसे **फोंफी** कहते हैं। आग धौंकने के लिए किसी-किसी सोनार के पास चमड़े की **भाथी** होती है। आग उठाने के लिए **चिमचा** होता है।

सोनार के हथियार :

२४६ **निहाई**—यह लोहे की चौपहल आकार की होती है। इस पर सोना-चाँदी रखकर पीटा जाता है। निहाई को एक लकड़ी में गाड़ कर बैठा देते हैं ताकि यह हिले-डुले नहीं। इस लकड़ी को **ठीहा** कहते हैं।

हथउड़ या **हथउड़ा**—यह लोहे का होता है इससे पीटने का काम लेते हैं। इसे पकड़ने के लिए इसमें लकड़ी का बेंट लगा रहता है। इसके छोटे और हलके रूप को **हथउड़ी** कहते हैं।

चिमटी—यह बारीक चीजों को पकड़ कर उन्हें उठाने के काम में आती है।

जतरी—यह चाँदी के सूत (तार) खींचने का लोहे का औजार है। इसमें विभिन्न आकार के छिद्र बने होते हैं। यह २ अँगुल चौड़ी ½ इंच मोटी तथा २½ बीता लंबी होती है।

परगहनी—इसमें चाँदी गला कर ढारते हैं। यह लगभग दो बीता लंबी, दो या तीन इंच चौड़ी और एक या डेढ़ इंच गहरी होती है। इसे पकड़ने के लिए जो पतला भाग होता है उसे **डाँड़ी** कहते हैं।

घरिया—चाँदी गलाने के लिए यह मिट्टी का एक छोटा पात्र है। पोतनी मिट्टी में रूई मिला कर खूब कूटते हैं जब मिट्टी लसदार हो जाती है तब उसकी घरिया बनाते हैं। इसी घरिया में चांदी गला कर उसे परगहनी में ढारते हैं।

कतरी—यह कैंची की तरह चाँदी का टुकड़ा काटने के लिए होती है।

रेती—यह खुरदुरापन मिटाने के लिए लोहे का एक औजार है।

कलम—गहनों पर नक्काशी करने के लिए ये विभिन्न आकार के होते हैं, आकार के अनुसार इनके विभिन्न नाम होते हैं यथा, गोलहाँ, दुइमुँहा तथा दुइधरा।

मलिस्त—यह छेद करने के लिए होता है।

दरी—यह काँसा या पीतल का चौकोर—लगभग चार अंगुल वर्ग का—होता है। इसमें छोटे-बड़े विभिन्न आकार के गाड़ (गड्ढे) बने रहते हैं जिसमें घुंडी ऐसी गोली चीज खाली (बनाई) जाती है।

ठप्पा—बटन, अंगूठी, मुनरी आदि बनाने के लिए यह होता है।

गहुआ—सँड़सी की तरह यह पकड़ने का एक औजार है। चाँदी का तार खींचते समय उसे इसी से पकड़ कर खींचते हैं।

ग ह ने से सं बं धि त का र्य :

३४७. **चाँदी गलाना**—चाँदी के टुकड़े करके घरिया में डाल कर उसे आग पर रखते हैं। आग की आँच कड़ी होनी चाहिए। जिस समय चाँदी आग पर रहती है उस समय उस पर सोहागा की बुकनी (चूर्ण) भोहराते (छिड़कते) हैं। जब चाँदी पूर्णरूपेण द्रवीभूत हो जाती है तब उसे ढारते हैं। सोहागा डालने से चाँदी की मैल कट जाती है और चाँदी पक्की हो जाती है। मैल को चिमचे से निकालकर बाहर कर देते हैं। ढालने के पूर्व परगहनी में थोड़ा सा तेल डाल कर रखते हैं; यह तेल पिघली हुई गरम चाँदी पड़ते ही जल उठता है। परगहनी में सारी चाँदी फैल न जाय इस अभिप्राय से उसे आवश्यकतानुसार मिट्टी से लेस (घेर) देते हैं। इस प्रकार जितनी मोटी चाँदी ढारना चाहें ढार सकते हैं।

३४८. **चाँदी का तार खींचना**—जतरी के सूराख में चाँदी के छड़ का एक सिरा पतला करके डाल कर गहुआ से खींचते हैं। जब एक बार तार खिंच जाता है तब उसे और बारीक करने के लिए उससे बारीक छेद में डाल कर खींचते हैं।

३४९. **चाँदी का गहना साफ करना**—इसके लिए एक मसाला तैयार करते हैं जिसमें नसादर, सोरा, नमक तथा फिटकरी बराबर-बराबर मिलाकर पानी में लेई की तरह बनाते हैं। इसके अतिरिक्त अथरा (मिट्टी का एक बर्तन) में इमली भिगो देते हैं। इमली घुल जाने पर खटाई का पानी तैयार हो जाता है। जिस गहने को साफ करना होता है उसे थोड़ा गर्म करते हैं जब वह ठंडा हो जाता है तब मसाला लगा कर थोड़ी आँच से उसे पुनः गर्म करते हैं। गर्म होने पर गहने को इस

तैयार खटाई में डाल देते हैं। थोड़ी देर पश्चात् गहने को निकाल कर बालू से माँजते हैं और फिर बोरसी की गरम राख में डाल देते हैं। इसके बाद उसे निकालकर राख झाड़ कर गँहकी (ग्राहक) को दे देते हैं।

३५०. खाद मिलाना—चाँदी में निम्न कोटि की धातुयें यथा, तामा, जस्ता, गिलट, रांगा आदि मिलाने को खाद मिलाना कहते हैं।

३५१ चाँदी का पत्तर बनाना—चाँदी बढ़ाने के लिए उसे बार-बार आग में तपा कर पीटना पड़ता है। चाँदी को तपाने के पूर्व उस पर कोयले से एक निशान बना देते हैं। जब यह निशान आग की गर्मी से लुप्त हो जाता है तब समझते हैं कि चाँदी समुचित रूप से तप गई। चाँदी को फिर आग से निकाल कर बुकी हुई बारीक मिट्टी में डाल कर ठंडी करते हैं। तदनन्तर निहाई पर रख कर हथौड़ी से पीट-पीट कर उसे बढ़ाते हैं।

नक्काशी करना—नक्काशी का काम ही मुख्य कारीगरी है। खोलऊ (पोलदार) गहने पर नक्काशी के लिए इसमें राँगा गरम करके डाल देते हैं। नक्काशी का कार्य समाप्त होने पर गहना गर्म करके राँगे को निकाल लेते हैं।

३५२. टाँका लगाना—टाँके के मसाले में सोहागा, नसादर और सोरा रहता है। एक सुतुही (सीपी) में इस मसाले को रखते हैं और उसी में चाँदी के महीन-महीन टुकड़े डाल देते हैं। फिर उसमें थोड़ा सा पानी डाल कर उसे आग पर रख कर पका लेते हैं। जो चीज जोड़नी होती है उसे आग पर रख कर थोड़ा गर्म कर गहने पर रखते हैं और ऊपर से रुई के फाहे से वही मसाला जोड़ पर रख देते हैं। जोड़ जुट जाने पर आग से गहना बाहर निकालते हैं। जोड़ को टाँका और जोड़ने की क्रिया को टाँका लगाइब (लगाना) कहते हैं।

३५३. तेजाबी सोना बनाना—चाँदी की भाँति सोने को भी गलाते हैं। चाँदी की अपेक्षा सोने के लिए तेज आँच चाहिए। सोने पर भी सोहागा छिड़का जाता है। सोना गल जाने पर उसे एक भरुका या भुड़का मिट्टी का बर्तन) में जिसमें तेजाब रहता है डाल देते हैं। उसे निकालकर फिर पूर्ववत् घरिया में पकाते हैं। थोड़ी देर में घरिया उतार कर ठंडा करके सोना निकाल लेते हैं।

३५४ सोने का पत्तर बनाना—सोने को निहाई पर रख कर हथौड़े से पीट कर पत्तर बनाते हैं। सोना गलाने में विशेष अंदाज चाहिए अन्यथा कभी-कभी सोने में बेढ़ई (सिकुड़न) पड़ जाती है जिसके कारण सोने का पत्तर बनाते समय वह चिहुरा (फट) जाता है। ऐसी दशा में सोने को दोबारा गलाते हैं।

सोने का पत्तर चढ़ाने के लिए ताँबे का आधार रखते हैं। हँसुली, अनन्ता, फेरवा आदि इसी प्रकार बनते हैं। इस प्रकार बने गहने को कचौड़ीदार गहना कहते हैं क्योंकि कचौड़ी की भाँति इसमें ताँबा भरा रहता है।

सर का गहना :

३५५. चंदक या चँदवा—यह माँग पर पहना जाता है। चाँदी का एक एक गोला चंद्राकार पत्र बनाकर उसके ऊपरी भाग पर तीन-चार चन्द्राकार उभड़ी हुई चाँदी की पतल-पतली पत्तियाँ लगाते हैं। इसमें तीन सीकड़ें लगी रहती हैं। एक पीछे जूड़ा में खोंस दी जाती है और शेष दोनों कानों पर लटकती हैं। इनमें झुमका लगा रहता है।

बंदी—यह चँदवा का छोटा रूप है।

सुपारी—यह सुपारी के आकार का होती है, विशेषतः लड़कियाँ पहनती हैं।

गले का गहना :

३५६ सकरी—यह चाँदी और सोने की जंजीर है।

कंठा—सोने का पत्तर काट कर नकासते हैं फिर दो पत्तरों को मिलाकर अंडाकार बना लेते हैं। यह गुह कर पहना जाता है।

हँसुला—यह चौपहल आकार की भरतू और खोलऊ दोनों बनती है। हँसुली के दोनो किनारों पर हुंडी के आकार का छोटा गूँजा होता है।

तिलरी—सोने के तिकोने पत्तर को गुह कर बनाई जाती है।

तवक—यह चंद्राकार होता है। मुसलमान स्त्रियाँ चाँदी का तवक पहनती हैं।

गुलेबंद—यह गले में लपटा रहता है। इसमें एक इंच चौकोर के कई फूलदार टुकड़े रहते हैं। यह सोने का होता है।

पखियारी—सोने की गुरिया गुह कर गुलेबंद की तरह पहनी जाती है; सामने सोने का एक पत्तर लगा रहता है।

टीका—गुलेबंद की तरह होता है। इसमें घुँघुरू भी लगा रहता है।

जुगुनू—यह हुमेल की तरह पहना जाता है। इसमें छोटी-छोटी सोने की कोरिया होती है जिनमें शीशा जड़ा रहता है और जो चमकता है।

हुमेल—सोना और चाँदी दोनों की होती है। चाँदी के रुपये में दोहरा कोंढ़ा जोड़ कर बनाते हैं।

पनवाँ—यह पान के आकार का होता है, हुमेल में लटकता रहता है।

चौकी—यह चौकोर होता है। और पनवा के स्थान पर लगता है।

बाजू का गहना :

३५७ बिजायठ—यह सोने और चाँदी के पत्तर का बनता है, गुल्ली के आकार का नकाशदार होता है।

जौमन—इसमें चौपहल दाने होते हैं जो गुह कर पहने जाते हैं।

टड्डा या फेरवा—ताँबे के छड़ पर सोने का पत्तर चढ़ा कर बनाते हैं यह दो या तीन फेरे का रहता है।

बाजू— एक बाजू में बीस-पचीस या तीस दाने रहते हैं। बाजू के दाने साँचे

में दार लिए जाते हैं। इन दानों के दोनों सिरों पर गूँजा होता है जिसमें सुराख रहता है। इसे पटहार से गुहा कर पहनते हैं एक बाजू में बीस-पचीस या तीस दाने रहते हैं।

बेरखी—यह गुल्ली के आकार का होता है।

टँड़िया—यह चाँदी के पत्तर का खोलऊ होता है, इस पर फूल बना रहता है।

बहूँटा—यह भी खोलऊ होता है। बाजू के ऊपर पहना जाता है।

अनन्ता—यह सोने का बनता है, ताँबा पर सोने का पत्तर चढ़ा रहता है। टँड़िया से मिलता-जुलता है।

कलाई का गहना :

३५८. **छन्ना**—चाँदी का गोल लगभग आधा इंच चौड़ा पत्तर बनाकर उस पर छपहल के चौथाई इंच के तीन या चार चाँदी के टुकड़े लगा कर जोड़ देते हैं। इसके दोनों सिरों पर गूँजा होता है जिसमें कील डाल कर पहनते हैं। यह चूड़ियों के बीच पहना जाता है।

ककना—यह छन्ने की तरह चाँदी के पत्तर से बनता है। इसके पत्तरों के किनारों पर चाँदी के रवे (दाने) जोड़े जाते हैं। रवा का आकार गिनती के एक की भाँति होता है। इसमें भी गूँजा बना रहता है।

ढरकउआ—यह सोने-चाँदी दोनों का बनता है—बच्चों के लिए भरतू बनता है। यह पोला और नकाशदार भी बनता है। हुंडी पर बाघ शेर) का मुँह बनाते हैं ऐसी हुंडी को बघमुँहाँ हुंडी कहते हैं।

सिंघाड़ा—यह चाँदी का बनता है। और सिंघाड़ा के आकार का होता है।

पहुँची—यह भी सोने-चाँदी दोनों की बनती है। मोती के आकार की गुरिया पिटाई जाती है। यह तीन पतियारी (पाँती) गुही जाती है।

कतरी—यह चाँदी की पतली पत्ती है औ चूड़ी के आगे पहनी जाती है।

पट्टा—यह बहुत ही सादा गहना है इसीलिए इसे विधवा स्त्रियाँ भी पहनती हैं। चाँदी का पत्तर गोला करके उसमें दोनों ओर कोंढ़ा लगा देते हैं। एक ओर दो कोंढ़े होते हैं। दोनों सिरों को मिला कर उनके सुराखों से एक चाँदी की कील डाल देते हैं जिससे वह हाथ में थम्हा (रुका) रहता है।

पछेला—यह भरतू तथा पोलदार दोनों बनता है। यह चूड़ी के पीछे पहना जाता है।

मोतिहरा— इस पर मोती सदृश दाने लगते हैं। पछेला की भाँति यह खोलऊ बनता है।

हाथ की अँगुलियों का गहना :

३५९. **अरसी**—यह तर्जनी में पहनी जाती है।

मुँदरी—यह चाँदी के तार की अँगुरी (अँगुली) के साथ (नाप) की बनती है।

करैनी—यह नक्काशदार मुँदरी है—अँगुलियों में पहनी जाती है।

अँगूठी—यह सोने की बनती है।

अँगुरताना—यह अँगूठे में पहना जाता है—चाँदी की पत्ती पर फूल नकाश कर अँगूठा की तरह पहनते हैं।

कमर का गहना :

३६०. करधनि—यह कमर में पहनते हैं। यह तीन-चार अंगुल चौड़ी पट्टी होता है। पट्टियों पर फूल आदि बने रहते हैं। दोनों किनारों पर कोंढ़े बने रहते हैं जिनमें एक सलाई डाल दी जाती है।

पैर का गहना :

३६१. कड़ा या गोड़हरा—यह भरतू (ठोस) तथा खोलऊ (पोलदार) दोनों ढंग का बनता है। कड़ा के दोनों सिरों पर गोल नकाशी हुई हुडी (घुण्डी) होती है।

पायजेब या पैजेब—यह घुँघरूदार गहना है चाँदी के पत्तर पर रवादार घुँघुरू गाँछ देते हैं। ये रवा चाँदी के तार द्वारा गाँछे जाते हैं। इसे गँछुआ पैजेब कहते हैं। ढरुआ पैजेब भी बनता है।

लच्छा—चाँदी का तार खींच कर बनाया जाता है। दो तीन तार ले कर एक साथ रस्सी की तरह बट दिए जाते हैं; बटने के बाद आवश्यक आकार के लच्छे काट कर जोड़ दिए जाते हैं।

मल—यह लच्छे के ढंग का गहना है, चाँदी की पत्ती ऐंठ करके बनाते हैं।

छागल—इसे लच्छों के नीचे पहनते हैं यह एक पटरीदार गहना है। इसमें घुँघुरू लगे होते हैं।

पायल—यह नया गहना है, लड़ीदार होता है।

झाँझ—यह पोल दार कड़ा कहा जा सकता है। चाँदी के पत्तर का बनता है। इसके भीतर ताँबें की टुकड़ी डाल देते हैं जिससे यह झनकार करती है।

पटरी—यह पटरी के आकार का आभूषण है इस पर नकाशी हुई रहती है।

पैर की अँगुलियों का गहना :

३६२. जोट—अँगूठा में पहना जाता है, पहनने के लिए नीचे डाँड़ी लगी रहती है।

बताशा—यह बताशे के आकार का होता है। अँगूठा और कनगुरी को छोड़ कर शेष अँगुलियों में पहना जाता है।

बिछिया—यह मन्दिर के आकार की या कलश सदृश होती है। यह भी बताशा की भाँति पहनी जाती है।

अउँठा—यह अँगूठे में पहना जाता है। यह चाँदी की पत्ती का जालीदार बनता है इसमें जोट की तरह डाँड़ी नहीं होती है।

पोढ़िया—यह बतासे के स्थान पर पहनते हैं। यह चाँदी की पत्ती का जालीदार होता है।

पौली पर का गहना :

३६३. पलाँदी—यह पानदार होता है। यह पउली पर पहना जाता है। इसे अँटकाने के लिए जंजीरें लगी रहती हैं जिनका सम्बन्ध एक ओर एड़ी से तथा दूसरी ओर अँगुलियों से होता है।

नाक का गहना :

३६४. नथिया या नथुनी—यह भरतू तथा खोलऊ दोनों प्रकार की होती है, इसकी डाँड़ी में एक-दो मूँगा पहना देते हैं। दो-तीन सोने का गुरिया भी नकाश कर इसमें पिरोते हैं। इन्हें दुरहुरी कहते हैं। एक सिरे पर कोंढ़ा होता है दूसरे सिरे पर गूँजा जो कोंढ़े में डाला जाता है। इस में सोने के छोटे-छोटे पत्तर जड़े रहते हैं जिन्हें छक्का कहते हैं।

बुलाक—यह नाक के बीच वाले भाग में पहनी जाती है। यह जवा (यव) के आकार का सोने का टुकड़ा रहता है।

फुरुहुरी—नाक के दाहिने पुट में छेद कर पहनी जाती है। यह कील की भाँति होता है।

झुलनी—यह नथुनी में लटकनेवाला तिकोने आकार का सोने का पत्र है।

बेसर—यह नाक के बीच वाले भाग में जहाँ बुलाक पहनते हैं पहनी जाती है। आकार नथिया के सदृश होता है। नथिया में नाक के एक ओर सोने के छक्के रहते हैं और बेसर में नाक के दोनों ओर।

कान का गहना :

३६५. ऐरन—यह कान की ललरी की सूराख में पहना जाता है।

बाला—कान के बीच में ललरी के ऊपर सूराख में पहना जाता है।

बारी या बाली—कान का ललरी में पहनी जाती है। बच्चों को भी पहनाते हैं।

उतरन या उतरना—कान के ऊपरी भाग में बारी की तरह पहना जाता है।

झुमका—यह मंदिर के घंटे के भीतरी भाग की तरह गुम्बजदार होता है। इसमें किनारे-किनारे मोती या सोने की गुरिया की झालर होती है।

कनफूल—यह भी ललरी की सूराख में पहना जाता है, यह फूल के आकार का होता है।

लवँगा—यह कान की ललरी में पहना जाता है। लवँग की भाँति होता है।

बिजुली—यह अर्द्ध चंद्राकार होती है। इस में मोती का झालर लटकती है।

ढार या बिछिया—यह ढाल के आकार का चाँदी का होता है।

सा ड़ी का ग ह ना :

३६६. अँचरा—यह पोलदार दाना है जो साड़ी के आँचर में लगता है।

मनोहरी—यह साड़ी में घूँघट के पास गुहा रहता है।

गहना गुहने का काम

३६७. गहना गुहने का काम पटहार करते हैं। विवाह के अवसर पर जहाँ सोनार, माली, दरजी, बढ़ई आदि का काम पड़ता है वहाँ पटहार का भी। पटहार की भी अन्य परजा की भाँति जजमानी होती है। जिसके यहाँ जो पटहार गहना गुहता रहा है वही गुहेगा। विवाह संस्कार में ताग-पाट की आवश्यकता पड़ती है। यह लड़के की ओर से लड़की के लिए जाता है। ताग-पाट बना कर पटहार ही देता है। संभवतः इसी आधार पर इसे पटहार की संज्ञा दी गई।

प ट हा र के ह थि या र औ र का म :

३६८. कैंची-छूरी के अतिरिक्त उसके पास चरक या लटाई होती है। यह लकड़ी का लगभग डेढ़ बीता लंबा होता है। इसके एक किनारे पर ताँबे का पतला तार लपेटा रहता है, यह तार सफेद और पीला होता है। गहना गुहते समय उसकी सुन्दरता के लिए यह मिढ़ा जाता है। इसके एक किनारे पर रुपए के आकार की लकड़ी की दो फिरकियाँ रहती हैं, इन्हीं फिरकियों के बीच में तार लपेटा रहता है। तार मिढ़ने के लिए चरक को सूत के चारों ओर चक्कर दे कर घुमाते हैं।

एक अन्य औजार चक स है। यह लोहे का होता है। इसे अगूठे में बझा (फँसा कर) इसके सहारे सूत को कई परत करते हैं।

सूत रँगना—सूत को जिस रंग में रँगना होता है उस रंग को पहले थोड़ा सा पानी डाल कर फेंटते हैं फिर उसमें रँगने के लिए उचित मात्रा में पानी डाल कर और थोड़ा सा नमक मिला कर उसे आग पर रखते हैं। फिर सूत को उसी रंग में डाल देते हैं। जब सूत उसिन (उबल) जाता है तब रंग पक्का हो जाता है।

३६९. पटहार सूत के निम्न गहने बनाता है :—

मुँड़गुहना—स्त्रियाँ इससे सर का बाल बाँधती हैं। यह पाँच लट की चोटी है।

करधन—यह बच्चों के लिए विशेष रूप से बनती है।

बौंखा—यह बाजू में बाँधने के लिए बनता है। इस में सुंदरता के लिए घुंडी या फुल्ली लगाते हैं।

जरबन या कमरकस—इससे स्त्रियाँ अपने लूगा (धोती) को कमर के पास बाँधती हैं।

जयतुआ या जिउत—क्वार के महीने में कृष्ण पक्ष की अष्टमी को जयतुआ का व्रत होता है। स्त्रियाँ इस दिन व्रत करती हैं। यह गले में पहनने के लिए बनाया जाता है।

अनंता—अनंत चतुर्दशी के दिन बाँह में पहनने के लिए यह बनता है, इस में चौदह गाँठें होती हैं।

बाल बनाने का काम

३७०. बाल बनाने का काम करने वाली जाति **नाई** या **नाऊ** कहलाती है। इन्हें **नाऊ ठाकुर** भी कहते हैं। मुसलमान लोग नाई को **हज्जाम** कहते हैं। स्त्री को **नाइन** या **नाउन** कहते हैं। नाई के निम्न हथियार होते हैं :—

३७१. **छूरा**—यह लोहे का होता है। इसी से बाल बनाते हैं। विलायती छूरे को **अस्तुरा** कहते हैं।

कैंची—यह भी लोहे की होती है। इससे बाल कतरते या काटते हैं।

नहन्नी—यह भी लोहे की होती है। इससे नँह (नाखून) काटते हैं इसका पिछला भाग कुछ टेढ़ा रहता है जिससे काँटा और कान की **खूँट** (मैल) निकालते हैं। इसे एक बाँस की **फोंफी** में रखते हैं जो पोली होती है।

चिमटी—यह भी लोहे की होती है। यह धँसे हुए काँटों को पकड़ कर खींचने या पके बाल को उखाड़ने या नोचने के काम में आती है। इसी से इसे **मोचना** भी कहते हैं।

चमोटा या **चमोटी**—यह भिझाये (पकाये) चमड़े का टुकड़ा है छूरे को तेज करने के लिए उसे इस पर **पहँटते** हैं।

सिल्ली—यह एक बनाया हुआ पत्थर है जो बाहर से आता है। छूरे की धार गुठला जाने पर उसे इसी पर रगड़ते हैं जिसे **सिल्लियाइब** (सिल्लियाना) कहते हैं।

कंघी—बाल काटने के समय कैंची के साथ इसका प्रयोग होता है। यह टीन की होती है पर आजकल सैलोलाइड की कंघियाँ भी देहात में पहुँच गई हैं।

गुठली—यह आम की सूखी गुठली के छिलके का आधा भाग है। बाल काटने के बाद इसके सहारे सर की रूसी साफ की जाती है।

सीसा—यह मुँह देखने के काम में आता है। **दरपन**, (दर्पण) **दरपनी** या **ऐना** (आईना) भी इसे कहते हैं।

३७२. हथियारों की मरम्मत लोहार करता है। छूरा की धार खराब हो जाने पर उस पर लोहार के यहाँ **सान** रखाते हैं। धार बहुत अधिक मोटी होने पर छूरे को पिटवाते हैं। पिटाई के बाद औजार को पानी में बुझाते हैं इससे लोहे में

कड़ापन आ जाता है। इस क्रिया को **पानी देब** (देना) कहते हैं। सान रखने या पीटने से कभी-कभी धार झड़ जाती है; इसे **फूल झड़ब** (झड़ना) कहते हैं। फूल झड़ने पर छूरा बराबर से बाल नहीं बनाता। इसलिए सान रखाए हुए छूरे को पहले चमौटी पर रगड़ कर तब प्रयोग करते हैं।

२७३. छूरे से सारा बाल बनाने को **मूँड़ मूड़ब** (मूड़ना) या **सर घोंटब** (घोंटना) कहते हैं। केवल डाढ़ी बनाने को **डाढ़ी मूड़ब** (मूड़ना) कहते हैं। कान के बगल के बाल को छाँट कर छोटा करने और खत काटने को **कलम छाँटब** (छाँटना) या **काटब** (काटना) कहते हैं। इसे **खत काटब** (काटना) भी कहते हैं। माथ के बाल को गोलाई में बनाने को **खोंपा काटब** (काटना) या **काढ़ब** (काढ़ना) कहते हैं। सर के मध्य व तालु स्थान पर तेल सोखाने के लिए या किसी औषधि के लगाने के लिए बाल बनवा देते हैं जिसे **चाँद खोलाइब** (खोलाना) कहते हैं। बड़े-बड़े बालों को बराबर से रखने और उन्हे पीछे को फेरने को **पट्टा** कहते हैं।

कांख को **बगल** कहते हैं और काँख के बाल बनाने को **बगल बनाइब** (बनाना) कहते हैं। छूरे में जंग न लगे इसलिए इसे वर्षा के दिन में ऊनी कपड़े में लपेट कर रखते हैं। चमड़े की पेटी जिसमें नाई अपने औजार रखते हैं **किस्बत** या **किस्वत** कहलाती है।

६

गृहोद्योग (अ) पुरुषों से संबंधित

सुतली कातना

२७४. सन कातकर सुतली तैयार की जाती है। सुतली को बाध भी कहते हैं। कातने का कार्य ढेरा पर होता है ढेरा को कतनी भी कहते हैं। ढेरा लकड़ी का होता है। ढेरा टिकुरी का ही बड़ा रूप कहा जा सकता है। जिस प्रकार टिकुरी में सूत कातने के लिए लोहे की तीली लगी रहती है उसी प्रकार ढेरा में भी। करा (सन का लच्छा) तीली में बझा कर ढेरा चला दिया जाता है; चक्कर करने से करा में ऐंठन पड़ती जाती है। टिकुरी की फिरकी छोटी होती है लेकिन ढेरा की बहुत बड़ी। जिस प्रकार टिकुरी में सूत लपेटा जाता है उस ढंग से ढेरा में लपेटना असंभव है क्योंकि लपेट खुल जाय। लपेट खुले नहीं इसलिए इसकी फिरकी गोली तो अवश्य होती है पर उसमें दो पतली गढ़ी हुई लकड़ियाँ इस प्रकार लगी होती हैं कि उनसे गुणन का निशान बनता है। ये लकड़ियाँ लगभग एक बीता लम्बी होती हैं। सुतली एक दूसरे को काटते हुए ढंग पर इन लकड़ियों द्वारा बने हुए स्थान में लपेटी जाती है। इन लकड़ियों के मध्य में ही तीली रहती है और उसका ऊपरी भाग टेढ़ा रहता है। कते हुए बाध की लुंडी बनाकर उसे आवश्यकतानुसार दोहरा-तेहरा कर सकते हैं। बट देते समय उसे पानी से भिगोकर माँजते हैं जिससे मजबूती बढ़ जाती है दोहरे बाध को दोहला तथा तिहरे बाध को तिकला कहते हैं। बैलों पर गल्ला लादने के लिए इसका थैला सदृश बोरा बनता है जिसे पेटार कहते हैं। सुतली से चारपाई बुनी जाती है। सुतली की रस्सी बनती है।

रस्सी बनाना

२७५. रस्सी को रसरी अथवा लसरी कहते हैं। मोटी रस्सी को रस्सा कहते हैं। रसरी के लिए जेंवर शब्द का भी प्रयोग होता है; किन्तु साधारणतः छोटी रस्सी के लिए ही यह व्यवहृत होता है। जेंवर शब्द रसरी की अपेक्षा अधिक ठेठ कहा जा सकता है। डोरी शब्द भी रसरी के लिए प्रयुक्त होता है किन्तु ठेठ बोली में इसका प्रयोग कम है। रस्सी जब बाँधने के काम में आती है तब उसे बंधन कहते हैं। रस्सी निम्न प्रकार से बनती है—

३७६. जोड़ना या गूर्ही—सन, पुआल या हरे सरपत को ऐंठ कर जब रस्सी का काम लेते हैं तब उसे जोड़ना या गूर्ही कहते हैं। इसमें बट नहीं होता है, काम चलाने के लिए केवल साधारण ऐंठन रहती है। छप्पर की मरम्मत के लिए परछथी बनाने में पुआल का जोड़ना प्रयोग किया जाता है। कूँड़ के मुँह पर गुल्ले को बाँधने के लिए सन की गूर्ही का प्रयोग होता है। गूर्ही लपेटने को गुरिहआइब (गुरिहआना) कहते हैं। गूर्ही द्वारा जो बंधन पड़ता है उसे गूरहन कहते हैं।

३७७. सेल्हा या सेल्हुई रसरी—रस्सी बटने के ध्यान से जब सन के लच्छों को ऐंठ कर रख लेते हैं तब उसे सेल्हा कहते हैं। सन की जितनी लच्छी एक बार में ऐंठन के लिए लेते हैं उसे करा कहते हैं। सेल्हा बनाने के लिए करा का एक टोंक या किनारा हाथ में होता है और दूसरा पैर के नीचे दबा रहता है। एक करा ऐंठ लेने पर उसमें दूसरा करा जोड़ देते हैं। इस प्रकार सेल्हा बनाते हैं। बने हुए सेल्हा को किसी चीज में लपेटते रहना चाहिए, इस दृष्टि से सेल्हवैया (सेल्हा बनाने वाला) चारपाई पर बैठ कर सेल्हा बनाता है और उसे चारपाई के पावे में लपेटता जाता है। इससे सेल्हा बनाने में सुविधा होती है। जब वह अपनी आवश्यकतानुसार सेल्हा तैयार कर लेता है तब वह एक दूसरी लकड़ी में उसे अलग लपेट लेता है जिसे लुँड़ियाइब (लुँड़ियाना) कहते हैं। इस प्रकार लुँड़ियाई रसरी को लुंडी कहते हैं। सेल्हा तैयार होने पर उसे दोहरा-तेहरा बट दे कर चाहे जितनी मोटी रस्सी बना ली जाय। रोजगारियों के सेल्हा बनाने का ढंग यह है कि एक छोटी लकड़ी में करा लगाकर लकड़ी को चक्कर देते हैं। लकड़ी घुमाने से करा में ऐंठन पड़ती जाती है और एक दूसरा आदमी करा में करा जोड़ता जाता है। लकड़ी घुमाने के लिए उसके दोनों किनारों को एक रस्सी से सबंधित करते हैं और फिर उस रस्सी को हाथ से पकड़ कर घुमाते हैं।

३७८ बरी या बरुई रस्सी—हाथ में दो करा एक साथ ले कर उसे पूरते या बटते हैं। इस प्रकार बरने (बटने) से जो रस्सी तैयार होती है इसे बरुई कहते हैं।

३७९. भाँजी रस्सी—सेल्हुई या बरुई रस्सी को दुहरा-तेहरा या दो बट-तिबट करने को भाँजब (भाँजना) कहते हैं। तीन बट की रस्सी अच्छी होती है। बटी हुई रस्सी को भाँजी रस्सी कहते हैं।

रस्सी के लिए कच्चा माल:

३८०. रस्सी बनाने के लिए जगली चीजों में कुस, बेकहल तथा मूँज मुख्य हैं; बोई गई चीजों मं सन और पेटुआ है।

कुस—इसकी रसरी कम बनती है। कुश पानी में जल्दी सड़ता नहीं इसलिए गोड़िया या मल्लाह इसका प्रयाग करते हैं। इसकी पतली रस्सियाँ बरई पान का

भीट तैयार करने में लगाता है। पवित्र माना जाने के कारण इसे साधु अपने काम में लाते हैं। इसे भिगो कर तथा पीट कर कुएँ की रस्सी बनाते हैं।

बेकहल— यह पलास की सोर (जड़) है। इसकी भी रस्सी वर्षा के लिए अच्छी होती है क्योंकि यह कड़ी चीज होती है। गर्मी में इसका प्रयोग करने से हाथ छिल जाता है। वर्षा में यह मुलायम रहती है और सड़ती नहीं। वर्षा में पलास की पतली-पतली सोर काट लेते हैं। इन्हें मुँगरी (लकड़ी का एक औजार) से खूब खूनते हैं जिससे रेशे अलग हो जाते हैं फिर उसके करा को अलग कर लेते हैं। यदि आवश्यकता हुई तो गीली दशा में ही रस्सी बना ली जाती है नहीं तो उसे सुखा कर रख लेते हैं और जब रस्सी बनाना होता है तब भिगोकर काम में लाते हैं। मुसहर बेकहल की रस्सियाँ बनाकर बेचते हैं। बेकहल का सिकहर मजबूत बनता है। इसे टाँग कर उसमें कुछ खाने-पीने का सामान रखते हैं।

मूँज—सरपत के जुट्टे में से मूँज निकाली जाती है। मूँज का भुआ वाला भाग निकाल कर मूँज सुखा लेते हैं। जब रस्सी बनानी होती है तब उसे कूटकर पानी में भिगो देते हैं और नरम हो जाने पर रसरी बरते हैं।

मूँज की रसरी सन के बराबर मजबूत नहीं होती, यह रूखर भी होती है। यह पवित्र मानी जाती है इसलिए विवाह-मृत्यु आदि सभी संस्कारों में इसका उपयोग होता है रूखर होने से इसमें बट कड़ा पड़ता है। इसकी रस्सी चरखे के चमरख तथा फटके (रूई धुनने की धनुही) के लिए अच्छी होती है। सुतरी की भाँति यह भी काती जाती है इसके बाध से चारपाई बुनी जाती है।

सन—सबसे अधिक उपयोग में आने वाला सामान यही है। इसकी रस्सी हर एक काम के योग्य होती है और इसके बनाने में सुविधा भी होती है। प्रत्येक किसान अपने काम भर का सन बोता है। इसकी हर ढंग की रस्सी बनती है।

पेटुआ—इसके छिलके की सन की भाँति रस्सी बनती है।

बड़ी रस्सियाँ :

३८१. उबहनि—कुएँ से पानी भरने के काम में आती है।

बरहा—ढेंकुर और चरखी चलाने में इसका प्रयोग होता है।

नार—यह पुर तथा घर्रा में काम देता है। दस हाथ लंबे नार को एक पयँड़ कहते हैं। एक नार दो पयँड़ लंबा होता है।

छोटी रस्सियाँ :

३८२. दवँरी—अनाज की दवाँई के समय यह रस्सी बैलों के गले में पड़े गेराँव को सम्बंधित करती है।

गेराँव—पशुओं को बाँधने के लिए उनके गले में एक रस्सी पहना दी जाती है जिसे गराँव या गेराँव कहते हैं।

पगहा—पशु बाँधने के काम में आने वाली रस्सी का यह नाम है। इसका संबंध गेराँव तथा खूँटा से होता है।

खूरा या खुराँस—भैंस के पैर में खुरी के पास एक रस्सी बाँध कर उसे खूँटे में बाँध देते हैं।

नाथी—बैल के नाक में पहनाई जाने वाली रस्सी नाथी कहलाती है। बैल नाथ दिए जाने पर शरारत नहीं कर सकता है। पौला की रस्सी भी नाथी है।

बींड़ि—यह बिड़िहा बैल तीन बैल वाली गाड़ी में सब से अगला बैल) के कंधे पर लगाई जाने वाली रस्सी है।

पेटी—यह बीड़ वाले बैल के पेट के चारों ओर रहती है इसका संबंध बीड़ से होता है।

नाधा—हर नाधने के समय जुआठा और हरिस में संबंध स्थापित करने के लिए यह काम में आती है।

जाबा—बैल के मुँह पर रस्सी की एक जाली बना कर लगाते हैं इससे जबड़े खुल नहीं सकते और बैल कुछ खा नहीं सकता।

छोर—बरहा के छोर (किनारे) पर कूँड़ बाँधने के लिए यह छोटी रस्सी है।

बरही—यह रस्सी हेंगा में बाँधी जाती है। यह बरहा से छोटी होती है।

फाना—उबहान के टोंक पर घड़ा फानने (बाँधने) के लिए रस्सी का एक गोल फंदा लगा रहता है।

डारा—यह कपड़े रखने के लिए घर में बाँधी जाने वाली रस्सी है।

ओरवन—किसी बर्तन के ओर (किनारे) या मुँहकड़े पर उसे लटकाने के लिए जो रस्सी लगाई जाती है।

दवन या दवनि—यह बेंड़ी में लगाई जाने वाली रस्सी है।

अरदावनि या अरदवान या ओरदावन—वह रस्सी जो चारपाई बुनने के आरंभ में गोड़वारी की ओर बेंड़े-बेड़ लगाई जाती है। इसे मैनी भी कहते हैं।

उनचन या ओनचन—वह रस्सा जो गोड़वारी की ओर चारपाई की बुनावट उनचने (कड़ी करने) के लिए लगाई जाती है।

जोती—यह तरजुई (तराजू) को डाँड़ी से संयुक्त करती है।

चारपाई बुनना

३८३. चारपाई को देहात में खटिया कहते हैं। इसे बढ़ई बनाता है। यों तो बढ़ई ही चारपाई बुनते हैं किन्तु देहात में और भी लोग इस कला को जानते हैं अतः यह सर्व साधारण का उद्योग हो गया है।

चारपाई के सिरहाने और पैताने की लकड़ियों को सीरो या सिरई तथा दोनों बगल की लकड़ियों को पाटी कहते हैं। इस प्रकार सिरई-पाटी मालकर

चारपाई का घेरा पूरा बनता है। चारपाई की गोड़वारी का भाग नहीं बुना जाता अतः जहाँ तक बुनावट करनी होती है वहीं पर दोनों पाटियों से संबंधित करते हुए बाध लपेटते हैं जिसे अरदावनि या अरदवान कहते हैं। पैताने का ओर बुनावट कड़ी करने के लिए जो रस्सी लगाई जाती है उसे उनचन या ओनचन कहते हैं। ओनचन दो प्रकार की होती है एक सादी दूसरा मोगली। सादी उनचन में पैताने के सीरो से अरदावनि के पास छेद म से रस्सी साधे सीधे आती जाती है। मोगली उनचन में रस्सी सूराख में से निकल कर सीधी सीरो में न जाकर उनचन की रस्सी को फँसाती हुई जाती है। यह उनचन जल्दी ढीली नहीं होती है, पर इसमें रस्सी अधिक लगती है।

३८४. बुनावट तीन प्रकार की होती है—(१) चौकली (२) छकली (३) कियारीदार। चौकली में चार-चार बाध उठते और नीचे जाते हैं और छकली में छः-छः बाध। जितने बाध एक बार में उठते और दबते हैं उन्हें सोक कहते हैं। चारपाई की बुनावट के मध्य में भी एक चौक बनता है। कियारादार बुनावट में चारपाई में कियारी बनी हुई जान पड़ती है यह बुनावट पलँग में ही की जाती है।

बुनते समय कभी-कभी बाध ऊपर-नीचे हो जाने से ऐंठन पड़ जाती है जिसे बेउन्हो कहते हैं। बेउन्ही पड़ जाने पर चारपाई की बुनावट साफ नहीं आ सकती। कभी-कभी बुनावट तिरछी होने लगती है जिसे तिरकोनी बुनावट कहते हैं; यह भी दोख (दोष) है, इसे बुनते समय ही ठीक कर लिया जाता है। बुनावट बिगड़ जाने पर उसे खोलने को उघेरब (उधेड़ना) कहते हैं।

मंगलवार को चारपाई बुनना दोख (दोष) मानते हैं। इसके अतिरिक्त पचखा (पाचक), मलमास (तीसरे वर्ष का वह चद्रमास जो अधिक मास होता है) तथा खरमास चैत और पूस के महीने) में बुनना वर्जित है। भादों में भी चारपाई नहीं बुनी जाती है।

झौआ बुनना

३८५ झौआ गृहस्थी के बड़े काम का है। पशुओं को भूसा या चारा डालने के लिए यह काम में आता है। इसके भीतरी भाग में गीली मिट्टी और गोबर मिलाकर लीप देते हैं जिससे इसमें अनाज वगैरह रखकर ढोने में बड़ी सुविधा होती है। इसके छोटे रूप को भौली कहते हैं। बोउनहरि (खेत बोने वाली) इसी में अनाज भर कर हर के पाछे बेंगा छीटती चलती है।

३८६ झौआ झाऊ (एक जंगली पौधा जो नदियों के किनारे पाया जाता है) का अच्छा बनता है पर झाऊ के स्थान पर रहठा की पतली-पतली डाँठी जिसे सार या बाती कहते हैं काम में आती है। बहुत पतली कंछियों को टिरठी कहते हैं। इन का भी इसमें उपयोग होता है।

३८७. झौआ बनाने के लिए सार और टिल्ठियों को भिगो देते हैं; इनके मुलायम पड़ जाने पर बनाना शुरू करते हैं। पहले चार या पाँच सार बिछाते हैं वही ताने काम देता है फिर टिल्ठी की एक नोक हँसुआ से **चोख** या **चोखार** (नोकीली) करके बुनना आरम्भ करते हैं। बुनाई गोलाई में होती है। क्रम से एक सार नीचे और एक ऊपर करते हुए साधारण बुनावट की जाती है। एक टिल्ठी के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी लगाते जाते हैं। बुनाई समाप्त होने पर ऊपरी भाग पर कई टिल्ठियों का **अवँठ** मारते हैं जिसे **मींढ़ब** (मींढ़ना) और उस अवँठ को **मींढ़ी** कहते हैं। मींढ़ी मार देने पर झौआ पूरा हो जाता है। इसकी बुनावट **उधिरती** खुलती) नहीं। झौआ मजबूत करने के लिए झौए की पेंदी से मींढ़ी तक रस्सी से नाथ (सी) देते हैं, नाथने की क्रिया सूजा की सहायता से की जाती है। इतना करने पर झौआ **पोढ़** (पुष्ट) हो जाता है।

खाँचा-खाँची बुनना

३८८. **खाँचा** सामान ढोने के लिए सब से बड़ा टोकरा है। इसके द्वारा भूसा ढोने में सुविधा होती है। भड़भूँज इससे सूखी पत्तियाँ ढोता है।

३८९. खाँचा बनाने के लिए रहठा की पतली-पतली टहनियाँ **बेराई** जाती हैं। इन्हें **बाती** या **सार** कहते हैं। जितना बड़ा खाँचा बनाना होता है उतनी ही अधिक बातियाँ चाहिए। खाँचा के छोटे रूप को **खाँची** कहते हैं। सोलह **गाही** (पाँच) बातियों से खाँची बनती है इससे अधिक बातियाँ होने पर खाँचा बनता है। बातियों की संख्या सदैव **जूस** होती है। बत्तीस बातियों का बड़ा खाँचा बनता है। बातियों को पहले एक रात पानी में भिगो देते हैं ताकि वे नरम पड़ जायँ। कुल बातियों को दो भागों में बाटते हैं। फिर दोनों को पाँच-पाँच बराबर भागों में बाटते हैं। इस प्रकार एक समूह में कुल बातियों का दसवाँ भाग हो जाता है। इस समूह को चौक कहते हैं। चौक पूरने की भाँति बुनाई की जाती है। पाँच चौक लेकर बुनाई आरंभ करते हैं। खाँचा की पेंदी में सूराख रहता है और उसके चारों ओर यही चौक रहते हैं। पेंदी ही मध्य भाग है। बुनावट साधारण है। एक बार में जितनी बातियाँ दबाई जाती हैं उन्हें एक सोक कहते हैं। सोकों के अलग करने को **सोक फोरब** (फोरना) कहते हैं। तदनन्तर पाँच चौकों का एक अन्य चौक बनाते हैं और दोनों चौकों को एक दूसरे पर रख कर बुनाई करते हैं। खाँचे को अपनी गोलाई में लाने के लिए बने हुए चौक के बीच में एक आदमी खड़ा हो जाता है और तीन आदमी चौक के किनारों को उठाते हैं। इस प्रकार खाँचा अपने आकार में हो जाता है। किनारे पर बाँस की कइन द्वारा **मेंड़रा** बना देते हैं। मेंड़रा बाँधने से बुनावट **निम्मन** (दृढ़) होजाती है।

३९०. बाँस की भी खाँची बनती है। इस खाँची के लिए कइन को फाड़कर

सुखा लेते हैं फिर आवश्यकता पड़ने पर भिगोकर बनाते हैं। इसकी बुनावट झौए की भाँति होती है। इसमें ताने के लिए अड़ूस या अँकोल्ह की कड़ी व सीधी डालों का प्रयोग करते हैं। यह खाँची मिट्टी, खर-कतवार और गोबर फेंकने के काम में आती है।

गोनरी बुनना

३६१. गोनरी को पुआल की चटाई कह सकते हैं। इसके बनाने के लिए जड़हनी धान का पुअरा या पोवरा चाहिए क्योंकि यह लम्बा होता है। जो धान पीटा गया हो उसी का पुअरा काम दे सकता है क्योंकि वह सीधा होता है और उसमें टूटा-टाटा पुअरा नहीं होता। गोनरी बनाते समय इस पुअरा को पुनः साफ कर लेते हैं।

३६२. जितनी लम्बी गोनरी बनानी होती है उसकी दूनी बड़ी रस्सी लेकर उसके मध्य भाग को एक खूँटी में बाँध देते हैं। फिर इस दोहरी रस्सी को दूसरी खूँटी के किनारे तक ले जाते समय उसमें पुअरा की गलिया (अंगुष्ठ और तर्जनी से जितना पुअरा पकड़ा जा सकता है) अँटकाते जाते हैं। जब पूरी रस्सी पर गलिया लग जाती है तब रस्सी को खूँटो में बाँध देते हैं। गलिया इस प्रकार बाँधते (अँटकाते) हैं कि गिरती नहीं, दोनों रस्सियों के बीच में दबी रहती है। इतना करने के बाद बुनाई आरम्भ होती है। प्रत्येक गलिया को दो बराबर भागों में बाँटते हैं यही सोक कहलाता है। इस प्रकार सोक फोर (फांड़ लेने पर एक सोक को दूसरे सोक से बझाते हैं। बुनावट का ढंग साधारण है, अर्थात् एक सोक नीचे और एक ऊपर यही क्रम रहता है पुअरा घट जाने पर और जोड़ लेते हैं लेकिन पहले से ही पुअरा की लम्बी लच्छियाँ लेते हैं क्योंकि जोड़ वाली गोनरी कमजोर होती है और जोड़ पर टूट जाती है। बुनते समय पानी का छिड़काव करते हैं क्योंकि पुअरा आरर चीज है मोड़ने से टूटने का डर रहता है। बुनाई समाप्त होने पर अवँठि (किनारे) पर चोटी की भाँति गाँछते हैं जिसे मेंढ़ा मारब (मारना) कहते हैं। अब चटाई तैयार हो जाती है। देहात में उठने बैठने तथा लेटने के लिए इसका प्रयोग होता है। यह एक प्रकार से गद्दे का काम देती है। जाड़े के लिए यह बहुत अच्छी वस्तु है। एक गोनरी लगभग एक साल चलती है।

गृहोद्योग (आ) स्त्रियों से सम्बन्धित

मिट्टी के सामान बनाना

३६३. चूल्हि और चूल्हा — इसे बनाने के लिए कनई (गड़ही या पोखरी की मिट्टी) काम में लाई जाती है। इस मिट्टी को गीली दशा में लाते हैं इसीलिए

इसे गिलई भी कहते हैं। फिर इसमें धान की **पुरेसी** या **पोरसी** (पुआल का चूर) अथवा धान की भूसी डाल कर इसे खब सानते हैं। इसके बाद प्रायः डेढ़ हाथ लम्बा मिट्टी का **पाटा** डालते हैं। चूल्हे का पाटा लगभग एक बित्ता और चूल्हि का पाटा लगभग सवा बित्ता चौड़ा होता है। पाटे को पानी से चिकनाते हैं। प्रायः स्त्रियाँ एक साथ आठ-दस पाटे डाल लेती हैं जिससे बार-बार उनकी आवश्यकता न पड़े।

३६४. जब पाटा कुछ सूख कर **कठुआय** (कठोर हो) जाता है तब वह **तोड़ा** (**मोड़ा**) जाता है। एक हाँड़ा को **औंधा** कर उसके चारों तरफ पाटे को लपेट कर उसे अर्द्धवृत्ताकार किया जाता है। इस रूप में इसे **अइला** कहते हैं। प्रत्येक अइलो से एक-एक चूल्हा बन जाता है। पाटा तोड़ने के बाद उसे मिट्टी से पोत कर चिकना कर दिया जाता है। अब एक चूल्हा तैयार हो गया। चूल्हि बनाने के लिए दो अइलों को आमने-सामने रक्खा जाता है। ऊपर से अँग्रेजी 'टी' के आकार का मिट्टी का एक **पूता** रख कर मिट्टी से जोड़ कर चिकना दिया जाता है। इस प्रकार चूल्हि के दोनों अइलों को एक पूता द्वारा जोड़ दिया जाता है। सामने की ओर चूल्हि की **दुआरि** (दरवाजा) रहती है। इसे चूल्हि का **मोहाना** भी कहते हैं। चूल्हि पर एक साथ दो बर्तन चढ़ाए जाते हैं किन्तु चूल्हा पर एक ही। विशेष अवसर पर तीन-चार अइले की बनी चूल्हि प्रयोग में आती है।

३६५ **डेहरी, कोठिला** तथा **भुड़की**—इनमें अनाज रक्खा जाता है। इनके लिए भी मिट्टी, पुरेसी डाल कर, तैयार की जाती है। डेहरी बनाने के लिए पहले भूमि पर मिट्टी का एक गोल **चाक** (चक्र) बनाते हैं फिर इसके किनारे पर मिट्टी का इतना ऊँचा गोल घेरा उठाते हैं जितना कि सँभल सके। दूसरे दिन फिर इसी को और ऊँचा बनाते हैं। जितनी ऊँची डेहरी की आवश्यकता होती है उतनी ऊँची डेहरी बना कर अन्त में मुँह को सँकरा बनाते हैं। डेहरी प्रायः अढ़ाई-तीन हाथ ऊँची होती है। कुछ स्त्रियाँ पेंदी से आधा भाग बना लेने पर आधे को अलग बनाती हैं; घर में जहाँ डेहरी रखनी होती है वहाँ पहले आधे को रख कर ऊपर से पिछले आधे को रखती हैं। ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि उसके ले जाने में सरलता हो। नीचे के आधे भाग में भूमि से प्रायः हाथ भर की ऊँचाई पर डेहरी का गोल छेद होता है जिसे **मोहान** या **अवाँन** कहते हैं। ऊपरी भाग को बन्द करने के लिए एक गोल **पिहान** (ढक्कन) बना होता है।

कोठिला कोठिली डेहरी का बड़ा रूप होता है। कुछ लोग गोल कोठिला बनवाते हैं, कुछ लोग चौकोर। गोल कोठिला बनाने के लिए पहले पेंदा तैयार कर लिया जाता है इसके बाद अलग से प्रायः हाथ-हाथ भर ऊँचे गोले छल्ले तैयार किए जाते हैं जिन्हें **पतौड़** कहते हैं। जहाँ कोठिला रखना होता है वहाँ पहले पेंदा रखकर ऊपर से पतौड़ों को एक के ऊपर एक रखकर जोड़ देते हैं। अन्तिम

पतौंड़ मँह की ओर कुछ सँकरा रहता है इसी पर पिहान रक्खा जाता है। डेहरी की तरह इसमें भी अवान रहता है।

चौकोर कोठिला बहुत बड़ा होता है। इसे बनाने के लिए अलग-अलग पाटा बनाते हैं। जहाँ इस कोठिला को रखना अभीष्ट होता है वहाँ पहले चौकोर पेंदा रख कर ऊपर से एक-एक पाटा जोड़ते जाते हैं. जिस प्रकार कि ईंटों की जोड़ाई होती है। ऊपर चौकोर पिहान से मुँह बन्द किया जाता है। इसका नीचे का अवाँन कुछ बड़ा रहता है। कोठिला को भीतर पोत कर चिकना कर देते हैं। कहीं-कहीं इन में गल्ले के अतिरिक्त गुड़-मेलो-शक्कर भी रखते हैं।

स्त्रियों का ऐसा विश्वास है कि कोठिला या डेहरी का अवाँन खुला नहीं रहना चाहिए, क्योंकि खुले अवाँन वाली डेहरी खियानत (कमी) का कारण होती है।

भुड़ुकी डेहरी का छोटा रूप है।

३६६. बोरसी—हर एक गृहस्थ के घर आग रखने के लिए यह रहती है। इसे बनाने के लिए एक बड़ी हाँड़ी को औंधा कर ऊपर से मिट्टी छोप देते हैं, फिर इसे चिकना देते हैं। मिट्टी सूख जाने पर स्वतः अलग हो जाती है; यही बोरसी है।

सूत कातना

रूई तूमना :

३६७. रूई की प्यूनी (पूनी) बनाने के लिए यह आवश्यक है कि रूई के रेसे (रेशे) एक सीध में कर लिए जायँ; इस क्रिया को तूमब तूमना) या निकियाइब (निकियाना) कहते हैं। इनमें दूसरा शब्द ही अधिक प्रचलित है। रूई निकियाने के लिए थोड़ी रूई बाएँ हाथ में ले कर उसे बाएँ हाथ के अँगूठा, तर्जनी तथा मध्यमा (अर्थात् अँगूठे की ओर से तीन अँगुलियों) से पकड़े फिर दाहिने हाथ की इन्हीं अँगुलियों से धीरे-धीरे रूई के रेशों को फैलावे। इस प्रकार फैलाते फैलाते रूई एक लच्छा के रूप में हो जाती है। फिर इस लच्छे को चार-चार अँगुल के टुकड़ों में तोड़ कर एक के ऊपर एक तहावे। तहा कर पुनः उसी भाँति इन्हें तूमे। इस प्रकार तीन-बार तूमने से रूई के रेशे रेशे अलग हो जाते हैं। आखिरी तुमाई में यदि कहीं-कहीं फुटकी (कचरा या रूई की गाँठ) मिले तो उसे तूमते समय निकाल दिया जाय इस क्रिया को फरियाइब (फरियाना) कहते हैं। फरियाने के पश्चात् रूई निखर जाती है और रेशे रेशे अलग हो जाने से वह फूल उठती है अब इस तैयार हुई रूई का फाहा कहते हैं। इसी प्रकार रूई का बहुत सा फाहा बना कर उसे एक बर्तन में तह के ऊपर तह रखते हैं। रूई तूमते समय इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि रेशे खिंचने से टूटे नहीं; तूमते समय रूई का रुख आड़े आड़े होना चाहिए।

हैं। फिर इस किल्ले के चारों ओर गोलाई में एक छोटा सा चबूतरा बनाते हैं जिस पर जाँत रक्खा जाता है। इस चबूतरे की परिधि जाँत की परिधि के बराबर होती है और इसकी ऊँचाई लगभग तीन इंच होती है। इस गोले चबूतरे को **मेड़री** कहते हैं। मेड़री से जाँत की स्थिति ऊँची हो जाती है जिससे जाँत के पीसने में सुविधा होती है। मेड़री के आस-पास स्वच्छता के लिए गोबरी से लीपते हैं जिसे **गोबरियाइब** (गोबरियाना) कहते हैं वर्षा में मेड़री पर भुकुड़ी की तरह मैल जम जाती है। इसे **लिभरो** कहते हैं। जाँत के ऊपरी पल्ले को **उपरौटा** और नीचे के पल्ले को **तरौटा** कहते हैं। उपरौटा चलाने के लिए इसमें लकड़ी का एक **हथवड़** या **जुआ** लगाते हैं। उपरौटे के बीचो-बीच पत्थर का कुछ भाग नाली के रूप में कटा रहता है, इसी में हथवड़ बैठाया जाता है। हथवड़ का वह भाग जो हाथ से पकड़ा जाता है **मुठिया** कहलाता है, यह उठा रहता है। किल्ले के स्थान पर जाँत के दोनों पल्लों में तथा हथवड़ से सूराख रहता है किल्ला इन सूराखों से होता हुआ हथवँड़ के बाहर निकला रहता है। किल्ला मध्य में होने से जाँत को यथा स्थान रखता है।

४०३. पिसाई के कार्य के लिए जाँते को छेनी से छीना जाता है जिसे **कूटब** (कूटना) कहते हैं। जाँत कूटने पर जो निशान बनता है उसे **दाँत** कहते हैं। जाँत पीसते समय एक बार में जितना अनाज पीसने के लिए डाला जाता है उसे **झोंक** या **झोंका** कहते हैं। झोंक कम पड़ने पर **पिसान** या **आटा** महीन निकलता है और झोंक अधिक पड़ने पर मोटा। पिसान को बटोर कर **उठा लेते** हैं। जाँत में अंतिम झोंक का कुछ न कुछ भाग रह जाता है। अत उसको पिसाई के लिए यह आवश्यक है कि कुछ खड़ा अनाज और डाला जाय। गेहूँ महीन (अच्छा) अनाज है इसलिए इसके पीसने पर जौ आदि मोटा अनाज डाल कर पिसाई समाप्त करते हैं इस क्रिया को **निहारब** (निहारना) या **निघारब** (निघारना) कहते हैं। आटा चालने पर जो छिलका निकलता है उसे **चोकर** कहते हैं; चोकर डालकर पीसने को **चोकर निहारब** कहते हैं। पिसाई लगातार न होने पर जाँता की गर्मी कम हो जाती है। इसे **ओहरब** (ठंडा होना) कहते हैं। इस प्रकार जाँत को ठंडा करने को **ओहराउब** (ओहराना) कहते हैं। ओहरा ओहरा कर पीसने से परिश्रम कम लगता है पर समय अधिक लगता है। जाँत पीसनेवाली को **पिसनहरि** कहते हैं। पीसने के कार्य को **पिसाई** कहते हैं। पीसने के लिए दी गई मजदूरी को **पिसौनी** कहते हैं। **पिसाई** शब्द भी इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। पिसनहरि के बैठने के लिए जाँत के पास मिट्टी का आसन बना रहता है जिसे **ओटा** कहते हैं। ओटा न रहने पर **मचिया** या **मोरा** पर बैठते हैं। गेहूँ मसीन (ओद) रहने पर पिसाई भली-भाँति नहीं होती है। जब चोकर में कुछ गूदा लगा रहता है। तब उसे **चोकरी** कहते हैं। जौ का पिसान

चालने पर जो मोटा दरबर अंश निकलता है उसे दरिया कहते हैं और जौ के छिलके को भूसी कहते हैं।

चाकी-चकरी दरना

४०४. चाकी या चकरी अनाज दरने का यंत्र है। इसमें चना, मटर, दाल, सरसों आदि दरी जाती है। जाँते की भाँति यह भी गाड़ी जाती है परन्तु बिना गाड़े भी इसका प्रयोग होता है। गाड़ी हुई चाकी को गड़उवा तथा इधर-उधर उठा कर ले आई जाने वाली को उठउवा (उठाई जाने वाली) चाकी कहते हैं। गड़ी चाकी को मान कहते हैं पर यह उन्हीं के पास होती है जिन्हें दरने का काम अधिक करना पड़ता है।

चाकी में भी तरौटा-उपरौटा होते हैं। इसमें हथवड़ नहीं होता। इस में एक किनारे पर एक छोटा गड्ढा रहता है जिसमें लकड़ी की एक खूँटी बैठा (जड़) देते हैं यही खूँटी पकड़ कर चाकी चलाई जाती है। किल्ला जब जमीन में नहीं गड़ा रहता तब वह तरौटा के मध्य के सूराख में कस कर ठोंक दिया जाता है। जितना अनाज एक बार में दरने के लिए डाला जाता है उसे झींक कहते हैं।

४०५. अरहर दरने पर दो टुकड़ा में हो जाती है। इन टुकड़ों को दाल कहते हैं। दाल दर जाने पर उसे दलझन्ना से झारते हैं। झारने से दाल और कराई (दाल का छिलका) अलग हो जाती है। फिर दाल को दुबारा झारने पर उसमें मिली हुई चूनी भी अलग हो जाती है। चूनी के बड़े टुकड़ों को खड़हुला तथा झीन-झान (बहुत छोटे) टुकड़ों को किरखुन कहते हैं। चूनी की रोटी बनाकर खाते हैं।

उरद और मूँग की धोई दाल को धोइया कहते हैं। उरद के दाल की कराई सूखने पर चिंगुर कर छोटी हो जाती है और उसी में चूनी छपटी रहती है। इस प्रकार की कराई को चुइयाँ कहते हैं।

व्यापार की दृष्टि से जिस स्थान पर दरने का काम होता है उसे दराना कहते हैं। सरसो दरने के लिए तेली चाकी का ही प्रयोग करते हैं।

दाना भूँजना

४०६. यह कार्य भड़भूँजे का है पर स्त्रियाँ भी अपनी आवश्यकतानुसार दाना भूँज लेती हैं। दाना भूँजने के लिए गगरी या हाँड़ा के नीचे वाला आधा भाग काम में आता है। इसे खपड़ी कहते हैं। इसे चूल्हे पर रख कर इसमें बालू डाल कर गरम करते हैं फिर जो दाना भूँजना होता है उसे इसी में डालकर भूँजते हैं। भूँजते समय किसी लकड़ी से चलाते जाते हैं। इस लकड़ी को चलौनी कहते हैं। भूने हुए अन्न को दाना, चरबन या चबैना या भुजैना कहते हैं। दाना करने को

दुनाब (दनाना) कहते हैं। साधारणतः निम्न प्रकार के दाने-भूँजे जाते हैं :—

जोन्हरी का लावा—जोन्हरी का कच्चा दाना भूनने पर जो दाने फूट कर खिल जाते हैं इन्हें **लावा** तथा जो नहीं खिलते उन्हें **ठोरा** या **ठुर्री** कहते हैं।

मटर और अरहर का फुटहरा—मटर और अरहर भूनने पर फूट जाती है इसीलिए इस दाने को फुटहरा कहते हैं मटर भून करके उसका आटा तैयार करते हैं। इस आटे को **मकुनी** का आटा कहते हैं।

जौ की बहुरी—बहुरी तैयार करने का निम्न ढंग है। जौ को पानी में रात भर भिगो देते हैं। सबेरे उस जौ को काँड़ा में कूट कर भूसी अलग कर देते हैं। अब इस साफ दाने को **गूरी** कहते हैं। गूरी भूनने पर **बहुरी** कहलाती है। पहली बार साधारण गरम बालू का प्रयोग होता है पर दूसरी बार बालू अत्यन्त गरम होनी चाहिए। बहुरी के साथ भूनी हुई मटर या तिरछी (अरहर का कमजोर दाना) मिलाकर **सतुआ** (सतू) बनाते हैं।

परमल—यह गेहूँ, जोन्हरी तथा बाजरा का बनता है। परमल बनाने के लिए अन्न को एक रात पानी में भिगो देते हैं, सबेरे काँड़ी में **अधकुट** (आधा कुटा हुआ) कर सूप से पछोर लेते हैं। तब इसे थोड़ा आँच पर **कउर** (गरम) लेते हैं। फिर इसे धूप में डालकर भली-भाँति सुखाकर खपरी में अधिक तप्त बालू द्वारा भूँजते हैं। बाजरा की पकी बाल खेत से लाकर खटिया पर रगड़ कर उसका दाना अलग करते हैं। फिर पूर्ववत् कउर करके काँड़ी में थोड़ा कूट कर के धूप में डाल देते हैं। सूखने पर उसे पुनः खूब गरम बालू डाल कर भूनते हैं।

चिउरी या चूरी—जौ की बाल **गदरा** (पक) जाने पर तोड़ लेते हैं फिर बाल को **भूईं** (भूमि) पर रखकर **गँड़सा** से **कल्लत-कल्ले** (धीरे-धीरे) मार कर टूँड़ को अलग करते हैं फिर सूप से **पछोर** कर काँड़ा या **ओखरी** में **मूसर** या **पहरुआ** से छाँट कर **पछोरते** हैं। तब इसे धूप में सुखाकर भूँजते हैं। चिउरी चबाने में बड़ी **सोन्हि** (सोंधी) होती है।

लाई—धान को रात भर भिगोकर सबेरे थोड़ा पानी डाल कर **उसिनते** (उबालते) हैं। जब धान में चिट चिट या पुट-पुट की आवाज आती है तब धान पक गया ऐसा समझा जाता है। इस धान को **भुँजिया धान** कहते हैं। इसे ओखली में कूटकर चावल निकालते हैं—यह चावल **भुँजिया चावल** कहलाता है। इस चावल को भूनने पर **लाई** तैयार होती है।

दाने को अँगारे में भी कउरते हैं जिसे **अँगराइब** कहते हैं। कउरने को **कोहरा करब** (करना) भी कहते हैं। **गोंइठा** या **उपरी** (उपली) की **निरधू** (निर्धूम) आग में कउरना अच्छा होता है! इस प्रकार कउरे हुए दाने में लावा नहीं तैयार होता केवल दाना **खर** हो जाता है और चबाने में **सोन्ह** (सोंध) आता है। चना-मटर कउरने की प्रथा है। खपड़ी में बिना बालू के

भूनने को भी कउरब (कउरना) कहते हैं। इसे ततइब या तताइब (तताना) भी कहते हैं।

सीना-पिरोना

४०७ साधारणतः स्त्रियाँ नए कपड़े की सिलाई नहीं जानतीं. पुराने फटे कपड़ों को सीकर मरम्मत कर लेती हैं। जब कोई कपड़ा खोंग (खोंच) लग कर फट जाता है तब उसे सी कर पुनः ठीक करती हैं। इस प्रकार की सिलाई को चीर सियब (सीना) कहते हैं। पुराने कपड़ों में कहीं-कहीं गल कर बड़ा सूराख हो जाता है ऐसे स्थान पर दूसरा कपड़ा रख कर जोड़ लगाते हैं उसको पेवन या पेवदाँ कहते हैं। पेवन रख कर पहले किनारों को सिलते हैं फिर उसे तुरपते हैं ऐसा करने से कपड़े का सिला हुआ किनारा भीतर दब जाता है और सिलाई सुन्दर हो जाती है। मशीन की भाँति हाथ से भी बखिया की जाती है। पर बखिया करने के पूर्व एक बार कच्ची सिलाई करते हैं जिसे कच्चा करब (करना) कहते हैं। दो कपड़ों को ले कर साधारण सिलाई करने को गूलब (गूलना) कहते हैं यह सिलाई कामचलाऊ होता है। जब कई परत कपड़ों को अँटकाने के लिए डोरा डाला जाता है तब उस सिलाई को लंगड़ डालब (डालना) कहते हैं। यह सिलाई पक्की सिलाई के बाद तोड़ दी जाती है। सूई में डोरा डालने को पिरोइब (पिरोना) कहते हैं।

४०८. कथरी और सुजनी—पुरानी धोती, लूगा या लुगरी वगैरह को कई परत सिल कर कथरी बनाने की प्रथा है, यह दरी की भाँति बिछौने का काम देती है। कथरी के ऊपर का कपड़ा निम्मन या नामन अर्थात् मजबूत रहता है। नए कपड़े की भी कथरी बनती है और यह सुंदर और महान होती है। सुंदरता के लिए इसमें रंगीन सूत से पशु-पक्षी के चित्र भी उरेहते हैं। इसे सुजनी कहते हैं। अच्छी सुजनी कई वर्षों तक चलती है।

पंखा बुनना

४०९. पंखे को साधारणतः बेना कहते हैं। गेहूँ के पौधे के समूचे डंठल, फसल के समय एकत्र कर लेते हैं इन्हें नरई कहते हैं। इन्हीं डंठलों के द्वारा पंखा बनाया जाता है। इन पर रंगीन सूत के फूल आदि बनाते हैं। ये कला की दृष्टि से सुंदर होते हैं।

सरहरी (सरकंडा) के ऊपर भुआ निकलता है। भुए में की सरहरी गेहूँ के डंठल की भाँति पतली होती है और इसका भी पंखा बनता है। इसे सींक या सींका कहते हैं। नरई की अपेक्षा यह मजबूत होती है।

बिनावट के लिए रंगीन सूत प्रयोग किया जाता है। सूत के सहारे ही डंठल आपस में जुटे रहते हैं। बेना आरंभ करने को बेना नाधब (नाधना) कहते हैं। जिस प्रकार अन्य वस्तुओं की बिनावट मध्य से आरंभ होती है उसी प्रकार पंखे की बिनावट भी उसके मध्य भाग से आरंभ की जाती है। मध्य भाग को पेनी (पेंदी) कहते हैं। पेनी आरंभ करने को पेनी छानब (छानना) कहते हैं। डंठल ताने का काम करता है और सूत बाने का। जिस प्रकार का बेल-बूटा डालना होता है उसी प्रकार की बिनावट करते हैं। पेनी छानने के लिए सात, नौ, ग्यारह सींकें (डंठल) लेकर उसी पर बिनना आरंभ करते हैं। पंखे में दोहरी सींकें लगाई जाती हैं। जितनी सींकें खड़े-खड़ लगती है उतनी ही बेंड़े-बेंड़; इस प्रकार पेनी का जो आकार बनता है उसे चौक कहते हैं। ज्यों-ज्यों पंखा बुनते जाते हैं त्यों-त्यों सींकें जोड़ते जाते हैं। बेना पूरा तैयार हो जाने पर कैंची से किनारा काट कर उसे बराबर कर दिया जाता है बेना के चारों किनारों पर कपड़ा लगाते हैं जिसे गोंट या गोंटा कहते हैं सुन्दरता के लिए रंगीन कपड़े का फुनना (फूल) लगाते हैं। बेना घुमाने के लिए उसके बाएँ किनारे पर बाँस की एक कइन फाड़ कर लगाते हैं। कइन का निचला भाग पंखे से बढ़ा हुआ होता है और वह फाड़ा नहीं जाता; इसी में बाँस की एक पतली फोंकी डाल देते हैं जिसे पकड़ कर बेना डोलाते (हाँकते) हैं।

मूँज के सामान बनाना

४१०. स्त्रियाँ मूँज के द्वारा भौंकी या मौनी कुरुई (छोटी मौनी), पेटारा-पेटारी (बड़ा डब्बा) आदि सामान बनाती हैं ये वस्तुएं गृहस्थो में सामान वगैरह रखने के लिए बड़ी उपयोगी होती हैं साथ ही इनके बनाने में कला का विशेष स्थान है। फूलदार मौनी को फुलही मौनी कहते हैं। बड़ी भौंका को सिकहुला कहते हैं।

सरकंडे का पौधा जब हरा रहता है तब उसे मूँज कहते हैं; हरी मूँज काट कर उसकी पत्ती को लम्बे लम्बे चीर लेते हैं। इन टुकड़ों को चार कहते हैं। पत्ती सूखने पर सरपत कहलाती है। मूँज की पत्ती को चीरने के बाद अँगुलियों में इस प्रकार लपेटते हैं कि उसका आकार अँग्रेजो के आठ के सदृश बन जाता है। इस लपेटे हुए चीर को बल्ला या बरुआ कहते हैं। इसे सुखा कर रख लेते हैं। जब आवश्यकता पड़ती है तब इसे रँग भी लेते हैं।

मूँज के साथ ही काँस की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि काँस के ऊपर ही बल्ले की बिनाई होती है। बिनने के लिए लोहे की तीली की टेकुरा या सराई होता है। सराई के ऊपरी भाग में या तो लकड़ी की मुठिया रहती है या लहठो (लाह) की। लाख की टूटी हुई चूड़ियों को इस काम में लाते हैं।

मौनी आदि आरंभ करने के लिए पहले काँस की पतली मेंडरी बनाते हैं, इसे पेनी कहते हैं। पेनी आरम्भ करने को पेनी छानब (छानना) कहते हैं। मेंडरी के एक चक्र या फेरे को बारो कहते हैं। इसी बारी को टिकुरी से छेद कर बढ़ए की सहायता से बिनते जाते हैं। जब चीर को फाड़ कर बिनने के योग्य और बारीक कर लेते हैं तब उसे दिउली कहते हैं। बिनने का ढङ्ग आदि से अंत तक एक ही है। सुंदरता के लिए बीच-बीच में फूल बनाते हैं। बारी जहाँ समाप्त होती है वहीं उसका सिरा पताल कर मिंढ़ देते हैं ताकि भद्दापन न रहे। बच्चों के लिए मूँज का घुनघुना, डलिया-डलरी-डोला भी बनता है। एक छोटा ढक्कनदार अत्यन्त सुन्दर सपटा बुना जाता है जिसमें नथिया आदि सोने के छोटे-छोटे आभूषण रखते हैं। विवाह के समय लड़की के बिदाई के साथ ये सामान दिए जाते हैं।

खण्ड २

शब्दानुक्रमणिका

[नीचे दी हुई संख्याएँ खंड १ के अनुच्छेदों को सूचित करती हैं]

लपेटे हुए भाग में अँगूठे द्वारा घुसेड़ना।

अँगोर–१२२,२८५ [संज्ञा] ईख के सिरे पर का भाग (सं० अग्र–)।

अँगोरी–२८५ [संज्ञा] ईख के सिरे पर का भाग, दे० 'अँगोर'।

अँचरी–३६६ [संज्ञा] आँचर पर लगने वाले चाँदी के दाने (सं० अंचल–)

अँजोरा पाख–३२३ [संज्ञा] शुक्ल पक्ष (सं० उज्ज्वल + पक्ष)।

अँटऊ–११४,२७६ [वि०] आँटा के रूप में बँधी हुई, दे० 'आँटा'।

अँटकाइब–३२४ [क्रि०] अँटकाना, फँसाना।

अँटारी–२२४ [संज्ञा] कोठा (सं० अट्टालिका)।

अँटिया–१०१ [संज्ञा] सरसों के डंठलों का बोझ, दे० 'आँटा'; ११२ [संज्ञा] बेहन का छोटा बोझ।

अंधा–१२५ [संज्ञा] ईख का अँखुआ जब तक कि वह जमीन के भीतर छिपा रहता है (सं० अंध)।

अइती–१७२ [संज्ञा] अधिकार, काबू (सं० आयत्तिका)।

अइला–३९४ [संज्ञा] मिट्टी का एक अर्द्ध वृत्ताकार रूप जिस से चूल्हा बनता है।

अखनी–७० [संज्ञा] एक टेढ़ी लकड़ी जिससे दँवरी के समय डंठलों को बीच में करते हैं (सं० आखनिका)।

अखरब–२४ [क्रि०] कष्टप्रद होना, खलना (सं० आखर–)।

अखरी–१२२ [वि०] बिना भिगोया हुआ (सं० अक्षर–)।

अखलवट–२१३ [संज्ञा] भौं (अक्षि + इल्ल + पुट–)।

अगहनी–५९,१०३ [वि०] अगहन में होने वाला (सं० अग्रहायण–)।

अछारब–६१,२६७ [क्रि०] कुदाल या खुरपा घिस जाने पर उस पर नया लोहा चढ़ाना (सं० आच्छाद्–)।

अठइयाँ–१५० [संज्ञा] आठवें दिन (सं० अष्ट-)।

अठवाँसा–७,१२० [वि०] वह खेत जो आठ मास—आषाढ़ से माघ तक—ईख बोने के लिए जोता गया हो (सं० अष्ट मास-)।

अड़ान–१८२ [संज्ञा] पशुओं के ठहरने का स्थान (प्रा० अड्ड)।

अड़ार–१८० [संज्ञा] चौपायों के रहने का हाता (हिं० अड़ाड़ प्रा० अड्ड)।

अड़ाहर देब–१७७ [क्रि०] भैंस का भैंसाने के लिए चोकरना (तु० डहकना)।

अड़ुस–३९० [संज्ञा] एक जंगली पौधा (सं० अटरूष प्रा० अडरूह)।

अथरा–१३३,२४९ [संज्ञा] मिट्टी का एक छिछला पात्र जिस में कुम्हार घड़ा रख कर उसकी पेंदी थापी से ठोंक-ठोंक कर ठीक करता है (सं० आस्थाल-)।

अथिर जाब–१७७ [क्रि०] भैंस के भैंसाने की इच्छा का शांत हो जाना (तु०, हिं० थिरना, सं० आस्थिर)।

अध कुट–४०६ [वि०] आधा कुटा हुआ (सं० अर्द्ध + कुट्टन)।

अध छटंकी–३२८ [संज्ञा] आधी छटाँक (सं० अर्द्ध + षट् + टंक) ।

अधपई–३२८ [संज्ञा] आध पाव (सं० अर्द्ध + पादिका) ।

अधवार–२१६ [वि०] आधा भाग (अर्द्ध + पाल 7 वाल 7 वार); मुहा० **अधवार खोलब**–लकड़ी की सिल्ली चीर कर दो भागों में करना ।

अधहरा–१५ [संज्ञा] छोटे फाल वाला हल जो नौहरा का छोटा रूप कहा जा सकता है (सं० अर्द्ध + हल) ।

अधेड़–१७० [संज्ञा] जीवन की आधी अवस्था जो पार कर चुका हो (अर्द्ध = आधा + एड़) ।

अनंता–३५७ [संज्ञा] बाजू में पहनने का एक आभूषण (सं० अनन्त–); ३६९ अनंत चतुर्दशी को बाजू में पहना जाने वाला सूत का एक गंडा जिस में चौदह गाँठें होती हैं ।

अन्हियारा पाख–३३३ [संज्ञा] कृष्ण पक्ष (सं० अंधकार + पक्ष) ।

अपटन–८० [संज्ञा] दे० 'उबटन' ।

अफार–७,२३, ५८,९७, ११५ [संज्ञा] बिना जोता हुआ खेत (अ + स्फाटन) ।

अबगा–२७७ [वि०] बिना मिलावट का, निसोख, सच्चा । यथा, अबगा रस (ईख का शुद्ध रस जिसमें पानी न मिला हो) ।

अमनिया–२२९ [संज्ञा] अनाज आदि की बिनकर की गई सफाई ।

अमहा–१६५ [वि०] मांस वाला । यथा, अमहा बैल (जिस बैल के शरीर पर कहीं अतिरिक्त मांस लटक रहा हो) (सं० आम–) ।

अरइठ–३ [संज्ञा] खेत के नीचे की कड़ी मिट्टी (ने० अरट्ठ = कड़ा, सं० अरिष्ट); ११ मुहा० **अरइठ मनाइब**–अरइठ का प्रभाव पड़ना; ८८ **अरइठ मिटब**–अरइठ का प्रभाव मिटना ।

अरदवान–३८२ [संज्ञा] दे० 'अरदावनि' ।

अरदावनि–३८२ [संज्ञा] चारपाई के पैताने में बुनावट कसने के लिए जो डोरी लगाई जाती है (हिं० ओर, सं० अवर + दामनिका–) ।

अरसी–३५९ [संज्ञा] तर्जनी में पहनने का आभूषण विशेष (सं० आदर्शिका)

अरहर–९६,४०५ [संज्ञा] एक प्रक का अनाज (सं० आढ़की) ।

अरुई–६० [संज्ञा] एक तरकारी (स० आलु–)

अरुझब–९० [क्रि०] अरुझना (सं० आरुध्-) ।

अल्हर–१६० [वि०] सुकुमार । यथा, अल्हर बछड़ा (हिं० अल्हड़) ।

अवँठ-अवँठि–२१७, ३८७, ३९२ [संज्ञा] किनारा, बारी (हिं० ओंठ सं० ओष्ठ, प्रा० ओट्ठ) ।

अवहब–२९ [क्रि०] ढेंकुर का टेढ़े-मेढ़े चलना (सं० अप-धाव् ?) ।

अवान–२५८,३९५ [संज्ञा] दे० 'आँवन' ।

अवाल–३१७, ४०१ [संज्ञा] चरखे की पटरियों (कवँरी) पर लगी हुई रस्सी जिस पर माल चढ़ाया जाता है ।

अवाह–१८,२१,२२१, [वि०] ढालू (सं० आवाह); १४२ गहिर । यथा, अवाह

जोताई ।

असनियाइब–२६२ [क्रि०] असनियाना, बैल को तेज हाँकने के लिए उसके दोनों जंघों के बीच के भाग को स्पर्श करना (सं० आसंज्ञा–) ।

असनी–३२२ [संज्ञा] छोटा आसन (हिं० आसनी, सं० आसन) ।

असरेखा–११५ [सं०] एक नक्षत्र (सं० अश्लेषा) ।

असाढ़–१२० [संज्ञा] बारह मास में से एक मास (सं० आषाढ़) ।

अहरी–१६३ [संज्ञा] लेहँड़ी (सं० आहरिका; आहर्=एकत्र होना); २०१ जानवरों के पानी पीने के लिए बनवाया गया हौज ।

अहारब–२४३ [क्रि०] लकड़ी को काट-छाँट कर काम के योग्य बनाना (हिं० अहारना (सं० आ+धार्-) ।

अहीर–१८८ [संज्ञा] एक जाति विशेष (स० आभीर) ।

आ

आँ–२१ [अ०] बैलों को चलाने के लिए हरवाहे की एक बोली ।

आँख–३३२ [संज्ञा] बाँस के वृक्ष में गाँठ पर आँख सदृश चिह्न जहाँ से अँखुए निकलते हैं (सं० अक्षि, प्रा० अक्खि) ।

आँगन–२२१ [संज्ञा] मकान के भीतर का वह मध्य भाग जो खुला रहता है (सं० अंगण) ।

आँच–२४० [संज्ञा] ताप (सं० अर्चिस्-) ।

आँटा–११६ [संज्ञा] सनई के पौधों का बोझ ; २०४ ईख की पत्तियों का छोटा-छोटा गट्ठर ।

आँटी–११६ [संज्ञा] आँटा का अल्पा० ।

आँत–१२६ [संज्ञा] भीतरी भाग (सं० अन्त्र) ।

आँतर–२२ [संज्ञा] जोतने के लिए खेत का जितना भाग घेरते हैं उसे हराई कहते हैं । एक हराई समाप्त होने के पूर्व ही दूसरी हराई फान लेते हैं, पहली हराई के छूटे हुए भाग को दूसरी हराई के साथ जोतते हैं । इस छूटे हुए भाग को ही आँतर कहते हैं (सं० अंतर); १३७ [संज्ञा] पान की श्रेणी जो थोड़े-थोड़े अंतर पर लगाई जाती है ।

आँवन–२५८ [संज्ञा] पहिये की मूड़ी में धुग के लिए जो मुँह होता है उसी में एक लोहा लगा रहता है जिससे लकड़ी धुग की रगड़ से न कटे (सं० आनन) ।

आँवाँ–२४०, २४१ [संज्ञा] कुम्हार का भट्ठा जिस में बरतन पकाया जाता है (सं० आपाक) ।

आटा–७८, ४०३ गेहूँ-जौ आदि का पिसान (सं० अट्ट=अन्नं) ।

आभा–१७८ [संज्ञा] आपत्ति, तु० 'हाबा' ।

आरर–३००, ३९२ [वि०] जिस में लसी न हो । यथा, आरर शीरा, आरर पुआरा ।

आरा–२४२ [संज्ञा] लोहे का एक औजार जिस से लकड़ी चीरी जाती है (फ़ा० अर्र); २४६ मुहा० **आरा साधब**-लकड़ी चीरते समय यह देखना कि आरा निश्चित स्थान पर चल रहा है ।

आराकस–२४२ [संज्ञा] आरा खींचने वाले (फ़ा० आरा+कश) ।

आरागज–२५६ [संज्ञा] पहिये की

मूड़ी और पहिये के पुट्ठों को संबंधित करने वाली आठों पटरियाँ (सं० आर + गज = आठ)।

आरि–१२ [संज्ञा] किनारा, मेंड़ (सं० आर–); मुहा० **आरि झारब**-मेंड़ को काट-छाँट कर ठीक करना। **आरि फेंकब**-मेंड़ की बगल की मिट्टी को खेत में फेंकना। **आरि मारब**–दे० 'आरि झारब ;१३ कहा० **आरि मेंड़ सुडौल करि रहै न पावे दूब। सब से पहिले बोइए खेत जोत के खूब॥**

आरी–२४२ [संज्ञा] आरा का छोटा रूप दे० 'आरा'।

आरीपास–५ [अ०] निकट।

आलू–६०, १४१ [संज्ञा] एक प्रकार का कंद (सं० आलु) मुहा० **आलू भरब**-आलू के खेत में पानी भरना।

इ

इन्नर–१६० [संज्ञा] पेउस को सोंठ-गुड़ डालकर जब पकाते हैं तब उसे इन्नर कहते हैं (सं० अनीर ?); तु० इनरी।

इनारा–१९३ [संज्ञा] कुआँ (हिं० इंदारा सं० *इन्द्रागार); १९३ मुहा० **इनारा बँधवाउब**–इनारा खोदवा कर उसे पक्के ईंटों द्वारा तैयार कराना।

इयाँ–१८४ [अ०] पशुओं के बुलाने की सांकेतिक बोली। (सं० अत्र, प्रा०एत्थ-)।

उ

उँचास–५ [संज्ञा] ऊँचा स्थान। यथा, उँचासे का खेत।

उकठब–९९,११५, १२८ [क्रि०] सूखना (सं० उत्कृष्ट-)।

उकठा–९३ [वि०] सूखा, दे० 'उकठब'।

उकड़ा—४७ [वि०] बिना सींचा खेत (सं० उत्कट)।

उकन्हब–२६२ [क्रि०] बैलों का जुआ फेंक कर अलग हो जाना; बैलों के पल्ला फेंक कर अलग हो जाने पर 'बैल उकन्हि गइलें' कहा जाता है।

उकाव–७०,७१ [संज्ञा] दँवाई के बाद की एकत्र राशि (सं० उत्कारः = राशि, सं० उत्काम = निकल जाना)।

उकाढ़ि–२९ [वि०] जो ढेंकुर चलने में हिलती डुलती हो (प्रा० उक्कड्ढ-)।

उकिलब–४१ [क्रि०] छिल जाना (सं० उत्कल् = खुलना)।

उक्खुड़–११७ [संज्ञा] ईख (सं० इक्षु 7 इक्खु-उक्खु)।

उखकटिया–६२ [वि०] ऊख काटने वाली। यथा, उखकटिया कुदार (सं० इक्षु + हिं० कटिया)।

उखमर्जा–१७९ [वि०] बदमाश। यथा, उखमजी बैल।

उखाव–८, ५६, १२० [संज्ञा] ईख बोने के लिये जो खेत तैयार किया जाता है।

उज्जर–१,१११ [वि०] श्वेत (सं० उज्ज्वल)।

उजरकी–१,८७, १३२,१५५ [वि०] उज्जर का स्त्री०, दे० 'उज्जर'।

उठउववा–४०४ [वि०] उठाई जा सकने वाली वस्तु यथा उठउववा चाकी (हिं० उठाना सं० उत्थाप्-)।

उठाइब–४०२ [क्रि०] किसी फैली हुई वस्तु को एकत्र कर रखना।

उठान–१५८ [संज्ञा] वह समय जब कि

पशु जोड़ा खाने के लिए अपनी इच्छा प्रकट करता है। यथा, गाय उठान पर उठी है (सं० उत्थान)।

उठावन–२१ [संज्ञा] पहली वर्षा के बाद की पहला जुताई (हिं० उठाना, सं० उत्थापन)

उठौनी–२१ [संज्ञा] उठावन का स्त्री०।

उड़ेलब–२८५ [क्रि०] किसी द्रव पदार्थ को किसी पात्र में गिराना।

उतन्ना–३६५ [संज्ञा] दे० 'उतरन'।

उतरंग–२१३,२५३ [संज्ञा] दरवाजे की ऊपरी चौखट (सं० उत्तराङ्ग-)।

उतरन–३६५ [संज्ञा] कान के ऊपरी भाग में पहनी जाने वाली बारी (सं० उत्तरण-)।

उदंत–१६७ [वि०] बिना दाँत का यथा, उदंत बाछा (सं० उद्दन्त)।

उदहब–२३३ [क्रि०] किसी पात्र से द्रव पदार्थ को उलच कर किसी दूसरे पात्र में डालना तु० उबहब।

उधिरब–३८७ [क्रि०] उधड़ना, खुल जाना, अलग हो जाना (सं० उद्धर्-)।

उधेड़ब–३८४ [क्रि०] चारपाई की बुनावट खोलना। दे० 'उधिरब'।

उधेरब–२२१ [क्रि०] खपड़े की छाजन बिगाड़ना, दे० 'उधेड़ब'।

उनचन–३८२, ३८३ [संज्ञा] चारपाई के पायताने की रस्सी जो चारपाई कड़ी करने के लिए लगाई जाती है (सं० उदंचन-)।

उनचब–३८२ [क्रि०] चारपाई के पायताने की उनचन को खींच कर कड़ी करना (हिं० ओनचना सं० उदंचन-)।

उपरवार–५ [संज्ञा] उँचा स्थान। यथा, उपरवारे का खेत (सं० उपरि–)।

उपरी–४०६ [संज्ञा] गोबर पाथ कर बनाया हुआ ईंधन (हिं० उपली, सं० उपल = पत्थर; तु० सं० उत्पली)।

उपरौटा–४०२,४०४ [वि०] ऊपर का का भाग (सं० उपरि + पुट-)।

उपल्ला–१९,१८८ [वि०] ऊपर का भाग (सं० उपरि + प्रा० विल्ल)।

उफान–३०० [संज्ञा] उबाल (सं० उत् + फण–)।

उबटन–२३३ [संज्ञा] शरीर में लगाने के लिए एक घिसा हुआ पदार्थ (सं० उद्वर्तन, पा० उब्बट्टन)।

उबहब–२६ [क्रि०] किसी चीज से पानी उलीचना सं० उद्वह्–)।

उबहनि–२८१ [संज्ञा] रस्सी (सं० उद्वाहनिका, प्रा० उब्बहणिआ)।

उभारब–१८७,२५४ [क्रि०] उभाड़ना, उठाना (सं० उद्भर्, प्रा० उब्भर् का स० रूप)।

उम्मियाब–७८ [क्रि०] जौ-गेहूँ के बाल के दानों का पोढ़ाना।

उम्मी–७८ [संज्ञा] जौ–गेहूँ की अधपकी बाल जो भूनी गई हो, जौ-गेहूँ की बाल के साथ हरी मटर भून कर बनाया हुआ पदार्थ (स० उम्बी)।

उरेहब–४०८ [क्रि०] चित्र काढ़ना (सं० उल्लेख-)।

उलचब–४७ [क्रि०] किसी चीज से पानी उठा कर उसे अलग गिराना।

उलझा फेंकब–१९५ [क्रि०]

फरुहे द्वारा मिट्टी खनकर फेंकना (सं० अव + रुध्यते)।
उलट जाब–१५८ [क्रि०] गर्भ गिर जाना (सं० उत् + *लट्यते)।
उलदा–२९२ [संज्ञा] लोथे से उलटी हुई गीली शक्कर।
उलरुआ–२५७ [संज्ञा] बैलगाड़ी के उलार होने पर उसे रोकने वाली लकड़ी, दे० 'उलार'।
उलार–२५७ [वि०] उलरी हुई या पीछे झुकी हुई गाड़ी।
उसरउड़ी–१८५ [संज्ञा] एक प्रकार की ऊसर की घास।
उसरहा–४ [संज्ञा] ऊसर वाला (सं० ऊषर–)।
उसरही–१ [संज्ञा] उसरहा का स्त्री०।
उसराह–१ [संज्ञा] ऊसर युक्त जमीन।
उसरौड़ी–१ [संज्ञा] दे० 'उसरउड़ी'।
उसिनब–३६८, ४०६ [क्रि०] उबालना (हिं० उसिनना, सं० उत्स्विन्न)।

ऊ

ऊँख,ऊँखि–११७ [संज्ञा] दे० 'ऊख'
ऊख–११७ [संज्ञा] ईख (सं० इक्षु)।
ऊखि–११७ [संज्ञा] वही।
ऊन–३१४ [संज्ञा] भेड़ के बाल (सं० ऊर्ण)।

ए

एक चक–६ [वि०] एकत्र। यथा, एक चक खेत (–चक्र)।
एकबैलिया–२५४ [वि०] एक बैल वाली यथा एकबैलिया गाड़ी।
एकनद्धी–४० [वि०] जब नाधा महदेउवा के दोनों ओर न हो कर एक ही ओर हो (सं० नद्ध्री,नद्ध–)।
एक फर्दा–८ [वि०] एक फसल वाला। यथा, एक फर्दा खेत (फा० फ़र्द)।
एकरस जाब–१४२ [क्रि०] तरी न रहना। यथा, खेत एक रसि गा अर्थात् खेत में नमी नहीं रह गई (सं० एक रस)।
एकरसा–१२७ [वि०] ठीक समय पर गोड़ाई न होने पर खेत की तरी नष्ट हो जाती है, ऐसे खेत को एक रसा कहते हैं। **एक रसा गोड़ाई**–ईख के खेत की कियारी गिराने पर ताव पर की गई गोड़ाई।
एकरौनी–७५ [संज्ञा] एक या पहली बार की। यथा, एकरौनी सिंचाई।
एक लत्ती–२५ [वि०] जिस समय हेंगे पर केवल एक पैर रहता है उस समय उस हेंगे को एक लत्ती कहते हैं। मुहा० **एक लत्ती मारब**–हेंगा पर केवल एक पैर का दबाव देकर उसे चलाना।
एकवइया–४८ [संज्ञा] दे० 'एकवैया'।
एकवैया–४६ [संज्ञा] मेंड़ और बरहा के बीच का भाग।
एकाध–१५७ [वि०] कोई-कोई। यथा, एकाध गाय।
एक्की गाड़ी–२५४ [संज्ञा] एक बैलिया गाड़ी।
एड़ा–३६ [संज्ञा] पुरवट में धुरई वाले बाँसों के नीचे का भाग जो जमीन में गड़ा रहता है (सं० एडुक=एड़ी)।

ऐ

ऐना–३७१ [संज्ञा] शीशा, दर्पण (फ़ा०

आईना)।

ऐरन–३६५ [संज्ञा] कान का एक आभूषण (अँ० इयरिंग)।

ओ

ओंड़–२२८ [संज्ञा] गड्ढा (सं० अवट, अप० अड, प्रा० अअड, म० आड = छोटा कुआँ)।

ओखर–३२० [संज्ञा] गड़रियों का कम्मल बुनने का एक औजार जिस में ताने का एक सिरा लपेटा रहता है।

ओखरी–४०६ [संज्ञा] काँड़ी (स० उलूखल)।

ओगरब–२०१ [क्रि०] दूध दुहने के पूर्व गाय के स्तन में दूध उतरना।

ओगारब–२०१ [क्रि०] कुएँ का कीचड़ निकाल कर उसकी सफाई करना (सं० अवगारयते)।

ओछरा–५३ [संज्ञा] पशुओं के नीचे बिछाई गई पत्ती जो मल-मूत्र से खाद के रूप में हो जाती है।

ओछा काना–१६७ [वि०] जिस बैल के आठ दाँत पूरे न हों। यथा, ओछा काना बैल।

ओझरी–२६३ [संज्ञा] पेट के भीतर की वह थैली जिस में खाया हुआ पदार्थ रहता है (सं० अव + झर < त्त्वर्–)।

ओट–२६० [संज्ञा] रोक।

ओटा–४०३ [संज्ञा] पिसनहरि के बैठने का ऊँचा स्थान।

ओठगाइब–२३५ [क्रि०] किसी वस्तु के सहारे टेकाना (अव + स्था-अथवा अव + स्थग्-); २५३ [क्रि०] दरवाजा बन्द करना। तु० ओढ़कावब् (प्रा० गं)।

ओढ़ब–२१२ [क्रि०] शरीर पर वस्त्र डालना (सं० उपवेष्ठन प्रा० आवेड्ढन)।

ओदाई–१२६ [क्रि०] नमी (सं० आर्द्र,-प्रा० ओद्द –)।

ओनचन–३८२,३८३ [संज्ञा] दे० 'उनचन'

ओनाइब–३८ [क्रि०] झुकाना (सं० अवनामयति)।

ओन्हउवा–२१८ [वि०] औंधा (सं० अवाङ्धा–)।

ओन्हाउब–२३१ [क्रि०] औंधाना।

ओयट–११ [संज्ञा] नमी (सं० आर्द्र) तु० अरइट। मुहा० **ओयट खाब**–पानी खाना, खेत की खनी हुई सूखी मिट्टी पर पानी पड़ जाना।

ओयर–१५८ [संज्ञा] थन (सं० उदर) मुहा० **ओयर छोड़ब**–बियाने के पूर्व थन में दूध उतरना।

ओर–२०६ [संज्ञा] किनारा (सं० अवर = किनारा; प्रा० ओर)।

ओरदावन–३८२ [संज्ञा] चारपाई के पैर की ओर लगी रस्सी, उनचन (सं० अवर + दामनिका)।

ओरवन–१८२ [संज्ञा] बर्तन को लटकाने की रस्सी (सं० अवर–)।

ओरौती–२०३,२०८ [संज्ञा] छाजन की ओरी (सं० अवर–)।

ओवैट–११ [संज्ञा] दे० 'ओयट'।

ओसउनी–७१ [संज्ञा] ओसाने का कार्य।

ओसनहरि–७१ [संज्ञा] ओसानेवाली स्त्री।

ओसर–१७७ [संज्ञा] जवान भैंस (सं० उपसर्या)।

ओसवाई–७१ [संज्ञा] ओसाने की क्रिया ।

ओसवैया–७१ [संज्ञा] ओसाने वाला ।

ओसाइब–७१ [क्रि०] अनाज ओसाना (सं० * अवश्यायति); २८६ [क्रि०] कड़ाह के शीरे को ठंडा करने के लिए उसे उठा-उठा कर ऊपर से गिराना ।

ओसाई–७१ [संज्ञा] ओसाने का कार्य ।

ओसार–२०३ [संज्ञा] छप्पर की ओरौती के पास बैठने-उठने के लिए एक छाजन ; २२२ आँगन के चारों ओर का बैठने-उठने का स्थान । घर के बाहर का बैठका (सं० उपशाल) ।

ओसारा–२०३,२२२ [संज्ञा] दे० 'ओसार' ।

ओह्‌ब–६९, ११० [क्रि०] छिटकाना, अस्त-व्यस्त करना (अव + धा-) ।

ओह्‌रब–४०३ [क्रि०] शांत या ठंडा पड़ जाना (सं० अवहरण) ।

ओह्‌राउब–४०३ [क्रि०] ओहरब का प्रे० ।

ओहाइन–१५८ [संज्ञा] ओहाने का कार्य, वह समय जब कि गाय बरदाने की इच्छा प्रकट करती है । दे० 'ओहाब' ।

ओहाइल–१५८ [वि०] ओहाई हुई ।

ओहाब–१५८ [क्रि०] बरदाने के लिए गाय का इच्छुक होना ।

ओहार–४१ [संज्ञा] बार, फेरा, चक्कर । एक समय में कुछ लोगों द्वारा किया गया कार्य ।

ओहुआ–२७६ [वि०] छीटी हुई । यथा, ओहुआ पतई ।

औ

औंझा–२७५ [संज्ञा] नागा, अवकाश (सं० अनध्याय, ने० अंझा); मुहा० **औंझा मारब**–नागा करना ।

औंधा–३९४ [वि०] उलटा (अवाङ्‌+ धा-); २१८ मुहा० **औंधा मारना**- थपुआ को उलट कर रखना ।

औटी–२८८ [संज्ञा] औटाया हुआ रस (हिं० औटना, सं० आवर्त्तन प्रा० आवट्टन) ।

औला–१२१ [संज्ञा] ईख नापने का माप-एक औला बराबर ४०० हाथ ।

औसब–१२१ [क्रि०] किसी नम चीज को एकत्र रखने पर उसमें गर्मी पैदा हो जना ।

क

कंकड़ी–२३७ [संज्ञा] छोटे-छोटे कंकड़ (सं० कर्कर) ।

कँकरह्‌ी–३ [वि०] कंकड़ युक्त । यथा, कँकरही माटी ।

कँकरह्‌वा–७ [वि०] कंकड़ युक्त ।

कंघी–१६१,३७१ [संज्ञा] बाल झाड़ने व बाल काटने के समय प्रयोग आने वाला एक औजार (सं० कंकती, प्रा० कंकई । खड़ी बोली से) ।

कंछा–९७, ३३३ [संज्ञा] पेड़ की शाखा (सं० कंचका) तु० 'कइन' ।

कंछादार–२७ [वि०] कंछा से युक्त ।

कंजहा १६५ [वि०] कंजा सदृश नेत्र वाला । यथा, कंजहा बैल (सं० कञ्ज) ।

कँटवासी–३१९ [संज्ञा] एक प्रकार का बाँस ।

कंठा–३५६ [संज्ञा] गले में पहनने का

भूषण (सं० कंठक); १७१ [संज्ञा] बैल के गले में पहनाई जाने वाली एक रस्सी।
कंडा–२४० [संज्ञा] गोबर का सूखा छोत या चोत जो ईंधन के काम में आता है (सं० स्कंदन = मलत्याग)।
कंडी–४९ [संज्ञा] उपली दे० 'कंडा'।
कँवरी–१४० [संज्ञा] पचास पान की एक कँवरी; ४०१ [संज्ञा] चरखे की मूड़ी से सम्बन्धित पटरियाँ।
कइन–९७,२०४,३३३ [संज्ञा] बाँस की पतली-पतली कंछियाँ (सं० कंचिका); ९९ [संज्ञा] अरहर की पतली कंछियाँ।
कइनहिया–११९ [वि०] कइन सदृश।
कउरब–४०६ [क्रि०] आग पर रख कर भूनना (हिं० कौरना, कौड़ा सं० कुड ?) तु० 'कहुलब'।
ककना–३५८ [संज्ञा] कलाई का एक आभूषण (सं० कंकण)।
ककना–२७० [संज्ञा] ईख पेरने की मशीन के मूसर में बने हुये दाँत (जब ये दाँत एक दूसरे में फँसते चलते हैं तब इन का रूप ककना–एक हाथ की अँगुलियों की घई में दूसरे हाथ की अँगुलियों को फँसाने की मुद्रा–के सदृश होता है)।
कचट–२१ [वि०] दे० 'कच्चा'।
कचरा–५१ [संज्ञा] पशुओं के नीचे बिछाई गई पत्ती जो खाद बन जाती है (सं० कच्चर)।
कचरी–२९९ [संज्ञा] मैल।
कचार–३२५ [संज्ञा] खाद।
कचौड़ीदार–३५४ [वि०] कचौड़ी की आकृति की वस्तु। यथा, कचौड़ीदार गहना।
कच्चा–४०७ [वि०] जो पका न हो। मुहा० कच्चा करब–कच्ची सिलाई करना।
कच्ची–३ [वि०] नम। यथा, कच्ची माटी; ३२६ कच्ची घानी–जिस घानी से पूरा-पूरा तेल न निथरा हो।
कजरी–१५६ [संज्ञा] कालापन (हिं० काजल सं० कज्जल)।
कजरौटा–२६८ [संज्ञा] काजल रखने का लोहे का एक विशेष प्रकार का डिब्बा (सं० कज्जल + पुट-)।
कटवैया–६६,२७६ [संज्ञा] काटनेवाला (सं० कर्त्तन, प्रा० कट्टन)।
कटाई–६५ [संज्ञा] खेत कटाने का कार्य।
कटिया–६५,१२१ [संज्ञा] वही।
कटुआ–१४१ [वि०] काटा हुआ। यथा, कटुआ आलू (सं० कर्त्तन)।
कटुई–१८९ [वि०] काटी हुई। यथा, कटुई दही।
कठउवा–२६९ [वि०] काठ का। यथा, कठउवा कोल्हू। (सं० काष्ठ-)।
कठुआब–३९४ [क्रि०] सूखना या कड़ा होना (सं० काष्ठ-)।
कढ़ाव–४१ [संज्ञा] कुएँ की जितनी गहराई तक का पानी ढेंकुल द्वारा निकला जाता है।
कड़री–१४९ [संज्ञा] मूली का कंछा (सं० कांड + र)।
कड़ा–३६१ [संज्ञा] पैर का एक आभूषण विशेष (सं० कटक)।
कड़ाह–२८४ [संज्ञा] एक बड़ा लोहे का पात्र (सं० कटाह)।
कड़ी–३ [वि०] कठोर। यथा, कड़ी माटी; २१५ [संज्ञा] घर की छाजन में लकी-चकी

लगने वाली लकड़ियाँ (सं० कट); मुहा० कड़ी बैठाइब—छाजन में कड़ी लगाना।

कतनी—२०४ [संज्ञा] ढेरा जिस पर सुतली काती जाती है (सं० कर्त्तन, प्रा० कत्तन)।

कतरनी—१४० [संज्ञा] कैंची (हिं० कतरना, सं० कर्त्तरिका)।

कतरी—३४६ [संज्ञा] कतरनी की भाँति सोनार का एक औजार (सं० कर्त्तरी); ३५८ कलाई का एक आभूषण-विशेष।

कतारा—११८ [संज्ञा] एक प्रकार का मोटा गन्ना (सं० कांतार)।

कथरी—४०७ [संज्ञा] पुराने कपड़ों का बनाया हुआ बिछावन (कंथा+री)।

कदाउर—१८५ [संज्ञा] खेत की घास जिसे पशु चरते हैं (सं०कन्द+अवली)।

कनई—२३४ ३९३ [संज्ञा] गीली चिकनी मिट्टी जो किसी गड्ढे से निकाली जाती है।

कनगुरी—३६२ [संज्ञा] कनिष्ठा अँगुली।

कनचिप्टी—१५३ [वि०] जिस पशु के कान सींग से सटे हों (कर्ण—)।

कनफूल—३६५ [संज्ञा] कान का एक आभूषण विशेष (कर्ण+फुल्ल)।

कनस्तर—४८ [संज्ञा] एक टीन का बड़ा डिब्बा जिसमें तेल आदि रक्खा जाता है (अँ०कनिस्टर)।

कनही—११९ [संज्ञा] एक प्रकार की कीड़े से खाई हुई (सं० काण—)।

कनेठा—२२४ [संज्ञा] कोल्हू के कातर में लगी हुई एक लकड़ी जो कोल्हू के बाहरी घेरे से सट कर चलती है (हि० कान+एठा, सं० कर्ण+वेष्टन)।

कन्ना—२७ [संज्ञा] कंछा (सं० कर्ण)।

कपुरी पान—१३६ [संज्ञा] पान की एक जाति विशेष जिस में कपूर की सुगंध आती है।

कब्रिसाह—२ [संज्ञा] दे० 'काब्रिस'।

कमरकस—३६९ [संज्ञा] एक डोरी जिससे स्त्रियाँ धोती को कमर के पास बाँधती हैं (फ़ा० कमरकश)।

कमरबल्ला—२२२ [संज्ञा] मकान के छाजन में लगने वाली एक लकड़ी।

कमरा—३२२ [संज्ञा] कम्मल (सं० कंबल)।

कमाई—७ [संज्ञा] खेत कमाने का कार्य।

कमाब—७ [क्रि०] संपन्न करना (प्रा० कम्म, सं० कर्म नामधातु); मुहा० खेत कमाब—खेत में खाद-पास डाल कर उसे तैयार करना; २७४ गाँव कमाब—गाँव का डाँगर ढोना।

कमायल—३,७ [वि०] कमाई हुई। यथा, कमायल मिट्टी।

कमोरा—२३३ [संज्ञा] मिट्टी का एक बर्तन।

कमोरी—१६० [संज्ञा] कमोरा का स्त्री०।

करइल—२ [संज्ञा] काली मिट्टी (हिं० करैल सं० काल—)।

करकन्हा—१६४ [वि०] काले कंधे वाला बैल (सं० काल+स्कंध)

करगह—२१२ [संज्ञा] करघा (फ़ा० कारगाह वा सं० कारु=शिल्पी)।

करछहूँ—१, ८७ [वि०] कुछ काला (काल+छाया—)।

करधन—३६९ [संज्ञा] बच्चों की कमर में पहनाने के लिए सूत की एक डोरी।

करधनि—३६० [संज्ञा] स्त्रियों का कमर में पहनने का एक आभूषण (सं० कटि+धानी)।

करपब—११२ [क्रि०] प्रफुल्लित होना (सं० क्लृप्—)।

करमोउब—२६१, ३५९ [क्रि०] पानी लगा कर गीला करना।

करसी—२४१ [संज्ञा] गोहरा के छोटे-छोटे टुकड़े (सं० करीष)।

करा—३७४, ३७७ [संज्ञा] सन का लच्छा जो काता जाता है; ३८० बेकहल के रेशों का लच्छा (सं० कटक)।

कराइन—५३, १२०, १४०, २३८, ३३२ [संज्ञा] ईख की पुरानी पत्ती।

कराई—४०५ [संज्ञा] अरहर के दाल का छिलका।

कराही—१९१ [संज्ञा] कराह का अल्प० (सं० कटाह—)।

करिअई—१५५ [वि०] दे० 'करियई'।

करियई—८७ [वि०] काला (सं० कालक)।

करिया—१७४ [वि०] काला।

करिल—३३२ [संज्ञा] बाँस का नया कल्ला (सं० करीर)।

करी—२२४ [संज्ञा] दे० 'कड़ी'।

करुवार—१४, २५३ [संज्ञा] कोलहे चूल्हे के आकार का एक कीला जो दो लकड़ियों के जोड़ को दृढ़ करने के लिए जड़ा जाता है (सं० कटकाकार)।

करुवारी—१४ [संज्ञा] करुवार का अल्प०।

करेजा—२६३ [संज्ञा] हृदय।

करेर—१२७, १२८ [वि०] कड़ा (कठोर +एर)।

करैली—३५९ [संज्ञा] एक प्रकार की मुद्रिका जो स्त्रियाँ पहनती हैं (कर—)

करौंछी—१५५ [वि०] काली (काल +छाया)।

करोनी—१८९, १९१ [संज्ञा] दूध का करोवन (हि० कराना)।

कल—२६९ [संज्ञा] यन्त्र (फ़ा० कल)।

कलक्टरहिया—११९ [वि०] कलक्टर साहब से सम्बंधित। यथा, कलक्टरहिया ईख (अँ० कलेक्टर)।

कलछुल—३२४ [संज्ञा] लोहे का एक पात्र (प्रा० कडच्छु)।

कलम—३४६ [संज्ञा] सोनारों का नक्काशी करने का औजार (फ़ा०क़लम), ३७३ [संज्ञा] कान के बगल के बाल को काटने का एक ढंग। मुहा० **कलम काटब**—कान के बगल के बाल काटना। **कलम छाँटब**—वही।

कलूटी—१५५ [वि०] काली (काल—)।

कलेटरिया—११६ [वि०] दे० 'कलक्टरहिया'।

कलोर—१५८ [संज्ञा] जवान बछिया जो गर्भ धारण के योग्य हो। (कल्या प्रा० कल्होडी)।

कल्ला—६३ [संज्ञा] शाखा (सं० करीर ?)

कल्ले-कल्ले—४०६ [अ०] धीरे-धीरे।

कवही—२०८ [संज्ञा] बाँस का कैंचा जो छान टेकने के लिए होता है।

कहुआ—२५७ [संज्ञा] बैलगाड़ी के फड़ पर लगे हुए खूँटे जिनका ऊपरी

भाग अर्द्धचन्द्राकार होता है।

काँख–३७३ [संज्ञा] बाँह की बगल (सं० कक्ष, प्रा० कक्ख)।

काँछ–२६२ [संज्ञा] दोनों जंघों के बीच तथा गुदा के समीप का स्थान (हिं० काँच सं० कक्ष)।

काँछब–१५२ [क्रि०] पोस्त के फल से अफीम को सुतहा द्वारा भली भांति करो कर अलग करना (हिं० काछना सं० कक्ष-)।

काँटी–२६७ [संज्ञा] काँटा का छोटा रूप (सं० कंटक); २६७ मुहा० **काँटी थरब**–काँटी ठोंकना।

काँड़ब–२७३,२९३ [क्रि०] पैर से रौंदना (सं० कण्डन)।

काँड़ी–४०६ [संज्ञा] ओखली (सं० कण्डिका)।

काँसड़–१६४ [संज्ञा] काला बैल (सं० कासर=भैंसा, साँड-साँड़)।

काटि–३२७ [संज्ञा] तेल का मैल, तु० कीट।

काढ़ब–१०१ [क्रि०] अलग कर लेना (सं० कर्ष् प्रा० कड्ढ-)।

काढ़ा–२७० [संज्ञा] ईख पेरने के कोल्हू में हरिस और बैल के जुए को संबंधित करने वाला बाँस का टुकड़ा; ३२४ [संज्ञा] तेल पेरने के कोल्हू में कातर और ढेंका को संबंधित करने वाला बाँस का टुकड़ा।

काँस–४१० [संज्ञा] एक जंगली पौधा जिसकी सींकें डलिया आदि बनाने के काम में आती हैं (सं० काश)।

कातर–३२४ [संज्ञा] कोल्हू का पाट जिस पर कोल्हू हाँकनेवाला बैठता है और जिस के चलने से जाठ चलती है (तु० कतरी, सं० कर्त्तरी)।

कानी–१४ [वि०] एक छोटी पतली लकड़ी जो हल में टोड़ा के घिस जाने पर जोड़ के रूप में लगाई जाती है (स० कर्णिका); १२९ [वि०] जिसे कीड़े खाये हों, यथा कानी ईख (सं० काण-); १६१ [वि०] थन की जिस चूँची से दूध नहीं निकलता उसे कानी चूँची कहते हैं (सं० काण)।

कान्ह–१९, १६४ [संज्ञा] कन्धा (सं० स्कन्ध); २५९ मुहा० **कान्ह आइब**–जुए की रगड़ से कन्धे का कट जाना।

काबिस–२,२२७ [संज्ञा] एक प्रकार की मिट्टी (सं० कपिश); २२९ [संज्ञा] बर्तन रंगने के लिए बनाई गई रंगीन मिट्टी।

कारी–१४० [संज्ञा] पान के पत्ते का एक रोग जिस में काले-काले धब्बे पड़ जाते हैं (स०कालिका)।

कारो–१२९ [संज्ञा] एक प्रकार का ईख का रोग जिस में गेंड़ा नष्ट हो जाता है।

कास–१४० [संज्ञा] दे० 'काँस'।

किचोई–८९ [संज्ञा] मटर की फली का आरंभिक रूप।

किचोवा–९३ [संज्ञा] वही।

किनही–९९ [संज्ञा] अरहर का एक रोग (सं० किण-); १२९ [संज्ञा] ईख का एक रोग।

कियरिहा–४४ [संज्ञा] कियारी बनाने

वाला।

कियारा–८ [संज्ञा] जड़हन के खेतों का समूह।

कियारी–८, १११ [संज्ञा] जड़हन का खेत; ४४ [संज्ञा] सिंचाई के लिये ईख के खेत में बनाए गए छोटे-छोटे घेरे (सं० केदारिका); ४४ मुहा० **कियारी गढ़ब**–कियारी बनाना; १२७ **कियारी गिराइब**–ईख के खेत की सिंचाई के बाद की गोड़ाई जिस में कियारी बिगाड़ दी जाती है; ४४,१२६ **कियारी देब**–कियारी भरना; ४४ **कियारी बराइब**–कियारी में पानी पहुँचाना; ११२ **कियारी बैठाइब**–कियारी में बेहन लगाना; ४४ **कियारी भरब**–कियारी द्वारा सिंचाई करना; १२६ कहा० **तीन कियारी तेरह गोंड़, तब ताका हौदा की ओर।**

कियारीदार–३८४ [वि०] कियारी युक्त। यथा, कियारी दार बुनावट।

किरखुन–४०५ [संज्ञा] दाल की चूनी के बारीक टुकड़े (सं० कीट+चूर्ण)।

किल–४०२ [संज्ञा] लकड़ी की खूँटी (सं० कील)।

किल्ला–४०२, ४०४ [संज्ञा] दे० 'किल'।

किलहटी–४९ [संज्ञा] एक पक्षी-विशेष।

किवाड़ा–२५१ [संज्ञा] दरवाजा (सं० कपाट)।

किस्बत–३७३ [संज्ञा] एक थैला जिस में नाई अपने औजार रखता है (अर० किसबत)।

किस्बस–३७३ [संज्ञा] वही।

किस्मत–२६५ [संज्ञा] वही।

कुँचहरब–७० [क्रि०] कूँचा से बटोरना (सं० कूर्च-)।

कुंजब–१४८ [क्रि०] मरचा का एक रोग जिसमें पत्तियाँ ऐंठ जाती हैं (सं० कुंचन = सिकुड़ना)।

कुंदा–२४२ [संज्ञा] लकड़ी का बिना चीरा या फाड़ा हुआ बड़ा टुकड़ा।

कुंसिला–२२० [संज्ञा] एक लकड़ी जिसका प्रयोग मकान की छाजन में, जहाँ कोन होता है, किया जाता है (कोन + सिरा)।

कुआँ–१९२ [संज्ञा] पानी का विशेष स्थान (सं० कूप); २०१ मुहा० **कुआँ ओगारब**–कुआँ की मिट्टी आदि निकाल कर सफाई करना; **कुआँ बैठब**–कुआँ दबकर बैट जाना; **कुआँ भसब**–वही।

कुइयाँ–१९२ [संज्ञा] कुआँ का अल्पा०।

कुकुर–२१६ [संज्ञा] कुत्ता (सं० कुक्कुर)।

कुचकुचवा–५० [संज्ञा] उल्लू (अनु०)।

कुड़उववा–२७२ [वि०] दे० 'कुड़उवा'।

कुड़उवा–२७२ [वि०] कुण्डवत्, यथा कुड़उवा कड़ाह।

कुत्ता–२१६ [संज्ञा] टोड़ा की सहायता के लिए लगाई हुई छाजन में छोटी-छोटी लकड़ियाँ।

कुदार–६० [संज्ञा] खेती का एक औजार (हिं० कुदाल सं० कुद्दालिका)।

कुदुराब–१८१ [क्रि०] बच्चों का उछलना-कूदना (सं० स्कुन्दन प्रा० कुन्दन = कूदना)।

कुपटब-९७ [क्रि०] नोचना या थोड़ा सा तोड़ना (हिं० काटना)।

कोइनी–२२६ [संज्ञा] महुआ के फल का बीज।

कोइराड़–८ [संज्ञा] जहां कोइरी साग-पात उत्पन्न करता है (हिं० कोरी + आर या कोयर-)।

कोइलर–२२४ [संज्ञा] धरन पर बड़ेर का बोझ संभालने वाली एक लकड़ी।

कोट–५ [संज्ञा] पुरानी राजधानी का स्थान (सं० कोट)।

कोटिया–५ [संज्ञा] दे० 'कोट'

कोठा–२२४ [संज्ञा] मकान की दूसरी मंजिल (सं० कोष्ठक)।

कोठिला–३९५ [संज्ञा] अनाज रखने का एक मिट्टी का पात्र (सं० कोष्टक -)।

कोठी–१९२ [संज्ञा] कुएँ की दीवार की रक्षा के लिए बाँस के फल्टों से बनाया हुआ एक घेरा (सं० कोष्ठिका); ३३१ [संज्ञा] बाँस के पेड़ों का समूह।

कोन–२३ [संज्ञा] खेत का कोना (कोण); २३ मुहा० **कोन करब**–खेत को तिरछे जोतना। **कोन घींचब**—कुदार से कोनों को गोड़ना। **कोन काटब**–कोन को छोड़ कर जोतना।

कोनिया–२२१ [संज्ञा] आँगन की ओर की छाजन में कोन वाला भाग।

कोन्छी–२३ [संज्ञा] हल को घुमाते समय जो कोना छूट जाता है।

कोन्सिला–२२० [संज्ञा] दे० 'कुंसिला'. मुहा० **कोन्सिला बाँधब**–कोन्सिला पर की छवाई करना।

कोयर–१७९ [संज्ञा] पशुओं के लिए हरा चारा।

कोरई–२१५ [संज्ञा] छाजन में बाँस के फल्ठे जो कड़ी के रूप में काम आते हैं, दे० 'कोरो'।

कोरावत १५८ [वि०] गर्भ धारण की हुई गाय या भैंस (सं० कोरक–)।

कोरो–२०५, ३३४ [संज्ञा] वह लकड़ी या बांस जो छाजन में बड़ेर से ओरौती तक लगाई जाती है (सं० कोण ?)।

कोर्रा–१७९ [संज्ञा] पशुओं का सूखा भोजन (हिं० कोरा– सं० केवल ?)।

कोलई-कोलवा–६ [संज्ञा] छोटा खेत जिस का आकार साधारणतः पतला और लम्बा हो—कोलई कोलवा का छोटा रूप है (सं० कोल = रास्ता)।

कोल्हाड़–२०२, २६९, २७५ [संज्ञा] वह स्थान जहाँ गुड़ पकाया जाता है। २७५ मुहा० **कोल्हाड़ बइठब**–कोल्हाड़ बन्द होना।

कोल्हू–२६९, ३२३ [संज्ञा] ईख या तेलहन पेरने का यन्त्र। २७५ मुहा० **कोल्हू गाड़ना**–कोल्हू को जमीन में स्थिर करना।

कोसा–२३३ [संज्ञा] मिट्टी का एक पात्र जो छोटे कटोरे की भांति होता है (सं० कोश = प्याला)।

कोसी–२३३ [संज्ञा] कोसा का अल्पा०।

कोहरा–२८३ [संज्ञा] गुलउर के अगले कड़ाह का गरम रस (सं० क्रोध–)। मुहा० **कोहरा करब**–अगले कड़ाह के गरम रस को पिछले कड़ाह में डालना; ४०६ अनाज को अंगारे से कउरना

खर कतवार–[संज्ञा] ३९० कूड़ा-करकट (खर +)।

खरका–१८० [संज्ञा] चारागाह।

खरकौट–३११ [संज्ञा] करगह में प्रयोग आने वाली एक लकड़ी जो पाई को खर (ऊँचा) रखती है।

खरमास–३८४ [संज्ञा] चैत और पूस के महीने जो शुभ कार्य के लिए वर्जित हैं।

खरवा–१६१ [संज्ञा] खाल फटने का रोग (खर-खर से अनु०)।

खरिहान–६८, ९१ [संज्ञा] दे० 'खलिहान'।

खर्रा–१६१ [संज्ञा] थन के चमड़े का फटना दे० 'खरवा'।

खलपट–५ [संज्ञा] नीचा स्थान, यथा, खलपटे का खेत (हिं० खाल < सं० खात ?)।

खलार–५ [संज्ञा] वही।

खलिहान–६८ कटाई के बाद जहाँ अनाज एकत्र किया गया हो (सं० खल + धान्यं, नै० खलियान)।

खली–१७९, ३१९ [संज्ञा] तेलहन की सीठी (सं० खलि-)।

खसर-खसर–२९४ [संज्ञा] रगड़ने पर दरदरपन का अनुभव (अनु०)।

खाखर–१९२ [संज्ञा] दे० 'खखरा'।

खाँगा–१७८ [संज्ञा] पशुओं के खुर का एक रोग जिस में घाव हो जाता है (हिं० खाँग)।

खाँचा–३८८ [संज्ञा] बड़ा टोकरा।

खाँची–३८९ [संज्ञा] खाँचा का अल्पा०

खाड़ी–१७ [संज्ञा] लड्ढा (सं० खात)।

खाता–१२२, २११ [संज्ञा] खंदक; २९६ वह गड्ढा जहाँ चीनी जमाई जाती है; १२२ मुहा० **खाता मारब**-खाता बना कर उसमें चीनी या अन्य कोई चीज रखना।

खाद–७ [संज्ञा] उपज बढ़ाने के लिए खेत में दी गई वस्तु (सं० खाद्य) ३५० किसी कीमती धातु में निम्न कोटि की धातु का मिश्रण; ७, १२० १५० यौ० **खाद-पाँस** (सं० खाद्य पांशु)

खारा–१७७ [वि०] नमकीन (सं० क्षार)।

खारी–२६४ [संज्ञा] एक प्रकार का नमक (सं० क्षार)।

खाल्ही–१७ दे० 'खाड़ी'।

खाल–२६ [वि०] नीचा (सं० खात)। २६३, २६४ [संज्ञा] बिना पकाया चमड़ा; २६५ भेड़ बकरी का चमड़ा (सं०*क्षाल)।

खालब–३४६ [क्रि०] गढ़ना, बनाना।

खालि–२६ [संज्ञा] दे० 'खाल'।

खिड़की–२६५ [संज्ञा] दरवाजे का छोटा रूप जो प्रकाश के लिए होता है (प्रा० खिडिक्किया)।

खियानत–३९५ [वि०] कमी या हानि (अर० ख़ियानत)।

खियाब–१४ [क्रि०] घिसना (सं० क्षीय्)।

खिरपब–१२५ [क्रि०] गाड़ना।

खीपा–४३ [संज्ञा] लकड़ी का टुकड़ा

जो किसी सूराख के बन्द करने के लिए ठोंका जाता है।

खील–१६० [संज्ञा] कील के आकार की चीज जो थन से प्रथम बार दूध दुहने पर से निकलती है (सं० कील); मुहा० **खील-फोरब**-बच्चा होने पर थन से पहली बार दूध निकालना।

खुंटहरा–१५, ५७ [संज्ञा] वह हल जिसका फाल छोटा हो (खूंटा + हल); ५७ **खुंटहर की बोआई**-खुंटहर द्वारा की जाने वाली बोआई।

खुँटिहन–९, ७४ [संज्ञा] जिस खेत से अरहर काटी गई हो।

खुखुंडी–१३३ [संज्ञा] मकाई की बाल से दाने निकल जाने पर जो भाग शेष बचता है।

खुखुड़ी–१३३ [संज्ञा] वही।

खुडुरा-खुडुरा–३ [संज्ञा] पानी के बहाव से कटी हुई ऊँची-नीची जमीन।

खुढुरी-खुढुरा–३ [संज्ञा] वही।

खुर–२६१ [संज्ञा] सींगवाले चौपायों का वह भाग जहाँ नाखून होता है (सं० क्षुर)।

खुरखुंडी–१३३ [संज्ञा] दे० 'खुखुंडी'।

खुरचनी–१८९ [संज्ञा] दूध की मेटी में दूध बैठाने के बाद जो करोनी नीचे निकलती है (हिं० खुरचन ∠ सं० क्षुरण)।

खुरपा–६४ [संज्ञा] घास छीलने का एक औजार (सं० क्षुरप्र प्रा० खुरप्प)।

खुरपी–६४ [संज्ञा] खुरपा का छोटा रूप

खुराँस–३८२ [संज्ञा] दे० 'खूरा'।

खुरियाइब–१५९ [क्रि०] पशु बच्चे के पैदा होते समय उस के खुर का निकलना (सं० क्षुर)।

खुरी–२६३ [संज्ञा] दे० 'खुर'।

खूँट–३७ [संज्ञा] कान का मैल।

खूँटा–३६ ३१२,४०१ [संज्ञा] लकड़ी का एक नोकीला टुकड़ा जिसे जमीन में पशुओं के बाँधने के लिए गाड़ते हैं (प्रा० खुंटो)।

खूँटी–२०१ [सं०] खूँटा का अल्पा० ३३१ बाँस की कोठी; १६७ मुहा० **खूँटी आइब**–बछड़े के दाँत निकलना।

खूनब–३२९ [क्रि०] चोट देकर किसी चीज को बारीक करना।

खूरा–३८२ [संज्ञा] खुर के पास एक रस्सी से भैंस को बांधते हैं, इसी रस्सी को खूरा कहते हैं।

खूहा–१३१ [संज्ञा] मकरा की बाल से दाना निकल जाने पर बचा हुआ भाग; १३३ ज्वार के बाल के ऊपर का छिलका।

खूही–१३१,१३३ [संज्ञा] दे० 'खूहा'।

खेड़ी–१५९ [संज्ञा] प्रसव के पश्चात् गर्भ का वह भाग, जिस में बच्चा था, गिरता है उसी को खेड़ी कहते हैं (सं० खेट)।

खेढ़ी–१५९ [संज्ञा] वही.

खेत–१२७ [संज्ञा] वह भूमि जिसमें खेती की जाती है (सं० क्षेत्र); १२७ मुहा० **खेत एक रस जाब**–ठीक समय पर गोड़ाई न होने पर खेत का निरस हो

जाना। ७ **खेत कमाब**–खेत में खाद-पांस डाल कर उसे उपजाऊ बनाना। २३, २५ **खेत गिरब**–जोताई समाप्त होना। २३ **खेत चिरचिराइब**–खेत को बहुत हलके जोतना। १२७ **खेत बइठब**–खेत की नमी चली जाने पर खेत की मिट्टी का सूख कर दबना। ९७ **खेत बिदहब**–फसल की आरंभिक अवस्था में उसके विकास के लिए खेत को जोतना। १५१ **खेत भरब**–खेत में पानी देना। सींचना।

खेप–२१२ [संज्ञा] जितनी मिट्टी एक बार में ढोई या फेंकी जाती है (सं० क्षेप्य, प्रा० खेप्पो)।

खैंच–३४२ [संज्ञा] बाँस के फलठों के बारीक नोकीले टुकड़े।

खैंचड़ब–२७६ [क्रि०] छाँटना।

खैरा–१७४ [वि०] खैर रङ्ग वाला (सं० खदिर)।

खोंग–४०७ [संज्ञा] किसी नोकीली चीज से फटा हुआ कपड़ा।

खोंच–४०७ [संज्ञा] किसी नोकीली चीज से लगना (सं० कुच या क्षुद्-)।

खोंचब–११६ [क्रि०] सनई के पौधों को खड़े-खड़ पानी में तेजी से ऊपर नीचे करते हुए धक्का देना ताकि सनई के रेशे ऊपर खिसक जायँ।

खोंटब–१६३ [क्रि०] पौधे के किसी भाग को चुटकी या नाखून की सहायता से नोचना (सं० खुड्)।

खोंप–१२४ [संज्ञा] किनारा या कोना (अनु० खोंपना—धँसाना); मुहा० **खोंपा जोर बोइब**–ईख के एक पतांड़ को दूसरे पतांड़ से सटा कर बोना ऐसी बोआई को **खोंपा जोर बोआई** कहते हैं।

खोंपी–२७३ [संज्ञा] मस्तक के बालों का छूरे से कटा हुआ वह अर्द्ध चंद्राकार रूप जिसमें दोनों कोने निकले रहें। मुहा० **खोंपी काटब**–खोंपी निकालना। **खोंपी काढ़ब**–वही।

खोंसब–४६ [क्रि०] अँटकाना।

खोइया–२७०, २७३ [संज्ञा] ईख की खुज्झी जो रस निकल जाने पर बचती है। २७३ मुहा० **खोइया दहाइब**–खोइया में पानी डाल कर उसे पैरों से कोंड़ना ताकि उस में का बचा हुआ रस निकल आवे।

खोइहरा–२७३ [संज्ञा] वह स्थान जिस में खोइया दहाई जाती है।

खोखली–२४३ [वि०] पोली।

खोदब–२११ [क्रि०] किसी चीज से किसी स्थान में गड्ढा करना; २७२ किसी चीज को छेड़ना या ठेलना (सं० क्षुद्-)।

खोदनी–२७२ [संज्ञा] वह लकड़ी जिससे आग खोदी जाती है।

खोभनी–३०९ [संज्ञा] पाईं करने के लिए दोनों ओर के वे कँचे जिन पर ताना फैलाया जाता है (सं० क्षोभणिका)।

खोर–१८२ [संज्ञा] गाँव से गोरुओं के बाहर जाने का मार्ग (हिं० खुर-)।

खोरि–१८२ [संज्ञा] वही।

गढ़ब–२२७,२३४,३४५ [क्रि०] गढ़ना, बर्तन बनाना (सं० घट्–)।

गतार–२७६ [संज्ञा] बोझ बाँधने वाली रस्सी (सं० गन्त्री)।

गदरा–८९, ४०६ [वि०] अध पका।

गदराब–७८ [क्रि०] बाल या फली में गूदा या दाने का पुष्ट होना (अनु० गद-गद)।

गदहिला–१४४ [संज्ञा] आलू में लगने वाला एक कीड़ा (सं० गर्दभी प्रा० गद्दही)।

गन्हि–५६ [संज्ञा] गंध (सं० गंध)।

गन्होरी–१०९ [संज्ञा] एक मक्खी जो धान की फसल के लिए हानिप्रद है।

गफ–३२० [वि०] घना (फ़ा० ग़फ्स)।

गमला–२३३ [संज्ञा] मिट्टी का एक पात्र जिसमें पौधे लगाते हैं।

गमहा–१६६ [वि०] गमखोर या परिश्रम से न घबड़ाने वाला। यथा, गमहा बैल (फ़ा० ग़म–)।

गम्हीर–२४० [वि०] भली प्रकार सिंचाई की हुई कियारी (सं० गम्भीर)।

गरदा–११७ दे० 'गर्दा'।

गरम–१९२ [वि०] तपाया हुआ (फ़ा० गर्म)

गरवध–४२ [संज्ञा] गला (सं० गल–) मुहा० **गरवध बाँधब**–एक नाली का मुँह बन्द करके पानी का बहाव दूसरी नाली में करना।

गराँव–१७१, ३८२ [संज्ञा] दे० 'गेराँव'।

गरियार–१६६ [वि०] न चलने वाला बैल, अड़ियल (सं० गलि–)।

गरी–७२ [संज्ञा] ओसाते समय गिरी हुई गाँठों द्वारा बनाया हुआ वह घेरा जिसके अन्दर अनाज गिरता है। मुहा० **गरी काटब**–गरी बनाना।

गर्दा–३१५ [संज्ञा] कूड़ा, कचड़ा, धूल (फ़ा० गर्द)।

गलारा–४२ [संज्ञा] मतबरहा का वह मुँह या मुँहकड़ा जहाँ से बरहा निकलता है।

गलिया–११२, २९० ३९२ [संज्ञा] अँगूठा और तर्जनी के बीच का स्थान अथवा उनके घेरे में जितना सामान आ सके।

गहना–२३३,२३४ [संज्ञा] मिट्टी का एक छोटा सा डंडा जिसके सहारे कुम्हार बरतन बनाता है (सं० ग्रह्–)।

गहब–४४ [क्रि०] पकड़ना (सं० ग्रहण); २३३ गहना द्वारा बरतन ठीक करना। ४४ मुहा० **गहि के कियारी देब**–भली-भाँति कियारी भरना।

गहुआ–३४६ [संज्ञा] सोनारों का पकड़ने का एक औजार (सं० ग्रहण–)।

गाँछब–३०५ [क्रि०] गूँथना।

गाँज–६८ [संज्ञा] दाने के लिए एकत्र अन्न की राशि (फ़ा० गंज) मुहा० **गाँज फोरब**–गाँज फैलाना।

गाँठ–७२ [संज्ञा] जौ या गेहूँ के डंठल की गाँठें (सं० ग्रंथि); २४३ लकड़ी की गाँठ। २७७ मुहा० **गाँठ फोरनेकी माइत करब**–ईख का नवा होना; **गाँठ मारब**–जौ-गेहूँकी गांठ अलग करना।

गाज–३२६ [संज्ञा] फेन (अनु० गज-गज)

गाड़–२०० [संज्ञा] कुएँ की जोड़ाई के लिए एक प्रकार की अर्द्ध वृत्ताकार ईंटें (सं० गड); २४६ सोनार की दरी (एक औजार) में बने गड्ढे।

गाड़न–३४३ [संज्ञा] दौरे की पेंदी की एक विशेष प्रकार की बुनावट।

गाड़ा–२५४ [संज्ञा] एक छोटी बैलगाड़ी जो खाद आदि ढोने के काम में आती है (प्रा० गड्डिका)।

गाड़ी–२५४ [संज्ञा] बैल गाड़ी; मुहा० **गाड़ी जोतना**–गाड़ी में बैल को जोतना। २६१ **गाड़ी तुलाइब** या **गाड़ी तेलियाइब**–पहिया के धुरी में तेल आदि लगा कर पहिया को पुनः ठीक-ठीक चढ़ाना।

गाढ़ा—२३८ [वि०] घना (सं० गाढ–)।

गात–३४३ [संज्ञा] दौरे के मेंड़रे में बांस के फल्ठे की जो चौड़ी पत्तियां लगाई जाती हैं (सं० गात्र)।

गादा–७८ [संज्ञा] गदराई हुई जौ की बाल का सत्तू।

गाभ–१५८ [संज्ञा] गर्भ।

गारा–२४१ [संज्ञा] वह गीली मिट्टी जिससे आवां बन्द करने के लिए लीपा जाता है (हिं गारना सं० गालन)।

गावा–३४३ [संज्ञा] दौरे की बिनावट में एक साथ उठाई जाने वाली पत्तियां।

गाही–१२१,३८६ [संज्ञा] पांच का समूह (सं० ग्राहिका)।

गिरदा–१३२ [संज्ञा] जोन्हरी का एक भेद।

गिरदानक–३१३ [संज्ञा] करघे की वह लकड़ी जो लपेटन की सूराख में उसे घुमाने के लिए लगी रहती है (फा० गिर्द)।

गिलमिट २४२ [संज्ञा] लकड़ी में सूराख करने का एक औजार।

गिलई–११२ [संज्ञा] गीलापन (फा० गिल वा सं० गरण = तरहोना)।

गीदड़–४८ [संज्ञा] सियार (फा० गीदी = डरपोक)।

गुण्डी–१५६ [संज्ञा] छोटी-छोटी सींगों वाली गाय।

गुइँठ–११० [संज्ञा] पुआल का बोझ (सं० ग्रन्थि)।

गुजहिली-२५२ [संज्ञा] लकड़ी की कील।

गुठला–३७० [वि०] कुण्ठित।

गुठली–३७१ [संज्ञा] आम का बीज (सं० गुटिका)।

गुड़–२८६ [संज्ञा] राब (सं० गुड)। मुहा० **गुड़ डोलाइब**–हौदे की राब को डंडे से मथना; **गुड़ मारब**–वही; २८७ **गुड़ करब**–गुड़ को कोल्हाड़ से घर में ला कर रखना।

गुदरायल–८९ [वि०] गुदराया हुआ दे० 'गदगब'।

गुदरी–८९ [संज्ञा] मटर के हरे दाने दे० 'गादा'।

गुद्दी–२०० [संज्ञा] गूदा।

गुमटियाब–३९९ [क्रि०] एक में लिपट जाना, गुमटियाना।

गुरची–४०० [संज्ञा] गाँठ (सं० गुल्म?)।

गुर्री–३३, ३६ [संज्ञा] चरखी या

गड़ारी के बीच की लकड़ी।

गुरिह्आइब–३७६ [क्रि०] गूरही लपेटना दे० गूरही।

गुलउर–२०२ [संज्ञा] गुड़ पकाने का स्थान (सं० गुड़ पुट–); २७१ गुड़ पकाने का भट्ठा।

गुलाबा–२५२ [संज्ञा] एक प्रकार का बड़ा खीला जो दरवाजों में जड़ा जाता है (फ़ा० कुल्लाबः)।

गुलेबंद–३५६ [संज्ञा] स्त्रियों के गले का एक आभूषण (फ़ा० गुलूबंद)।

गुल्ला–२६, २९ [संज्ञा] लकड़ी का छोटा टुकड़ा (गोल–, गुडिका)। २७७ ईख का वह टुकड़ा जो एकबार में चूसने के लिये दाँत से काटा जाता है।

गुल्ली–१६, [संज्ञा] एक छोटी लकड़ी।

गूँज–६४, ६५ [संज्ञा] खुरपा या हँसुआ का वह नोकीला भाग जो बेंट के अन्दर रहता है (सं० गुंज)।

गूँजा–३५६, ३५७ [संज्ञा] हँसुली के दोनों किनारों के अंतिम भाग में बनी छोटी हुँडी; ३६४ नथिया का वह किनारा जो कौढ़ में डाला जाता है।

गूजर–११६ [संज्ञा] सनई के पौधे के सिरे का भाग जो पशुओं को खिलाया जाता है।

गूदा–३२९ [संज्ञा] फल का गुज्झा।

गूदी–३९० [संज्ञा] गूदा का स्त्री०।

गूरी–११६ [संज्ञा] सनई का वह ऊपरी छिलका जो सनई सड़ने पर फेंक दिया जाता है; ४०६ [संज्ञा] जौ का भूसी रहित दाना।

गूरहन–३७६ [संज्ञा] गूहीं द्वारा जो बंधन बनता है।

गूरही–२८, २९,३७६ [संज्ञा] बिना बटी हुई रस्सी।

गूलब–४०७ [क्रि०] गूँथना, सिलना।

गेंठी–३४२ [संज्ञा] बाँस के फल्ठोंका गाँठ वाला भाग (सं० ग्रंथि)।

गेंड़सा–१२२, ४०६ [संज्ञा] दे० 'गँड़सा'।

गेंड़ा–११९, १७९, २७६, २८१, २८२ [संज्ञा] ईख के माथ पर की पत्तियाँ (सं० गंड)।

गेंड़ास–१२२ [संज्ञा] दे० 'गँड़सा'।

गेंड़ियाइब–२४३ [क्रि०] छोटे-छोटे गेंड़ी सदृश टुकड़े काटना।

गेंड़ी–२६९ [संज्ञा] ईख के छोटे-छोटे टुकड़े (सं० काण्ड)।

गेहूँ–७५ [संज्ञा] एक अनाज (सं० गोधूम)।

गेजार–१६० [संज्ञा] मुँह का गाज जो पशुओं के मुँह से फेन की तरह निकलता है।

गेठुआ–३१० [संज्ञा] जुलाहे करगह से पहिला थान उतारते समय बय के पास थोड़ा सा कपड़ा छोड़ कर तब थान काटते हैं इसी छूटे हुये भाग को गेठुआ कहते हैं, दूसरा थान चढ़ाते समय इसी में उसकी पाई जोड़ देते हैं। ऐसा करने से पुनः बय नहीं भरना पड़ता (सं० ग्रथ्, ग्रन्थि)।

गेराँव–६९, १८२ [संज्ञा] पशुओं के गले में उन्हें बांधने के लिए जो

रस्सी पड़ी रहती है (फा० गरेबां)।

गेरुई–७४, ८०, ८६, [संज्ञा] चैती फसल में लगने वाला एक रोग जिसके कारण फसल का रङ्ग गेरू सदृश हो जाता है (सं० गैरिक)।

गोंइठ–११० [संज्ञा] पुआल का बोझ (सं० ग्रन्थि ?)।

गोंइठा–२४०, ४०६ [संज्ञा] उपली (गो + विष्ठा)।

गोंइठी–१८८, २४० [संज्ञा] दे० 'गोंइठा'।

गोंइड़–५ [संज्ञा] गाँव का निकटवर्ती भाग (सं० गोष्ठ ?)।

गोंएड़–५ [संज्ञा] वही।

गोंयड़–५,१२८,१४२ [संज्ञा] 'गोइँड़'।

गोंट–२३६ [संज्ञा] मिट्टी के बरतन बनाने का साँचा; ४०९ पंखे के किनारों पर मजबूती के लिए लगाया हुआ कपड़ा।

गोंटी–३९ [संज्ञा] कंकड़ के टुकड़े।

गोंठिल–६१ [वि०] जिसकी धार तेज न हो।

गोजई–८४ [संज्ञा] गेहूँ और जौ मिला हुआ अन्न (सं० गो + यविका)।

गोजहिली–२५२ [संज्ञा] दे० 'गुजहली'।

गोड़नी–१४६ [संज्ञा] गोड़ाई का कार्य्य (गोड़ना, कोड़ना)।

गोड़वारी–३८२, ३८२ [संज्ञा] चारपाई का पैताना (गोड़ – पैर)।

गोड़हरा–३६१ [संज्ञा] पैर का एक आभूषण।

गोड़ा–२६ [संज्ञा] बेड़ी की सिंचाई करते समय दवन में जोड़ी जाने वाली रस्सी।

गोड़ाई–१४६ दे० 'गोड़नी'।

गोंड़िया–३८ [संज्ञा]एक जाति।

गोभा–१६० [संज्ञा] एक तरकारी।

गोनरा-गोनरी–२६०,२९१,३६१,३९२ [संज्ञा] पुआल की एक प्रकार चटाई।

गोबर–१६१, २१२ [संज्ञा] गाय-भैंस का मल (प्रा० गोव्वर)।

गोबरहिया चिरई–४९ [संज्ञा] एक बहुत छोटी पत्ती।

गोबरियाइब–४०२ [क्रि०] गोबरी करना।

गोमतिहा–१६३ [क्रि०] गोमती नदी के आस-पास पाये जाने वाले। यथा, गोमतिहा बैल।

गोरुवार–२०२ [संज्ञा] गोरुओं के बाँधने का स्थान।

गोरू–४८, १७८, १८० [संज्ञा०] पशु (सं० गो रूप)।

गोरोचन–२६३ [संज्ञा] दे० 'गोलोचन'।

गोल–२६ [संज्ञा] सिंचाई के लिये ताल या किसी गड्ढे से बोंदर तक बनाई जाने वाली नाली (सं० गोल); १९५ गोल सीढ़ी जो कुएँ में उतरने के लिए बनाई जाती है। मुहा० **गोल-काढ़ब**–गोल बनाना। **गोल भारब**–गोल की मिट्टी निकाल कर उसे गहरा करना; **गोल निकारब**–गोल बनाना।

गोलछहूँ–८३ [वि०] गोले के आकार की (गोल + छाया)।

गोल–९९ [संज्ञा] नीचक; मुहा० **गोला गलाइब**–नीचक को कुएँ में बैठाना।

गोलोचन–२६३ [संज्ञा] एक वस्तु जो औषध के काम में आती है; यह गाय की कनपटी के समीप भीतर पाई जाती है।

गोहरा, गोहरी–२४० [संज्ञा] उपला (गो + इल्ल प्रा० गोइल्ल)।

गोहुँअन–१६४ [वि०] गेहूँ सदृश रंगवाला।

घ

घघरा–३२४ [संज्ञा] कोल्हू में वह घेरा जिसे कातर स्पर्श करता है। (हिं० घेरा सं० ग्रहण? तु० घांघरा)।

घघाब–९० [क्रि०] विस्तार करना, यथा, 'मटर घेघात बा'।

घटिया–१७३, २९८ [वि०] जो अच्छा न हो।

घट्ठा–४१ [संज्ञा] हाथ में रगड़ से घट्ठा पड़ना (सं० घृष्ट)।

घड़रोज–४८ [संज्ञा] एक जंगली पशु-नीलगाय।

घर–३७ [संज्ञा] गड्ढा या स्थान।

घरिया–२३३, ३२८ [संज्ञा] मिट्टी का एक छोटा पात्र (सं० घटिका वा घटक; ३४५ चांदी गलाने के लिए मिट्टी का बनाया गया विशेष पात्र।

घरी–१४५ [संज्ञा] प्याज की बेड़न बैठाने के लिए कुदार द्वारा बनाई गई पतली नाली।

घर्रा–२६, ३९, १९६ [संज्ञा] सींचने का एक साधन। यह पुरवट की तरह चलाया जाता है अन्तर यह है कि पुरवट बैलों द्वारा चलाया जाता है और घर्रा आदमियों द्वारा (अनु० घरर घरर)।

घसनहरि–६४ [संज्ञा] घास काटने वाली स्त्री।

घसियारा–६४ [संज्ञा] घास काटने वाला पुरुष।

घाँटी–२६२ [संज्ञा] गले की नली (सं० घंटिका)।

घात–३६८ [संज्ञा] निशान, गड्ढा (सं० घात)।

घानी–३२६ [संज्ञा] तेल पेरने के लिए जितनी सामग्री एक बार में कोल्हू में डाली जाती है (सं० ग्रहणिका)। मुहा० **घानी जमब**–घानी का दबना। **घानी बैठब**–घानी का पिसकर थोड़ा हो जाना। **घानी लगाइब**–कोल्हू में घानी डालना।

घास-पात–१०४ [संज्ञा] घास आदि।

घिरउँच–२२५ [संज्ञा] घड़ा रखने का एक ऊँचा स्थान(*घटोच्चिका)।

घिसनब–१८० [क्रि०] जमीन छूकर चलना (घसीटना सं० घर्षण)।

घुंघुरू–३६१ [संज्ञा] चाँदी का एक पोलदार सामान जिसमें ध्वनि के लिए कुछ डाला रहता है।

घुंडी–३०७, ३६१, ३६९ [संज्ञा] गोले आकार की एक गाँठ (सं० ग्रंथि ?)।

घुच्ची–२३१ [संज्ञा] कुम्हार के चाक पर का छोटा गड्ढा जिस में डंडा डालकर चलाया जाता है।

घुट्ठा–१८२ [संज्ञा] चरने वाले पशु जहाँ एकत्र होते हैं (सं० गोष्ठ–)।
घुड़का–१७८ [संज्ञा] दे० 'घुरका'।
घुन–२४३ [संज्ञा] एक प्रकार का कीड़ा जो लकड़ी में लगता है (सं० घुण)।
घुनघुना–४१० [संज्ञा] बच्चों का एक खेलौना जो घुन-घुन बजता है (अनु०)।
घुरई–३८ [संज्ञा] मोट के मुँह पर लगाई जाने वाली लकड़ियाँ।
घुरका–१७८ [संज्ञा] चौपायों की श्वास की बीमारी (अनु० घुर घुर)।
घुरेसब–२०९ [क्रि०] ठेलकर डालना।
घुर्रा–२८,३३,३६ [संज्ञा] धुरी।
घुर्रादार–३३ [वि०] घुर्रा युक्त।
घुलसी–२३१ [संज्ञा] कुम्हार के चाक में चलाने के लिए जो सूराख होता है, तु० घुच्ची।
घुलारी–४२ [संज्ञा] सिंचाई के लिए बनाई गई पतली नाली।
घुल्ला–२८,२६ [संज्ञा] एक छोटी लकड़ी दे० 'गुल्ला'।
घूमजाब–२९३ [क्रि०] पुरानी अवस्था में हो जाना, लौट जाना, यथा, शक्कर घूम गई (हिं० घूमना)।
घूर–५३ [संज्ञा] खाद के लिए एकत्र गोबर का ढेर।
घेंघा–१७८ [संज्ञा] गले का वह स्थान जो बाहर निकला रहता है, गला सूजने का एक रोग (हिं० घेंघा)।
घोंघियाब–९३ [क्रि०] चने में एक प्रकार का कीड़ा लगना (हिं० घोंघी)।
घोंघिलाब–९३ [क्रि०] वही।
घोंघी–३२२ [संज्ञा] वर्षा मे बचने के लिए कम्बल का एक प्रकार का बनाया हुआ पहनावा।
घोंचिया–३२८ [संज्ञा] तेल नापने का एक बहुत छोटा मिट्टी का पात्र।
घोंची–१५६ [संज्ञा] वह गाय या बैल जिसकी सींगें आगे की ओर झुकी हों।
घोंठिल–६१,२४२ [वि०] जिसकी धार तेज न हो।

च

चंगुल–१३१ [संज्ञा] ज्वार की जड़ जो चंगुल के सदृश होती है (फा० चंगुल); मुहा० **चंगुल फेंकब**–जड़ फेंकना।
चँटगा–२९६ [संज्ञा] चटाई।
चँटब–२९६ [क्रि०] फैलाना।
चँड़वाही–१९६ [संज्ञा] कुआं खोदने के बाद उसकी मिट्टी निकालना।
चंदक–३५५ [संज्ञा] एक चंद्राकार आभूषण जो स्त्रियां मांग पर पहनती हैं (सं० चन्द्रक)।
चंदर–१९७ [संज्ञा] कुएँ की खोदाई के समय जिस सोते से अधिक पानी निकलता है; मुहा० **चन्दर खुल जाब**-कुएँ के किसी सोते द्वारा विशेष पानी निकलना।
चंदवा–३५५ [संज्ञा] दे० 'चंदक'।
चंबलपारी–१५४ [संज्ञा] चंबल नदी के पास वाली गाय-चंबल नदी विंध्य पर्वत से निकल कर इटावे के समीप जमुना में मिलती है (सं० चर्मरावती–)।
चँवरी–१५६ [संज्ञा] चँवर सदृश पूँछ वाली गाय (सं० चामर)।
चकइठ–२३१ [संज्ञा] कुम्हार का डंडा जिस से वह चाक चलाता है (सं० चक्र + यष्टि)।

चकउँड़ि–२३१ [संज्ञा] दे० 'चकउढ़'।

चकउढ़–२३१ [संज्ञा] कुम्हार का कटोरे के आकार का एक पात्र विशेष जिसे चाक के पास पानी भर कर रखते हैं (सं० चक्र भाण्ड)।

चकती–३८ [संज्ञा] कपड़े या चमड़े आदि में जोड़ के रूप में लगाया हुआ टुकड़ा (सं० चक्र पत्र)।

चकरा–२७३ [संज्ञा] भेली बनाने का एक गोलाकार विशेष स्थान (सं० चक्र)।

चकरी–४०४ [संज्ञा] दाल आदि दरने के लिए चक्की सदृश यंत्र सं० चक्री)।

चकली–१२३ [वि०] चौड़ी (चक्र)।

चकवढ़ि–२३१ [संज्ञा] दे० 'चकउढ़'।

चक्कस–३६८ [संज्ञा] पटहार का एक औजार (फ़ा० चकस=चक्का)।

चक्का–१ [संज्ञा] मिट्टी का बड़ा टुकड़ा (सं० चक्र–); २५६ पहिये का चक्का।

चटाई–२६० [संज्ञा] खजूर की बनी हुई बिछाने योग्य एक चीज।

चढ़ब–१६२ [क्रि०] ऊपर या आगे बढ़ना। मुहा० **चढ़िके बियाब**–अधिक दिन पर गर्भ धारण करना।

चढ़ान–४६ [संज्ञा] पानी के चढ़ाव के समय की सिंचाई।

चनबागर–३ [संज्ञा] ऐसी मिट्टी जहाँ पानी शीघ्र सूख जाय; ६ [संज्ञा] ऐसा खेत जिसमें चनबागर मिट्टी हो।

चनहटा–९ [संज्ञा] जिस खेत से चना कटा हो।

चनेरुआ–२६३ [संज्ञा] कलेजा (चन्द्र-रूप–)।

चन्न होब–३ [क्रि०] पानी का सूखकर लुप्त हो जाना।

चन्नुल–१७५ [संज्ञा] जिस भैंस की चाँद पर बाल न हो।

चपनी–३११ [संज्ञा] कपड़े को मांज करते समय एक लकड़ी-विशेष जिसे जुलाहे व्यवहार में लाते हैं; ३२० [संज्ञा] कम्मल बुनने का लकड़ी का एक औजार (सं० चपन=कुचलना)।

चबायल–७९ [वि०] चबाया हुआ, सूखा हुआ।

चबाब–९० [क्रि०] सूखना।

चबैना–४०६ [संज्ञा] भुना हुआ अन्न (सं० चर्व्य+अन्न)।

चमड़ा पकाइब–२८४ मुहा० चमड़ा पकाने के लिए उसे बंडे के रस में रखना।

चभोरब–४४ [क्रि०] डुबोना। यथा, चभोर के कियारी देब (भली भांति कियारी में पानी देना)।

चमरख–३१७, ३८०, ४०१ [संज्ञा] चमड़े या मूँज का एक सामान जो चरखे में तकुआ के पास लगा रहता है और जिस में तकुआ घूमता है (चर्म+रक्षा)।

चमोटा–२७१ [संज्ञा] नाई का एक चमड़े का टुकड़ा जिस पर वह छूरा पहँटता है (चर्म+पुट–)।

चमोटी–२६५, ३७१ [संज्ञा] दे० 'चमोटा'।

चमौधा–२६५ [वि०] चमड़े का बना हुआ जूता (सं० चर्म–)

चम्बली–१५४ [संज्ञा] दे० 'चंबलपारी'।

चम्मली–१६३ [संज्ञा वही]।

[संज्ञा] खटिया (चतुर्+पाद वा चत्वारि+पादिका)।

चारा–१७९ [संज्ञा] पशुओं के खाने की वस्तु (फ़ा० चरान)।

चारागाह–१८० [संज्ञा] चरने का स्थान (फ़ा० चरागाह)।

चाल–२८४ [संज्ञा] चलने का भाव; मुहा० **चाल आइब**–शीरे में उठान आना (सं० चल्)।

चालब–२६५ [क्रि०] चलनी या झन्ने से किसी चीज को चालना; २८४ एक कड़ाह से दूसरे कड़ाह में रस डालना।

चिंगुरब–३०८, ४०७[क्रि०] सिकुड़ना।

चिउँटा–१७८ [संज्ञा] एक जीव विशेष (हिं० चींटा)।

चिउरी–७८ [संज्ञा] अधपके जौ का भुनाया हुआ दाना (सं० चिपिट वा चिपिटक)।

चिकनाउब–३९३ [क्रि०] चिकना करना।

चिकनी–३,२२७ [वि०] चिकना का स्त्री०। यथा, चिकनी माटी।

चिक्कन–४ [वि०] चिकना (चिक्कण)।

चिचिढ़ा–२३८ [संज्ञा] एक जंगली क्षुप (सं० चिचिण्ड)।

चिचुकब–१२९ [क्रि०] सूख कर सिकुड़ जाना।

चिटचिट–१९१ [संज्ञा] चिटकने की ध्वनि (अनु०)।

चितकबरी–१५५ [वि०] कई रंग की मिली हुई (सं० चित्र+कर्बुरक–)।

चित्रा–७४ [संज्ञा] एक नक्षत्र। कहा० **चित्रा गेहूँ सवाती जवा, गेरुई ढाहा की है दवा।**

चित्रा के बरसले तीन का नास, साली सक्कर मास।

चिपरी–२४० [संज्ञा] छोटी उपली।

चिप्पा–६२ [संज्ञा] मिट्टी के छोटे और पतले टुकड़े (सं० चिपिट)।

चिप्पी–६२ [संज्ञा] चिप्पा का अल्पा०।

चिमचा–३४५ [संज्ञा] आग उठाने का औजार (सं० चिपिट वा फ़ा० चमचा।

चिमटी–३४६, ३७१ [संज्ञा] बारीक चीज पकड़ने का औजार (सं० चिपिट)।

चिरई–४९ [संज्ञा] पक्षी (सं० चटक तु०, हिं० चिड़िया)।

चिरचिराब–२१२, २३४ [क्रि०] फटना, पतले-पतले दरार पड़ना (अनु० चिर चिर)।

चिरुआँ, चिरुवाँ–२४२ [संज्ञा] एक प्रकार का आरा (सं० चीर्)।

चिहराब–२५४ [क्रि०] फटना, दरार पड़ना।

चींसी–२४२ [संज्ञा] दे० 'चींहर'।

चींहर–२४२ [संज्ञा] बांस के फल्ठे के उस ओर का भाग जिधर गांठ नहीं रहती।

चीकट–३२७ [संज्ञा] तेल की काटि या मैल।

चीर–४०७ [संज्ञा] फटा या चीरा हुआ कपड़ा (सं० चीर); ४१० मूँज का चीर कर बनाया हुआ पतला-पतला भाग।

चीरब–२४६ [क्रि०] फाड़ना। यथा, लकड़ी चीरना (हिं० चीरना)।

चुँइयाँ–४०५ [संज्ञा] चूनी का छोटा बारीक रूप।

चुअना–२२३ [संज्ञा] छाजन में जहाँ से पानी चूता है (सं० च्यवन)।

चुअब–४१ [क्रि०] चूना, रिसना।

चुकचुकाना–३ [क्रि०] चूना, पसीजना (अनु०)।

चुक्कड़–२३३ [संज्ञा] ताड़ी पीने के लिये प्रयोग में आने वाला एक छोटा मिट्टी का पात्र (तु० कुच्चड़, कुज्जड़ कुल्हड़)।

चुटकियाइब–१५० [क्रि०] चुटकी से पोस्त के पौधों को उखाड़ना।

चुटकी–११२ [संज्ञा] एक चुटकी में धान के जितने पौधे बोने के लिये पकड़े जा सकते हैं।

चुट्टी–१६१ [क्रि०] दे० 'चोरकटि'।

चुपड़ब–२६१ [क्रि०] किसी गीली चीज को किसी सामान पर अच्छी तरह लगाना।

चुपरब–१६० [क्रि०] चुपड़ना, लेप लगाना।

चुल्ला–१७२ [संज्ञा] लोहे का गोल छल्ला (सं० चूड़ा)।

चुहब–२७७ [क्रि०] चूसना (सं० चूषण)।

चुहल–५२ [संज्ञा] मनोरंजन, चहल-पहल।

चूड़ी–२७० [संज्ञा] बालटू कसने के लिए चूड़ी सदृश जो पेरोई की जाती है (सं० चूड़ा)।

चूतर–३२५ [संज्ञा] शरीर का एक विशेष स्थान जो मलाशय से संबंधित होता है (सं० चूति + तल)।

चूनी–२४२, ४०५ [संज्ञा] दाल के छोटे छोटे बारीक टुकड़े (सं० चूर्णिक)।

चूर–२१३ [संज्ञा] पुराने ढंग के दरवाजे में नीचे एक कोने में कुछ निकला हुआ भाग जिसके सहारे दरवाजा घुमाया जाता है (हिं० चूल); २५६ बैलगाड़ी की पुट्ठियों को आपस में बैठाने के लिए लकड़ी का एक निकला हुआ भाग; ३२४ [संज्ञा] जाठ का ऊपरी नोकीला भाग।

चूरा–२५६ [संज्ञा] दे० 'चूर'।

चूरी–७८ [संज्ञा] दे० 'चिउरी'। ३४३ [संज्ञा] दौरे में पाँजर से मेंड़रा तक का भाग।

चूल्हा–३९३ [संज्ञा] किसी चीज को पकाने के लिये आग जलाने का वह साधन जिसमें एक बरतन रखने का स्थान रहता है (सं० चुल्लि)।

चूल्हि–३९३ [संज्ञा] चूल्हा से बड़ा जिस पर दो बरतन रक्खे जा सकते हैं।

चेका–४९ [संज्ञा] मिट्टी या ईंटा का छोटा टुकड़ा।

चेनुली–१५६ [संज्ञा] जिस गाय की चाँदी या मस्तक पर कोई चिह्न हो (सं० चन्द्र –)

चेफ–२७७ [संज्ञा] ईख चूसने पर बची हुई सीठी।

चेहराब–२९५ [क्रि०] दे० 'चिहराव

चैतउआ–९६ [वि०] चैत वाली। यथा, चैतउवा अरहर (सं० चैत्र-)।

चैती–११,९६ [संज्ञा] चैत वाली फसल।

चैला–२४२ [संज्ञा] लकड़ी का चीरा हुआ टुकड़ा।

चैली–१४;२४२ [संज्ञा] चैला का अल्पा०

चोंगा–३४४–[संज्ञा] बांस का एक टुकड़ा जिसके एक ओर चम्मच की भांति कटा रहता है, विवाह के अवसर पर इससे लावा डालते हैं (फ़ा० चोग़ह)।

चोकटी–४०३ [संज्ञा] चोकर में जब कुछ गूदा लगा रह जाता है तो उसे चोकटी कहते हैं।

चोकर–४०३ [संज्ञा] गेहूँ का छिलका जो आटा चालने पर निकलता है; मुहा० **चोकर निहारब**–जांत का आटा पूरा निकल जाय इस उद्देश्य में जाँत में थोड़ा चोकर डाल कर पुनः पीसना।

चोकरब–१५८ [क्रि०] गाय का बरदाने के लिये चिल्लाना।

चोख़, चोखार–२८७ [वि०] नोकीला (सं० चोक्ष)।

चोखियाइब–३४२ [क्रि०] नोकीला बनाना।

चोटा–३१ [संज्ञा] पुआल या सरपत की चोटी की तरह गुही हुई चटाई जो कुएँ की लिलारी पर रखी जाती है, इससे कूँड़ में चोट नहीं लगती; २७३ ईख की खोइया के रस का शीरा; २९५,३०३ चीनी से चुआ हुआ शीरा।

चोट्टी–१६१ [संज्ञा] जो गाय पूरा दूध नहीं देती थन में चुरा रखती है।

चोत–३२५ [संज्ञा] गोबर का चोत।

चोरकटि–१६१ [संज्ञा] दे० 'चोट्टी'।

चोसा–२६७ [संज्ञा] सँड़सी की भांति एक औजार।

चौढ़ा–२६,३१,४० [संज्ञा] वह स्थान जहाँ कुएँ से मोट निकाल कर गिराते हैं।

चौक–३८९,४०९ [संज्ञा] चौक के आकार की बुनावट (सं० चतुष्क प्रा० चउक्क)।

चौकली–३८९ [संज्ञा] चारपाई की एक प्रकार की बुनावट (सं० चतुः कलिका)।

चौकी–३५६ [संज्ञा] एक चौकोर आभूषण (चतुष्की)।

चौखट–२१३ [संज्ञा] दरवाजा की वह लकड़ी जो नीचे की ओर रहती है (चतुर् + काष्ठ)।

चौखटा–२४२ [संज्ञा] आरे को खींचने के लिए उसकेचारों ओर लगी लकड़ी।

चौपहल–१४,३१३ [वि०] चार पहल वाला (चौ + पहल)।

चौमासा–७,७४,१५० [संज्ञा] चारमास अर्थात् वर्षा भर जोत कर तैयार किए जाने वाले खेत (सं० चातुर्मास्य)।

छ

छँटनी–१३,१०४ [संज्ञा] वर्षा में घास-पात निकालने का कार्य (हिं० छाँटना); १३ मुहा० **छँटनी मारब**–छँटनी करना।

छकली–३८४ [संज्ञा] छ सोक की बुनावट (सं० षट्कलिका)।

छक्का–३६४ [संज्ञा] सोने के छोटे-पत्तर के टुकड़े (सं० षट्कं प्रा०

।

छज्जा–२१६ [संज्ञा] ओरौती के नीचे की छाजन (सं० छाद्यं)।
छटंकी–३२८ [संज्ञा] छटाँक (षट् + टंक)।
छटकनहिया–१५७ [संज्ञा] दूध देने के समय कूदने फांदने वाली गाय।
छठइयाँ–११६ [संज्ञा] छठां भाग (सं० षष्ठ)।
छड़–३२० [संज्ञा] लोहे का पतला डंडा (सं० छटा)।
छतनार–९३ [वि०] छाता की भांति फैला हुआ (छत्र–नाल)।
छतरभंग–१६८ [संज्ञा] वह बैल जिसका डील गिर गया हो (सं० छत्रभंग)।
छतरी–३४४ [संज्ञा] बांस का छाता (सं० छत्रिका)।
छद्दरि–१६७ [संज्ञा] छः दांत वाला (षड् + रदः)।
छनिहर–२०३ [वि०] छानवाला घर (छादन + घर)।
छनौटी–२०४,२०५ रहठा की पतली कंछियाँ जो बंधन के काम में आती हैं।
छन्ना–३५८ स्त्रियों की कलाई का एक आभूषण (सं० छादनकः)।
छपकन–२०२,२०४ [वि०] वह बैल जो जरा सा छूने से उत्तेजित हो उठे।
छप्पर–२०२ [संज्ञा] फूस की छाजन (सं० छदिपटः)।
छरहरा–३३७ [संज्ञा] पतला सीधा बांस (सं० छटाधरः)।
छर्रा–१ [संज्ञा] छोटे-छोटे कंकड़ के टुकड़े (सं० क्षर)।
छर्रही–१ [वि०] छर्रा युक्त। यथा, छर्रही मिट्टी।
छलकउआ–४४ [वि०] छलकने वाली। यथा, छलकउवा कियारी।
छल्ला–१७२ [संज्ञा] लोहे का गोल चुल्ला।
छवँका–२७२ [संज्ञा] अधिक आंच के कारण बरतन का जलना।
छवाई–२१६,२१७ [संज्ञा] छाजन का कार्य (सं० छादन)।
छाँटब–४०६ [क्रि०] काँड़ी में डाल कर किसी अनाज को साफ करना।
छाँही–७ [सं०] छाया।
छागल–३६१ [संज्ञा] पैर का एक पटरीदार गहना।
छान–२०२ [संज्ञा] फूस की छाजन (सं० छादन)।
छानब–१६१ [क्रि०] लात चलाने वाली गाय के पिछले पैरों को किसी डोरी से बांधना।
छाना–१६१ [संज्ञा] गाय को दुहते समय उसके पिछले पैरों को बांधने की रस्सी।
छानि-छान्हि–२०२ [संज्ञा] दे० 'छान'।
छापन–२४१ [संज्ञा] दे० 'छोपन'।
छापब–११६ [क्रि०] सनई के पौधों के आँटों को खड़ा करके ठोंकना ताकि सब डंठल बराबर हो जायँ (अनु० छप-छप)।
छाला–२६४ [संज्ञा] गाय भैंस का चमड़ा (चर्मकारों की बोलचाल)।
छिउँकी–२५५ [संज्ञा] लकड़ी ढोने

के लिए एक प्रकार का रस्सी का फन्दा।

छिकुला–२०४ [संज्ञा] रहठा की पतली-पतली कंछियाँ।

छिटउववा वा छिटउवा–२७२ [वि०] छिछला कड़ाह यथा, छिटउवा कड़ाह।

छिटऊ–११४,२७६ [वि०] छीटी हुई यथा, छिटऊ पतई या छिटऊ पुअरा (सं० क्षिप्त)।

छिटकाइब–३०९ [क्रि०] छिटकना का स०, अलग-अलग करना, उधेरब (सं० क्षिप्)।

छिड़काव–१२२ [संज्ञा] छिड़कने का कार्य (सं० क्षिप्)।

छिटिकब–७३ [क्रि०] छिटकना (सं० क्षिप्)।

छिनुआ हल–१२३ [संज्ञा] ईख की बोआई में वह हल जो कूँड़ बनाता है (सं० छिन्न–)।

छिबरी–१५५ [संज्ञा] कई रंग वाली गाय।

छिबुनहिया, छिबुनही–१५७ [संज्ञा] जो गाय केवल अच्छी-अच्छी चीजें खाना चाहती है।

छिमउट–९१,९८,१०१ [संज्ञा] मटर, अरहर, सरसों आदि की वह छीमी जिसका दाना दँवाई से न निकला हो (सं० शिम्बी+पुट)।

छिरकी–१७२ [संज्ञा] बैल के दोनों ओर की दोगाही।

छींटा–१९६ [संज्ञा] वह झउआ जिस से कुएँ की चँड़वाही के समय मिट्टी निकालते हैं; २८९ सरकंडा की एक प्रकार की चटाई जिस पर रस छाना जाता है।

छीनब–१२३ [क्रि०] काटना।

छीना–२३३ [संज्ञा] मिट्टी का एक छिछला पात्र जिसमें कुम्हार राख रखता है (सं० क्षीण–)।

छीनी–२६७ [संज्ञा] दे० 'छेनी'।

छीबुनि–१५७ [वि०] दे० 'छिबुनही'।

छीमी–८९,९१,९८ [संज्ञा] फली (सं० शिम्बी); २० रहँट के चाक के किनारे सिंघाड़ेदार कटे हुये होते हैं जिन्हें छीमी कहते हैं।

छीरा–३०५ [संज्ञा] सूत के बने हुये गोले में सूत के थोड़े-थोड़े समूह (हिं० छोर=किनारा सं० छोरण ?)।

छीलन–३४२ [संज्ञा] बाँस आदि का छिलका जो छीलने पर निकलता है (सं० छल्ल)।

छीवन–२३१ [संज्ञा] दे० 'छेवन'।

छुआइब–१६१ [क्रि०] स्पर्श कराना हिं० छुआना (छुअब का प्रे०, सं० छुप्)।

छुच्छ–२५ [वि०] दे० 'छूँछ'।

छुछूछी–१९३ [संज्ञा] बैल का मूत्र स्थान (तुच्छ या अनु० छू छू)।

छुलवइया–२७६ [संज्ञा] दे० 'छोलवैया'।

छूँछ–२५ [संज्ञा] खाली (सं० तुच्छ)।

छूरा–३७१ [संज्ञा] बाल बनाने का औजार (सं० क्षुरक)।

छूरी–३६८ [संज्ञा] काटने का एक औजार (सं० क्षुरिका)।

ड़ी—३५,२०१ [संज्ञा] कुएँ पर का पावा।

छेव—१० [संज्ञा] फरसा से एक बार में जितनी मिट्टी उठाई जाती है।

छेवन—२३१ [संज्ञा] एक डोरा जिससे कुम्हार चाक पर से बर्तन उतारता है। (सं० छेदन)।

छेही—१० [संज्ञा] वही।

छोंड़—२३६ [संज्ञा] मिट्टी का एक बड़ा बर्तन (सं० द्रोणि)

छोटका—१३४ [वि०] छोटे आकार का।

छोटकी—८७,११७ [वि०] छोटी, छोटका का स्त्री०।

छोत—३२५ [संज्ञा] दे० 'चोत'।

छोपन—२४१ [संज्ञा] आँवाँ पर किया गया लेप।

छोर—३०,३८२ [संज्ञा] बरहा के किनारे पर बँधी हुई छोटी रस्सी।

छोरई—१५० [संज्ञा] पोस्त का अंकुर।

छोलवैया—२७६ [संज्ञा] ईख की पत्ती छोलने वाला।

ज

जँगला—२५३ [संज्ञा] छड़दार खिड़की या दरवाजा।

जंघा लगव—३६ मुहा०. थाम्ह से सटकर ढेंकुर का चलना।

जतरी—३४६ [संज्ञा] सोनारों का एक औजार जिससे सूत (तार) खींचते हैं (सं० यन्त्रिका)।

जगत—२०१ [संज्ञा] कुएँ के ऊपर चारों ओर बना हुआ चबूतरा जिस पर खड़े होकर पानी भरते हैं।

जजमान—२७४ [संज्ञा] चमार जिसकी सौरी-बियौरी कमाता है वह चमार का जजमान कहलाता है (सं० यजमान)।

जजमानी—२७४,३६७ [संज्ञा] यजमान का भाववाचक।

जटहा बैल—१६५ [संज्ञा] जटा वाला बैल।

जड़हन—८,५९,१०३ [संज्ञा] एक धान जिसके पौधे एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह बैठाये जाते हैं—इसे अगहनी धान भी कहते हैं (जटा+धान्य)।

जबर—३,७,१८३ [वि०] दृढ़ (फ़ा० ज़बर)।

जमुनी—२७४ [संज्ञा] एक छोटा सा मिट्टी का पात्र जिसमें लगभग आधा सेर ईख का रस आता है।

जयतुआ—३६९ [संज्ञा] दे० 'जिउत'।

जर—८ [संज्ञा] जड़ (सं० जटा)।

जरई—११२ [संज्ञा] धान का नया पौधा जो रोपने के लिए तैयार किया जाता है (जटा—); जरई बैठाइब—११२ मुहा० जरई को उखाड़ कर दूसरी जगह बैठाना; जरई रोपब—वही।

जरखर—१२२ [संज्ञा] ईख के जड़ के भाग।

जरबन—३६९ [संज्ञा] एक डोरी जिससे स्त्रियाँ धोती को कमर के पास बाँधती हैं (फ़ा० ज़ेरबंद—घोड़े के तंग को कसने के लिये पेटी)।

जरी—८ [संज्ञा] जिस खेत से जो खरीफ फ़सल कटती है उस खेत को उस चीज की जरी कहते हैं। यथा, जोन्हरी की जरी।

ज़रेठ़ी—१८९ [संज्ञा] दूध को मेटी में

जो दूध का जला हुआ भाग लगा रहता है (सं० ज्वल्)।

जरौंधा–३३३ [संज्ञा] बांस का जड़ वाला भाग।

जवनार–९ [संज्ञा] जिस खेत से जौ कटा हो (सं० यव–)।

जवा–३६४ [संज्ञा] जौ (यव)।

जाँत, जाँता–४०२ [संज्ञा] आटा पीसने की चक्की जो हाथ से चलाई जाती है (सं० यंत्र)।

जाँती–५० [संज्ञा] जांत के उपगैटा के आकार से मिलती-जुलती मिट्टी की एक चीज जिसका प्रयोग खेत के चूहों को मारने के लिये किया जाता है।

जाठ–२६६,३२४ [संज्ञा] कोल्हू की वह बड़ी लकड़ी जो पेरती है (सं० यष्टि)।

जानकार–१९३ [संज्ञा] वह व्यक्ति जो कुछ असाधारण प्रश्नों यथा, कुआं खोदने पर पानी कहां निकलेगा आदि का उत्तर देता है (सं० ज्ञान–)।

जाबा–३८२ [संज्ञा] बैल के मुँह पर बाँधी जाने वाली रस्सी की बनी एक जाली ताकि वह खा न सके (सं० यामक)।

जावन–१८९ [संज्ञा] दूध को जमाने के लिये डाला गया पदार्थ (सं० यमन)।

जिउत–३६९ [संज्ञा] आश्विन कृष्ण अष्टमी को हिन्दुओं में पुत्रवती स्त्रियाँ इस व्रत को करती हैं (जीवित पुत्र)।

जीभ–२१७ [संज्ञा] थपुआ का निकला हुआ सँकरा भाग (सं० जिह्वा)।

जीरा–१३३ [संज्ञा] जोन्हरी के पौधों में सिरे पर का फूल (सं० जीरक); मुहा० **जीरा फूटब**—जीरा निकलना; **जीरा मसकब**–जीरा नष्ट होना; **जीरा लेब**–जीरा निकलना।

जुआ–१९ [संज्ञा] दे० 'जूआ'; ४०२ जांत चलाने के लिये लगाई गई खूँटी, (सं० युज् – जोड़ना) तु० हथवँड़।

जुआठ-जुआठा–१७,१९ [संज्ञा] दे० 'जूआ'।

जुआर–३४ [संज्ञा] जोड़ी। यथा, एक जुआर बैल (सं० युग–)।

जुगनू–३५६ [संज्ञा] स्त्रियों के गले का एक आभूषण जिसमें शीशा जड़ा रहता है।

जुट्टा–२८० [संज्ञा] सरपत का जुट्टा, सरपत के पेड़ों का समूह।

जुताई–२५ [संज्ञा] जोतने का कार्य।

जुलाहा–३०५ [संज्ञा] कपड़ा बुनने वाली एक जाति (फा० जुलाह ?)।

जुवाठ–१७ [संज्ञा] दे० 'जुआठ'।

जूआ–१४ [संज्ञा] जोताई या हेंगाई के समय बैलों की गरदन में पहनाया जाने वाला लकड़ी का एक सामान (सं० युग)।

जूड़ देब–३०० मुहा० शीरे के उफान को पानी का छींटा देकर शांत करना।

जूड़ा–३५५ [संज्ञा] स्त्रियों के सर के बाल का बँधा हुआ एक रूप।

जून–१५२ [संज्ञा] समय (सं० युवन्)।

जूस–१५९ [संज्ञा] दाल का थिराया हुआ पानी; ३८९ युग्म संख्या।

जेंवर–३७५ [संज्ञा] रस्सी (जेंवरी—

रस्सी, सं० जीवा-)।

जेरुका-२७६ [संज्ञा] ईख की छोटी-छोटी जड़ें (हिं० जड़ सं० जटा)।

जैजात, जैदाद-४९ [संज्ञा] फसल (फ़ा० जायदाद)।

जोइना-२८,११०,२०९,३७६ [संज्ञा] सन, पुआल या सरपत की ऐंठी हुई रस्सी (सं० योजनिका)।

जोइनाब-१५२ [क्रि०] योनि का प्रसव के निकट फैल जाना (सं० योनि-)

जोइयँड़-३४२ [संज्ञा] बाँस की गाँठ से दूर वाला नरम भाग (हिं० जोय सं० योषित् ? + कांड)।

जोखरब-२० [क्रि०] बैलों को जुआ पहनाना (सं० युग-?)।

जोट-३६२ [संज्ञा] पैर के अँगूठे में पहना जाने वाला आभूषण (सं० योटक)

जोत-३१०,३११ [संज्ञा] बुनाई के समय काम आने वाली रस्सी (सं० योक्त्रक)।

जोतनी-४ [संज्ञा] जोताई।

जोतब-१४ [क्रि०] खेत में हल चलाना, मुहा० **गाड़ी जोतब**-गाड़ी में बैल जोतना।

जोता-२५४ [संज्ञा] गाड़ी वाले बैल के गले के नीचे से जाने वाली रस्सी।

जोती-२८२ [संज्ञा] तराजू के पल्लों की डोरी जो डाँड़ी से बँधी रहती है। (सं० योक्त्रिका)।

जोधन-१९ [संज्ञा] वह रस्सी जिससे जुए की लकड़ियां बंधी रहती हैं (सं० युग -)।

जोन्हरिहा-९ [वि०] जिस खेत से जोन्हरी कटी हो (सं० ज्योत्स्ना -)।

जोन्हरी-१३२ [संज्ञा] ज्वार (सं० ज्योत्स्ना -)।

जोन्हरौटा-१३३ [संज्ञा] जोन्हरी कटा खेत।

जोन्ही-२५६ [संज्ञा] गाड़ी के पहियों के पुट्ठों को आपस में जोड़ने के लिए लकड़ी ठोंकते हैं जिन्हें जोन्ही कहते हैं (सं० योजनिका)।

जोरई-२४४ [संज्ञा] लकड़ी ढोने के लिये लकड़ी के दोनों किनारों पर रस्सी का फन्दा लगाते हैं इस रस्सी को जोरई कहते हैं (हिं० जोड़-सं० युज्)।

जोरन-१८९ [संज्ञा] दूध जमाने का जामन।

जोरियाइब-२४१ [क्रि०] एक के ऊपर एक तहा कर रखना।

जौ-७७ [संज्ञा] एक अन्न (सं० यव) मुहा० **जौफूटब**-जौ की बाल का बाहर आना।

जौसन-३५७ [संज्ञा] बाहु पर पहनने का एक आभूषण (फ़ा० जौशन]

ज्वार-१३२ [संज्ञा] एक अन्न।

झ

झँझरी-२३९ [संज्ञा] मिट्टी का एक पात्र जिस में दीपक रक्खा जाता है, प्रकाश बाहर आने के लिये इसमें छेद बने रहते हैं (सं० *झर्झरिका, तु० कर्करिका, गर्गरिका)।

झउआ-१९६ [संज्ञा] रहठा की बड़ी टोकरी दे० 'झौआ'।

झकटा-९० [संज्ञा] मटर का पौधा बढ़ने पर उलझा हुआ रहता है इस

उलझे रूप को झकटा कहते हैं ।

झगड़ा–९० [संज्ञा] दे० 'झकटा' ।

झनक–१७८ [संज्ञा] झुनझुनी–एक प्रकार का वायु रोग (अनु० झन-झन) ।

झन्नहोब–३, १९७ [क्रि०] लुप्त होना दे० 'झँजाब' ।

झन्ना–२६५ [संज्ञा] आटा चालने का चमड़े का एक यंत्र (सं० क्षरण= छनना) ।

झरोखा–२१३ [संज्ञा] झँझरी, छोटी खिड़की ।

झाँखर–११२ [संज्ञा] झाड़-झंखाड़ ।

झाँझ–३६१ [संज्ञा] पैर का पोलदार कड़ा ।

झाऊ–३८६ [संज्ञा] एक प्रकार का पेड़ (झाउक) ।

झाड़ब–२६५ [क्रि०] झन्ने से अनाज झाड़ना ।

झारब–१२,१२३ [क्रि०] किसी स्थान को काट-छाँट कर मिट्टी निकालना । यथा, आरि झारना, गोल झारना ।

झिरझिराब–१९१ [क्रि०] पानी का धीरे धीरे निकलना ।

झींक, झींका–४०३,४०४ [संज्ञा] जितना अन्न पीसने के लिए एक बार चक्की में डालते हैं ।

झीली–३३२ [संज्ञा] बांस छीलने से जो पतला-पतला छीलन निकलता है ।

झुकउवा–२७२ [संज्ञा] दे० 'झुकवा' ।

झुकनी–२७२ [संज्ञा] झोंकने वाली लकड़ी ।

झुकवइया–२७२ [संज्ञा] झोंकने वाला ।

झुकवा–२७२ [संज्ञा] गुलउर का मुँह–कड़ा जिधर से पत्ती आदि झोंकी जाती है ।

झुमका–३६५ [संज्ञा] कान का एक आभूषण (हिं० झूम) ।

झुराब–२६५ [क्रि०] सूखना ।

झुलनी–३६४ [संज्ञा] नथिया के साथ पहने जाने वाला एक आभूषण ।

झुलसब–९३ [क्रि०] झुलसना, आंच लग जाना ।

झूक–२७२ [संज्ञा] खर-पात जो गुलउर में झोंका जाता है ।

झँजाब–१२७ [क्रि०] झन्न हो जाना, लुप्त हो जाना (सं० ध्मात्=फूंकना, पा० झा=जलना) ।

झोकवा–२७२ [संज्ञा] दे० 'झुकवा' ।

झोरब–२८६ [क्रि०] कड़ाह के शीरे को तामी से उठाकर धीरे-धीरे गिराना, इसे ओसाना भी कहते हैं (प्रा०झोरण) ।

झोला–२६१ [संज्ञा] थैला ।

झौआ–३८५ [संज्ञा] रहठा की बड़ी टोकरी ।

झौली–३८५ [संज्ञा] झौआ का छोटा रूप ।

ट

टटरा–२५३ [संज्ञा] बाँस का दरवाजा ।

टड़िया–३५७ [संज्ञा] चाँदी का एक आभूषण ।

टड्डा–३५७ [संज्ञा] बाजू का एक आभूषण (सं० ताड) ।

टाँका–३५२ [संज्ञा] जोड़, गहने के बनाने में जो जोड़ लगता है (सं० टंक) ।

टाँगा–२४२ [संज्ञा] लकड़ी काटने या चीरने-फाड़ने का औजार (सं० टंग) ।

टाँगी–२४२ [संज्ञा] टाँगा का अल्पा० ।

टाँड़–५ [संज्ञा] दूर। यथा, टाँड़े का खेत (नि० टाँड़ = दूर)।

टाँसा–१७८ [संज्ञा] पशुओं की एक बीमारी जिसमें हाथ पैर की नसों में तनाव होता है (सं० त्रस्–)।

टाट–२६० [संज्ञा] सुतली का बुना हुआ एक बिछावन।

टाटी–५२,१३७ [संज्ञा] बाँस या रहठा की टट्टी या बहुत छोटी मड़ई जो खेत में रखवाली के लिए बनाई जाती है।

टिकाऊ–२०० [वि०] टिकने वाला।

टिकुई–१५६ [वि०] ऐसी गाय जिसके मस्तक पर टीके का चिह्न हो (हिं० टीका, प्रा० टिक्किया)।

टिकुरी–३७४,४०० [संज्ञा] तकली (सं० तर्कु प्रा० तकुआ)।

टिलूठी–३८६ [संज्ञा] बहुत पतली रहठा या झाऊ की कंछियाँ।

टिसुंरियाब–८० [क्रि०] छोटा रह जाना, विकसित न होना।

टिहुकब–३९ [क्रि०] आवाज करना यथा, गड़ारी का टिहुकना।

टीक–३५६ [संज्ञा] गले का एक आभूषण।

टीकुर–३२९ [वि०] ऊँची जमीन जो बरसात में सूखी रहती हो।

टीड़ी–४९ [संज्ञा] टिड्डी (सं० टिट्टिभ)।

टूँड़–७७ [संज्ञा] बाल में सींक की तरह नोकीली भाग (सं० तुंड); ७९ मुहा० **टूँड़ मसकब–टूँड़** का सूख कर टेढ़ा होना।

टूटा–५१ [संज्ञा] हानि (सं० त्रुट्)।

टेंगारा–२४२, २४५ [संज्ञा] दे० 'टाँगा'।

टेकुरी–४१० [संज्ञा] सलाई (सं० तर्कुक)।

टेकुआ–३१७ [संज्ञा] तकुआ (सं० तर्कुक, प्रा० टक्कुअ)।

टेड़ुआ–२१४ [संज्ञा] मकान की छाजन में बड़ेर का बोझ धरन पर रहे इस कारण धरन में कहीं-कहीं लकड़ी लगाते हैं जिन्हें टेड़ुआ कहते हैं।

टेढ़–१० [वि०] टेढ़ा।

टोंक–५२ [संज्ञा] छोर।

टोंटा–७९ [संज्ञा] जौ की बाल का सूखने पर टोंट की भांति झुका रूप। मुहा० **टोंटा तोड़ब, टोंटा नोचब या टोंटा मारब**–बाल तोड़ना।

टोंटियाइब–१४८ [क्रि०] टोंटीदार बर्तन से सींचना।

टोंटी–२३३ [संज्ञा] तुतुई (सं० तुण्ड)।

टोई–२३३ [संज्ञा] टोंटी या तुतुई।

टोटका–१६१, १७८ [संज्ञा] किसी कष्ट या बीमारी के लिए किया गया अंधविश्वास युक्त उपाय।

टोड़ा–१४ [संज्ञा] हल का वह पतला भाग जहां पचार बैठाया जाता है; २१६ चोंच के आकार की गढ़ी हुई लगभग दो हाथ लम्बी लकड़ी जो छज्जा के सहारे के लिए होती है।

टोपी–२४२ [संज्ञा] बरमा के माथ पर लगी टोपी सदृश लकड़ी।

ठ

ठट्टर–३२४ [संज्ञा] दे० 'टटरा'।

ठढ़ियाइब–१२५ [क्रि०] खड़ा किया जाना (प्रा० ठड्ड–) ।

ठनकब–१२७ [क्रि०] सूख जाना ।

ठनकी माटी–३ [संज्ञा] सूखी माटी ।

ठप्पा–३४६ [संज्ञा] एक प्रकार का साँचा (सं० स्थापन हिं० थापन,थाप) ।

ठहरब–१५८ [क्रि०] ठहरना (सं० स्थविर) ।

ठाँठ–१६२ [वि०] गाय या भैंस जो दूध न देती हो ।

ठाट–२०५ [संज्ञा] खपरैल छाने के पूर्व बनाया गया ढाँचा या ठाट (सं० स्था = खड़ा होना) ।

ठिकरा–७ [संज्ञा] खपड़े का टुकड़ा ।

ठिकरहवा–७ [वि०] ठिकरावाला । यथा ठिकरहवा खेत ।

ठिकरही–३ [वि०]ठिकरहवा का स्त्री० ।

ठिकवइया–२१२ [संज्ञा] दीवाल बनाने वाला ।

ठिकुरहिया–१५७ [संज्ञा] दे० 'ठिकुरही'

ठिकुरही–१५७ [संज्ञा] जिस गाय के गले में ठीकुर पड़ी हो । दे० 'ठीकुर' ।

ठीकब–२७१ [क्रि०] किसी चीज को किसी स्थान पर स्थायी रूप से रखना । यथा, कड़ाह को भट्ठे पर ठीक करना (सं० स्थित्) ।

ठीकुर–१५७ ,१८० [संज्ञा] लकड़ी का टुकड़ा जो गाय के गले में डाला जाता है (सं० स्तोक = टुकड़ा) ।

ठीहा–२४७ [संज्ञा] जिस लकड़ी पर लकड़ी को रखकर गढ़ते हैं उसे ठीहा कहते हैं; ३४६ वह लकड़ी जिसमें सोनार निहाई गाड़कर रखता है (सं० स्थिति) ।

ठुर्री–३०२ [संज्ञा] चीनी के बड़े टुकड़े जो चालने पर निकलते हैं; ४०६ वह भुना हुआ दाना जो खिला न हो ।

ठेउँका–२६ [संज्ञा] बेड़ी चलाते समय पानी के लिए बनाया गया छोटा गड्ढा ।

ठेउँकी–२६ [संज्ञा] ठेउँका का अल्पा०

ठेंठी–२८९ [संज्ञा] सूराख मूँदने की एक लकड़ी ।

ठेहरी–२३ [संज्ञा] जमीन जोतने के समय जो हिस्सा छूट जाता है; २५१ दरवाजे के चूर के लिए लकड़ी या ईंट का आश्रय; ६१,६४ मुहा० ठेहरी पड़ब-किसी औजार की धार गोंठिल होना ।

ठोपारा–२०१ [संज्ञा] शीरे की बूँद ।

ठोर्री–४०६ [संज्ञा] दे० 'ठुर्री' ।

ड

डंठल–६८ [संज्ञा] डाँठ (सं० दंष्ट्रा) ।

डंड़ा–३३,४३ [संज्ञा] चरखी की धुरी, धुरो या धुरा (स० दण्ड) ।

डंडादार–३३ [वि०] धुरादार ।

डँड़वत–१२८ [संज्ञा] ईख की कड़ी पोय (दण्ड + पत्र) ।

डँड़हरी–२५३ [संज्ञा] जंगले में बेंड़े-बेंड़ लगने वाली लकड़ी ।

डग मारब–२४४ मुहा० हिलना, चलना

डभका–९१ [संज्ञा] पानी से भीग कर फूली हुई मटर ।

डलरी–४१० [संज्ञा] दे० 'डलिया' ।

डलिया–४१० [संज्ञा] बाँस आदि की टोकरी (सं० डलक –) ।

डाँगर–२६३ [संज्ञा] जानवर, पशु (विशेष

डोकिया–४०० [संज्ञा] काठ का छोटा कटोरा तु० 'डुकिया'।

डोकी–२३३ [संज्ञा] दे० 'डुकिया'।

डोम–३४० [संज्ञा] एक जाति विशेष।

डोरा–६३ [संज्ञा] एक घास (सं० दोरक)।

डोरी–३२० [संज्ञा] रस्सी।

डोल–२३३ [संज्ञा] मिट्टी का बड़ा पात्र; २६१ लोहे की एक प्रकार की गोली बाल्टी।

डोला–४१० [संज्ञा] मूँज की डाली, पालकी (सं० दोलक)।

डोलाइब–४०९[क्रि०] चलाना, हाँकना। यथा, बेना डोलाना।

ढ

ढकना–४९ [संज्ञा] पंखा, डैना।

ढकनी–२३३ [संज्ञा] परई के आकार का मिट्टी का पात्र।

ढगढोलन–३०६ [वि०] नारा जब बराबर से भरा नहीं रहता तब उसे ढगढोलन कहते हैं (अनु०)।

ढरकउआ–३५८ [संज्ञा] हाथ का एक गहना।

ढरका–१७८ [संज्ञा] जानवरों को दवा पिलाने के लिये बाँस का चोंगा।

ढरकी–३१२ [संज्ञा] जोलाहों का एक औजार जिससे बाना फेंका जाता है।

ढरवा–३४३ [संज्ञा] दौरा से बड़ा बाँस का एक बर्तन।

ढरियाइब–७३ [क्रि०] दहराना—राशि को एक बार ओसाने के बाद पुनः ओसाना।

ढरुआ–३६१ [वि०] ढाल कर बनाया हुआ।

ढाँचा–२५७ [संज्ञा] बैलगाड़ी का वह भाग जिस पर सामान लादा जाता है।

ढाँसब–१६९ [क्रि०] ढाँसना या खाँसना।

ढाँसा–१७८ [संज्ञा] पशुओं के ढाँसने की बीमारी (अनु०)।

ढार–३६५ [संज्ञा] कान का एक गहना।

ढारब–३४७ [क्रि०] किसी धातु को गला कर डालना (हिं० ढालना)।

ढाल–२२३ [संज्ञा] छाजन का लरकाव।

ढाहा–७४,८०,८६,१४६ [संज्ञा] जौ गेहूँ और प्याज का एक रोग जिसमें पत्तियाँ पीली पड़कर गिर जाती हैं।

ढूँढ़ा–२३८ [संज्ञा] बर्तन रंगने के लिये काबिस मिट्टी को सानकर बनाया हुआ एक गोला।

ढूहा–२३६ [संज्ञा] बरतन बनाने के लिये कुम्हार की मिट्टी का ढेर; २३६ हौदा आदि बनाने के लिए मिट्टी का ठोस ढाँचा।

ढेंकची–३२ [संज्ञा] ढेंकुर का एक प्रकार से छोटा रूप। दे० 'ढेंकुर'।

ढेंकुर–८६,३३४ [संज्ञा] सिचाई का एक साधन (सं० ढेक—पानी की एक चिड़िया जिसकी गर्दन लम्बी होती है; २७,२८ [संज्ञा] ढेंकुर में लगनेवाला बल्ला।

ढेंका–३२४ [संज्ञा] जाठ के ऊपरी भाग को कातर से सम्बन्धित करने वाली लकड़ी।

ढेंढ़ी–१०२ [संज्ञा] तीसी का फली। तु०

तरायल–२९८ [संज्ञा] चीनी के खाते की अन्तिम पञ्जनी।

तरी–१३८ [संज्ञा] गीलापन (फा० तर)।

तरे–१४,१९ [संज्ञा] नीचे (सं० तल)।

तरेला, तरेली–१९[संज्ञा] दे० 'तरह्ला'।

तरेहटा–१९ [संज्ञा] वही।

तवक–३५६ [संज्ञा] हँसुली के आकार का गले में पहनने का एक आभूषण (अर० तौक़)।

तरें-तापर–१४३ [संज्ञा] अँतरें-दुसरे।

तरौटा–४०२,४०४ [संज्ञा] चक्की के नीचे वाला पाट (तल+पाट)।

तसगरा–३११ [संज्ञा] जुलाहे के तानों में लगने वाली सरई।

तह–३९७ [संज्ञा] पर्त (फा० तह)

ताँत–३१६ [संज्ञा] चमड़े की बनी हुई एक पतली रस्सी (सं० तंतु)

ताँता–२०५,२१५ [संज्ञा] बेंड़े-बेंड़ लगने वाला छाजन में बाँस जो मंझा और मंगर के बीच में रहता है।

ताकब–१२६ [संज्ञा] ताकना, देखना।

ताख–२११ [संज्ञा] गउँखा (अर०ताक)

ताग–११२ [संज्ञा] धान की बेहन का एक पौधा।

ताग-पाट–३४४,३६७ [संज्ञा] विवाह के अवसर एक शुभ वस्तु (सं० तार्कव हिं० तागा+पाट)।

ताड़ीकस–२३३ [संज्ञा] ताड़ी चुआने वाले (हिं० ताड़ी+कश)।

ताना–३४२ [संज्ञा] कपड़ा बुनने की एक प्रक्रिया (सं० तान=बिस्तार)।

तामी–२७४ [संज्ञा] एक बड़ी कलछुल (सं० ताम्र –)।

तारु–१२६ [संज्ञा] खेत का भीतरी भाग (सं० तालु –)।

तारू–१७८ [संज्ञा] तालु।

ताल–३,२६ [संज्ञा] एक बड़ा प्राकृतिक जलाशय (सं० तल्ल)

तावन–४२ [संज्ञा] जोड़; मुहा० **तावन लगाइब या तावन फेरब**–पानी की कटी हुई नारी को जोड़ लगाकर ठीक करना।

तावा–३,११ [संज्ञा] मिट्टी की भीतरी कड़ी सतह। यथा, तावा मारी; ११ मुहा० **तावा मारब**–तावा का खेत पर बुरा प्रभाव पड़ना।

तिकला–३७४ [संज्ञा] तेहरा किया हुआ बाध (त्रिक –)।

तिकिच–३४३ [संज्ञा] दौरी की अंतिम बुनावट।

तिनपखिया–१४१ [वि०] तीन पाख में तैयार होने वाली। यथा, तिनपखिया आलू।

तिबट–३७९ [वि०] तीन बट वाला, तेहरा।

तिबहल–२३ [वि०] तीन बाह जोता हुआ खेत।

तिरकोन्ना–२३ [संज्ञा] तिकोना (सं० त्रिकोण –)।

तिरकोन्नी–३८४ [संज्ञा] वही।

तिरछा–२३,२५ [वि०] तिकोना, (सं० तिरश्चीन)।

तिरछी–४०६ [संज्ञा] अरहर का कमजोर चुचका व टेढ़ा-मेढ़ा दाना दे० 'तिरछा'।

तिरबन्दी, तिरबन्नी–२०४,२१५[संज्ञा]

थान–१२८ [संज्ञा] ईख का समूह (स्थान)।

थाम–२७ [संज्ञा] खंभा (सं० स्तंभ)।

थाम्ह–२०८,२१४ [संज्ञा] वही।

थाम्हब–२०८ [क्रि०] थम्हब का प्रे० दे० 'थम्हब'।

थाला–४७ [संज्ञा] हाथा द्वारा सिंचाई के लिये पानी का छोटा गड्ढा (सं० स्थल)।

थिराब–१७७ [क्रि०] थिराना–भैंस का भैंसाने के लिए इच्छुक होना (सं० स्थिर –)।

थिरायल–१७७ [वि०] भैंसाने के लिए इच्छुक भैंस। यथा, थिरायल भैंस।

थूनही–२०३ [संज्ञा] किसी छोटे लट्ठे या बाँस का सहारा (स्थूण)।

थोब–२५९ [संज्ञा] बैल गाड़ी में पीछे की ओर लगी हुई एक लकड़ी जो गाड़ी को उलटने से बचाती है।

द

दँतारा–६५,११५ [संज्ञा] दाँत युक्त। यथा, दँतारा हँसुआ।

दँवरी–६९,३८२ [संज्ञा] वह रस्सी जिसमें दँवरी के समय बैल बाँधे जाते हैं (सं० दामन); मुहा० **दँवरी नाधब वा हाँकब**–दँवरी चलाना।

दँवाई–६९ [संज्ञा] बैलों द्वारा पइरि कुचलने का काम।

ददरिहा–११६ [संज्ञा] ददरी (बलिया में एक स्थान) के बैल।

ददरी–७८ [संज्ञा] जौ की अधपकी बाल।

दधिवँड़, दधिहँड़–१८९ [संज्ञा] दही की हाँड़ी (सं० दधि + भांड –)।

दमदानेदार–४० [वि०] सिंघाड़े की भाँति कटा हुआ रहँट की चाक का किनारा।

दबलिअहवा–१० [वि०] दे० 'तबलिअहवा'।

दबिहरा, दबेहरा–१५ [संज्ञा] एक प्रकार का हल जिसमें हल और हरिस एक ही लकड़ी में होते हैं।

दरब–३२९ [क्रि०] दरना (सं० दरण)।

दरबर–४२३ [वि०] मोटा–जो बारीक न हो। यथा, दरबर आटा।

दरवाजा–२५१ [संज्ञा] मकान के अन्दर जाने का प्रवेशद्वार; प्रवेशद्वार पर लगने वाला फाटक वा केवाड़ा।

दराना–४०५ [संज्ञा] जहाँ दाल दरने का काम होता है।

दरिया–४०३ [संज्ञा] जौ का आटा चालने पर जो मोटा अंश निकलता है (हिं० दलिया सं० दलित–)।

दरी–१४६ [संज्ञा] सोनार का एक औजार जिसमें घुंडी ऐसी गोली चीज गढ़ी जाती है (सं० दरी–)।

दर्पन, दर्पनी–३७१ [संज्ञा] शीशा (सं० दर्पण)।

दर्रब–१३१ [क्रि०] दर्रना—रगड़ कर बाल से दाना अलग करना (सं० दरण); १७८ रगड़ना।

दर्रा–१ [संज्ञा] दरार।

दलभन्ना–४०५ [संज्ञा] दाल झारने का झन्ना।

दलबादर–११९ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख।

अवस्था को दुद्धा घोंटब या लेब कहते हैं। दे० 'फूल घोंटब'।

दुधवानी–२९९ [संज्ञा] दूध और पानी का मिश्रण जो शीरे को मैल काटने के लिए प्रयुक्त होता है।

दुधहँड़ी–१८८ [संज्ञा] दूध की हाँड़ी।

दुधार–१७४ [वि०] अधिक दूध देने वाला पशु।

दुपहर–१८० [संज्ञा] मध्याह्न (हिं० दोपहर)।

दुबहल–२३ [संज्ञा] दोबार जोता हुआ खेत।

दुब्बर–१८० [वि०] कमजोर (दुर्बल)।

दुबिहन–३३७ [संज्ञा] एक प्रकार का बाँस।

दुरखन–२१३ [संज्ञा] दरवाजे के ऊपर रक्खी हुई लकड़ी या पत्थर (द्वार–)।

दुलहिनियाँ–११६ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख (दुर्लभ प्रा० दुल्लह)।

दुलारमती–११९ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख (दुलारना–सं० दुर्लालन)।

दुल्ला–२८२ [संज्ञा] एक जंगली पौधा जो शीरा साफ करने के लिए डाला जाता है।

दूध–१६२ [संज्ञा] दुग्ध (सं० दुग्ध); मुहा० दूध तोरब–गाय का दूध कम कर देना; १८८ दूध बैठाइब–उपलों की आग पर पकने के लिये मेंटी में दूध रखना।

दूब–६३ [संज्ञा] एक घास (सं० दूर्वा)।

दूबर–७ [वि०] पतला, कमजोर (सं० दुर्बल)।

देंवका–१२८ [संज्ञा] एक प्रकार का कीड़ा (फ़ा० दीमक)।

देवहटिया–१६३ देवहा नदी के आस-पास पाये जाने वाले बैल। दे० 'देवहा'।

देवहा–१६३ [संज्ञा] घाघरा नदी (सं० देववहा या देविका-)।

देवाल–२१२ [संज्ञा] दे० 'दीवार' मुहा० देवाल ठीकब–कच्ची दीवाल को काट-छाँट कर सुडौल बनाना। दे० 'भीत ठीकब'।

देसावर्री–८३, १३६ [वि०] परदेशी, जो स्थानीय न हो।

देसी–१०,११७,१३६ [वि०] अपने देश या स्थान में पाई जाने वाली (हिं० देशी, सं० देशीय)।

दोकला–३७४ [वि०] दोहरा किया हुआ। यथा, दोकला बाध।

दोख–३८४ [संज्ञा] अशुभ, वर्ज्य (सं० दोष)।

दोखड़ा–२३ [संज्ञा] दूसरी बार की जोताई।

दोखी–१६५ [वि०] दोष युक्त।

दोगाही–१७३,२५४ [संज्ञा] एक रस्सी जिसका सम्बन्ध बैल के नाथा से होता है। इससे बैल काबू में रहते हैं।

दोबट–३१६,३७९ [वि०] दोहरा।

दोबब–१८२ [क्रि०] दोबना–पशुओं को रोकने को दोबना कहते हैं (सं० दभ् , दम्)।

दोमट–१,४ [संज्ञा] दोरसी मिट्टी।

दोमा–३०३ [वि०] दूसरा (फ़ा० दोयम)।

दोमा चीनी–३०३ [संज्ञा] यह चीनी जो चुए हुए चोटे से बनती है।

दोमा चोटा–३०३ [संज्ञा] वह चोटा

धूलि); मुहा० धूल बुताइब—हाथा द्वारा ऐसी सिंचाई करना जिससे खेत की धूल मर जाय अर्थात् बहुत हल्की सिंचाई।

धेनु–१६२,१७७ [संज्ञा] बियाने के ५ या ६ मास तक गाय-भैंस को धेनु कहते हैं।

धोआ–११६ [संज्ञा] सनई के धोने पर जो धोया हुआ रेशा तैयार होता है, इसे सुतली भी कहते हैं।

धोइया–४०५ [संज्ञा] धोई हुई दाल (सं० धावन)।

धोख–४८ [संज्ञा] पशु-पक्षियों को धोखा देने के लिये मनुष्य का रूप बना कर खेत में खड़ा कर देना।

धोनारी–२८८ [संज्ञा] कड़ाह के शीरे का गरम-गरम धोवन (सं० धावन)।

धौंका–१२६ [संज्ञा] गरम हवा (धौंकना, सं० धम्)।

धौरी–१५५ [वि०] उज्ज्वल। यथा, धौरी गाय (सं० धवल)।

न

नइकी–११७ [वि०] नई। यथा नइकी ईख—वह ईख जिसका हाल ही में प्रचार हुआ हो (नव)।

नउ–२१ [क्रि०] बैलों को दाँये-बाँये चलने के लिये एक आदेश (सं० नम्–)।

नउकी–११७ [वि०] दे० 'नइकी'।

नकड़ा–१७८ [संज्ञा] नाक की एक बीमारी।

नक्काशी–२५१ [संज्ञा] गहना नकाशने का काम (अर० नक़्क़ाशी)।

नथिया–३६४ [संज्ञा] नाक का एक आभूषण (सं० नाथ=नाक की रस्सी)।

नथुना–१७१ [संज्ञा] नाक का अगला भाग जिसमें दोनों ओर छेद होते हैं (सं० नस्त)।

नथुनी–३६४ [संज्ञा] दे० 'नथिया'।

नन्हिया धान–१०३ [संज्ञा] एक प्रकार का धान।

नपना–२४७ [संज्ञा] लकड़ी नापने के लिए कोई माप दण्ड; ३२८ तेल नापने का पात्र (सं० मापन)।

नयनू–१९० [संज्ञा] दही से निकाला हुआ कच्चा घी (सं० नवनीत)।

नरई–७९, ४०९ [संज्ञा] जौ-गेहूँ के पौधे का पोला डंठल (सं० नाल–), १७८, एक प्रकार की पानी की घास जिसका डंठल पोला होता है।

नरचा–९० [संज्ञा] मटर की डाँठ।

नरमा–११९ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख (फ़ा० नर्म)।

नरा–३१२ [संज्ञा] सटल में चलने वाली वह लकड़ी जिस पर सूत भरा जाता है।

नरिया–२१७, २३३ [संज्ञा] छाजन के लिए थपुआ के साथ इसका प्रयोग होता है।

नरियाब–१६८ [क्रि०] अंडू बैलों का गाय को देखकर चिल्लाना तथा उनका वीर्यपात होना (सं० नद् प्रा० नडइ)।

नरिहर–२४१ [संज्ञा] आवाँ में लगी हुई वे हाँड़ियाँ जिनकी पेंदी में सूराख रहता है और जिनके द्वारा आवाँ में आग पहुँचाई जाती है।

निकार–५ [संज्ञा] गाँव का गोयड़ जहाँ शौच जाते हैं; १७८ किसी बीमारी के निकालने के लिए किया गया टोटका।

निकारब–८ [क्रि०] बेचना।

निकियाइब–२९७ [क्रि०] रूई के रेशों को एक सीध में करना, तूमना (निष्कृत)।

निकोलब–८९ [क्रि०] छीलना (हिं० निकोलना)।

निखरब–२९७ [क्रि०] साफ होना (हिं० निखरना सं० निक्षाल्–)।

निघारब–४०३ [क्रि०] गेहूँ की पिसाई की अंतिम अवस्था में जाँत में कुछ मोटे अनाज को डालकर बचे हुये अंश को पीस कर निकालना, तु० 'निहारब' (प्रा० णिहालण = निरीक्षण ?)

निथरब–२९३ [क्रि०] किसी द्रव पदार्थ का भलीभाँति चू जाना (सं० निस्तरति)।

निथरी–२२६ [वि०] ऐसी खली जिससे तेल चू गया हो। दे० 'निथरब'।

निपुनहिया, निपुनही–१५७ [वि०] ऐसी गाय जो अच्छी-अच्छी चीज खाती है और घटिया सामान से घृणा करती है (सं० निपुण–)।

निमकौड़ी–२२९ [संज्ञा] नीम का फल (सं० निम्ब + कपर्दिका)।

निमना–१९८ [वि०] नोमन माटी, दृढ़ मिट्टी (सं० निम्न)।

निम्मन–३,१८९,४०८ [वि०] दे० 'निमना'।

निरधू–४०१ [वि०] धुआँ से रहित आग (निर्धूम)।

निरवही–१०७ [संज्ञा] खेत की निराई।

निरवाही–६३,१२० [संज्ञा] वही।

निराई–६३,१०७ [संज्ञा] वही।

निहाई–२४६ [संज्ञा] सोनारों का एक औजार जिस पर किसी धातु को रख कर हथौड़े से पीटते हैं (सं० निघातिका)।

निहारब–४०३ [क्रि०] दे० 'निघारब'।

निहाव–२६७ [संज्ञा] लोहार इसी पर लोहा रखकर पीटते हैं। यह लोहे का होता है। दे० 'निहाई'।

नीचक–१९८ [संज्ञा] कुएँ के धरातल में बुनियाद के लिए डाली गई गोली लकड़ी (सं० नीच–), तु० 'नेवार'।

नीपुनि–१५७ [वि०] दे० 'निपुनही'।

नीमन–३,१९८,४०८ [वि०] दे० 'निमना'।

नींव–२१० [संज्ञा] मकान की नींव, बुनियाद (नेमि–)।

नेग–१९८ [संज्ञा] परजा को दिया गया एक प्रकार का पुरस्कार (फ़ा० नेग)।

नेरुआ–२२४ [संज्ञा] कोल्हू के नीचे के भाग में बनी हुई नाली जिससे तेल गिरता है (सं० नल–)।

नेवरवा–१४९ [संज्ञा] दे० 'नेवार'।

नेवार–१४९ [संज्ञा] एक प्रकार की मूली; १९८ पहिये के आकार का लकड़ी का वह गोल चक्कर जो कुएँ की नींव में बैठाया जाता है और जिसके ऊपर कुएँ की दीवार की जोड़ाई होती है (सं० नेमि) तु० 'नीचक'।

नेसुहा–१७९ [संज्ञा] गँड़से से चरी वालने के लिए जो लकड़ी गाड़ी जाती है।

नोनही–१ [संज्ञा] एक प्रकार की मिट्टी

जिसमें क्षार पदार्थ मिला रहता है (सं० लवण)।

नौतोरवा–७ [संज्ञा] परती जमीन तोड़कर बनाया हुआ खेत।

नौदरि–१६७ [संज्ञा] नौ दाँतों वाला बैल। कहा० '**नौदरि कहै नवो दिशि-खाँव। ले बढ़नी उपरेहितहिं खाँव।**'

नौहरा–१५ [संज्ञा] एक प्रकार का हल जिसके फार लम्बे होते हैं, यह अन्य हलों से अच्छा होता है; यह नया हल होता है।

प

पंखा–३१२, [संज्ञा] करगह के दोनों बगल की लकड़ियाँ जिनके सहारे करगह सरकता है; ३३४,३४४ [संज्ञा] हाँकने का पंखा (पंख, सं० पक्ष, प्रा० पक्ख)।

पंखिला करब–३४३ [क्रि०] दौरा के भीतरी भाग में बाँस की पतली पत्तियों की बेनी बना कर बैठाते हैं, इस बेनी के किनारे के भाग को पत्तियों से भरने को पंखिला करना कहते हैं।

पंखी–४० [संज्ञा] रहँट की सीढ़ी जिसमें पानी के लिये बालटियाँ लगी रहती हैं; ३४३ [संज्ञा] दे० 'पंखा'।

पँड़उस–६९ [संज्ञा] दँवाई के फलस्वरूप पइरि के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते हैं इन टुकड़ों को पँड़उस कहते हैं (सं० पिंड + कुश?)।

पँड़वा–१७७ [संज्ञा] भैंस का नर बच्चा। दे० 'पाँड़ा'।

पँड़िया–१७७ [संज्ञा] भैंस का मादा बच्चा। दे० 'पाँड़ी'।

पचइयाँ–११६ [संज्ञा] पाँचवे दिन (सं० पंचम)।

पइन–२६ [संज्ञा] एक बेड़ी द्वारा की गई एक दिन की सिंचाई को एक पइन कहते हैं; पानी जाने वाला रास्ता (प्रयाणिका ?)। तु० अ० मा० पइणि-यय (प्रतिनियत)।

पइया–१०९,११० [संज्ञा] वह धान जिसमें चावल न पड़ा हो; १०९ **पइया फांफर**–यह भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

पइरि–६९,८५ [संज्ञा] दँवाई के लिये अनाज का जो समूह फैलाया जाता है (सं० प्रकर वा सं० प्रदर (प्रदृ = टुकड़े टुकड़े करना) तु० म० पेर।)

पइलगहा–१६५ [वि०] दोषयुक्त।

पइली–२१ [अ०] हरवाहों की एक बोली जिसको वे बैलों को खेत तक ले जाने के लिये बोलते हैं।

पउदर–३४ [संज्ञा] सिंचाई वाले कुओं में वह ढालू भाग जिस पर बैल चलते हैं (पाद-दलित-)।

पउदरि–३२५ [संज्ञा] वही।

पउली–३६३ [संज्ञा] तलवा का विपरीत अंश (पाद-)।

पकठब–९०,१४४ [क्रि०] पकठना—पकना (प्रकृष्ट-)।

पकब–११ [क्रि०] बोआई के योग्य खेत तैयार होना।

पक्का करब–३०५ [वि०] पानी में सूत भिगोकर उसे दृढ़ करना। ऐसे सूत को **पक्का सूत** कहते हैं (सं० पक्व)।

पखियारी–३५६ [संज्ञा] गले का एक आभूषण।

पगहा–१७१,३८२ [संज्ञा] पशुओं के बाँधने की रस्सी (सं० प्रग्रह प्रा० पग्गह)।

पगही–२५४ [संज्ञा] पगहा का अल्पा०।

पचखा–३८४ [संज्ञा] धनिष्ठा आदि पाँच नक्षत्र जिनमें किसी नये कार्य का करना निषिद्ध है (हिं० पाचख सं० पंचक)।

पचरवाइब–३२४ [क्रि०] पचरवाना—कोल्हू आदि में पच्चर लगाना।

पचार–१९ [संज्ञा] जुआ के उपल्ला और तरल्ला को सम्बन्धित करने वाली लकड़ियाँ (हिं० पच्चर सं० पच्यते–?)।

पचीसा–६६ [संज्ञा] पच्चीस (पंचविंशति)।

पचौखा–२७८ [संज्ञा] पुरोहित के लिए निकाली हुई पाँच ईख (पंच+हिं० ईख)।

पछनी–२९८ [संज्ञा] दे० 'परछनी'।

पछाड़ देब–१६८ [क्रि०] पछाड़ देना, गिरा देना (सं० पश्च–)।

पछुआँ–१९८ [वि०] पश्चिम से आने वाली। यथा, पछुआँ हवा।

पछुमहा–१६३ [वि०] पश्चिम वाला। यथा, पछुमहा बैल।

पछुवाँ–६८,१२६,२३० [वि०] दे०

पछेला–३५८ [संज्ञा] हाथ का एक गहना।

पछोरब–३२९,४०६ [क्रि०] सूप से अनाज साफ करना।

पटकन–२१ [संज्ञा] बैल हाँकने का डंडा जिसके एक सिरे पर बैलों को मारने के लिए चमड़े का तीन-चार तार बँधा रहता है।

पटनई–२१३ [संज्ञा] दीवार में बाँस या लकड़ी गाड़ कर उस पर मिट्टी छोपकर सामान रखने के लिए एक चौड़ी जगह बनाते हैं (सं० पाट)।

पटनहियाँ–१४१ [वि०] पटना से आने वाली। यथा, पटनहिआँ आलू।

पटनी–२१३ [संज्ञा] दे० 'पटनई'।

पटरी–३६१ [संज्ञा] पटरी सदृश पैर का एक आभूषण।

पटहार–३५७,३६७ [संज्ञा] गहना गुहने वाली एक जाति (सं० पट्टकार ?) हिं० पटवा (पाट+वाह ?)।

पटिया–६ [संज्ञा] ऐसा खेत जो चौड़ाई की अपेक्षा अधिक लम्बा हो (सं० पट्टिका); ३२१ दे० 'पट्टी'।

पटुका–२१५ [संज्ञा] बड़ेर से ओरौती तक मकान की चौड़ाई में जो लकड़ियाँ लगती हैं (सं० पट्टिका)।

पटौधन–२१३ [संज्ञा] दरवाजे के ऊपर रखी हुई लकड़ी या पत्थर।

पट्टा–८९ [संज्ञा] मटर की फली में जब छोटे-छोटे दाने पड़ने लगते हैं तब उसे पट्टा कहते हैं, तु० 'पोपटा'; ३५८ कलाई में पहने जाने वाला गहना; ३७१ सर के बालों को पीछे की ओर फेरकर रखना (सं० पट्ट)।

पट्टी–३२० [संज्ञा] टाट की पटिया (सं० पट्टिका)।

पठौनी–१८७ [संज्ञा] चरवाहों के बच्चे दोपहर को जो बारी-बारी से खाना खाने घर जाते हैं (सं० प्रस्थाप्–)।

पड़ब–११७ [क्रि०] माल तैयार होना।

यथा, मोटी ईख में गुड़ अधिक पड़ता है।

पड़ोह–२२५ [संज्ञा] घर की नाली।

पतई–१२२ [संज्ञा] ईख की पत्ती (सं० पत्र); २७६ मुहा० **पतई बैठाइब**–आँटा बाँधने के लिए पत्ती समाकियाना।

पताँड़–५९,१२२,१२४ [संज्ञा] ईख के टुकड़े जो बोने के लिए काटे जाते हैं तु० गाँड़; ३९५ कोठिला के लिए बनाया हुआ गोला छल्ला; १२५ मुहा० **पताँड़ बैठाइब**–ईख की पहली गोड़ाई जिसमें उखड़े हुए पताँड़ फिर से बैठाये जाते हैं; १२२ **पताँड़ मारब**–पताँड़ बाल कर टुकड़े-टुकड़े करना।

पतेला–९१ [संज्ञा] मटर की पत्ती का भूसा; ९८ अरहर की सूखी पत्ती।

पत्तर–१० [संज्ञा] फरसे में पासा के सामने का चद्दर का चौड़ा भाग; ३५१,३६१ किसी धातु को पीट कर बनाया हुआ पतला रूप (सं० पत्र)।

पतुकी–२३३ [संज्ञा] हाँड़ी (सं० पात्री–)।

पथरब–६४ [क्रि०] औजारों को पत्थर पर रगड़ कर तेज करना।

पथरिया कोल्हू–२६९,३२३ [संज्ञा] ईख पेरने का पुराना पत्थर का कोल्हू (प्रस्तर–)।

पदरौंकब–१५७,१८१ [क्रि०] पशुओं का भागना।

पदरौंकनही–१५७ [वि०] भागने वाली। यथा, पदरौंकनही गाय।

पनवाँ–३४१ [संज्ञा] हुबेल आदि में लगी हुई बीच वाली चौकी जो पान के आकार की होती है (सं० पर्ण–)।

पनवाड़ी–२३३ [संज्ञा] पान की खेती का स्थान तु० भीटा।

पनहाँ–२२३ [संज्ञा] ओरौती के नीचे के स्थान को पनहाँ कहते हैं।

पनिआब–१९७ [क्रि०] कुएँ में खोदाई के समय पानी दिखाई पड़ना।

पनिक–३१० [संज्ञा] जोलाहों का एक औजार जिससे वय में सूत पहनाते हैं।

पनिगत–१६६ [वि०] पानी वाला अर्थात् मजबूत। यथा, पनिगत बैल।

पनियउवा–२७७ [वि०] पानी मिला हुआ। यथा, पनियउवा रस।

पनिवट–४२ [संज्ञा] जिस रास्ते से सिंचाई होती है (सं० पानीय वंड, तु० म० पाणि एडा ?)।

पपरी–२५ [संज्ञा] माटी की पतली परत (सं० पर्पटिका ?)।

पयँड़–३८१ [संज्ञा] रस्से का दस हाथ लम्बा टुकड़ा दे० 'पैंड़'।

परई–२३३,२७४,३१५ [संज्ञा] दिये से बड़ा मिट्टी का बरतन (हिं० पार)।

परकार–२४२ [संज्ञा] वृत्त बनाने का एक औजार (फ़ा० परकार)।

परगहनी–३४६ [संज्ञा] नली के आकार का सोनार का एक औजार जिसमें चाँदी-सोना ढालते हैं।

परचा–१४२ [संज्ञा] खेत में बरहों के बीच वाली जमीन (फ़ा० पार्चह–)।

परछथी–३७६ [संज्ञा] छान की मरम्मत के लिए उसके ऊपर एक छोटी छान बनाकर रख देते हैं इसे ही परछथी कहते हैं (परि + छत)।

परछनी–२९८ [संज्ञा] खाते में सेवार रखने के कारण जितनी चीनी में सफेदी आ जाती है तु० 'पछनी'।

परजा–२६७ [संज्ञा] नाई-धोबी आदि जो सेवा कार्य्य करने वाली जातियाँ हैं परजा कहलाती हैं (सं० प्रजा)।

परत–२४१ [संज्ञा] तह (सं० पत्र?)।

परतिया–७ [वि०] वह खेत जो परती जमीन तोड़ कर बनाया गया हो। यथा, परतिया खेत; तु० 'परुइयाँ'।

परभू–२०५ [संज्ञा] मकान की छाजन में बड़ेर से ओरौती तक लगने वाली कड़ियों को कोरो कहते हैं, और कोरों के छोटे पड़ने पर उनमें जो जोड़ लगाते हैं उन्हें परभू कहते हैं।

परमल–४०६ [संज्ञा] ज्वार या गेहूँ का एक प्रकार का भुना हुआ दाना (सं० परिमल=सुगंध) तु० म० परमल= दुर्गंध।

परानी–२२६ [संज्ञा] परिवार का कोई व्यक्ति (सं० प्राणिन्); दोनों परानी–दम्पति के लिए प्रयुक्त होता है।

परिहथ परिहथी–१४, १६ [संज्ञा] हल का वह अंग जिसका ऊपरी भाग हाथ में रहता और निचला भाग हल से सम्बन्धित होता है।

परी–३२८ [संज्ञा] तेल या घी देने के लिए लोहे का एक छोटा पात्र जिसमें लगभग आधी छटांक सामान आता है।

परुआ–१६६ [संज्ञा] वह बैल जो चलाने पर बैठ-बैठ जाये। यथा, परुआ बैल।

परुइयाँ–७ [संज्ञा] वह खेत जो परती जमीन तोड़ कर बनाया गया हो। यथा, परुइयाँ खेत, तु० परतिया।

परेउ लगब–२६९ [क्रि०] पथरिया कोल्हू चलने के समय आधी रात को ईख पेरने वालों की पारी बदलना।

परेता–३१७ [संज्ञा] ऊन कात कर उसे लपेटने का एक यंत्र।

परेथी, परेहथी–१६ [संज्ञा] दे० 'परिहथ'।

पलंग–२४९ [संज्ञा] अच्छी चारपाई जिसके पावे खरादे हों (सं० पल्यंक)।

पलई–५,१४२ [संज्ञा] दूर। यथा, पलई का खेत (तु० हिं० पल्ले – दूर) ११५ सनई के पौधे का शीर्ष भाग (सं० पल्लव)।

पलटा–२५ [संज्ञा] एक बार में हेंगा से जितनी जमीन हेंगाई जाती है, (सं० परि+अट् प्रा० पल्लटइ) दे० पहँटा।

पलथाखाब–२५९ [क्रि०] पलट जाना (पर्यस्तिका, प्रा० पल्लत्थिआ)।

पलथा खिलाइब, पलथियाइब–२४५ [क्रि०] पलट देना।

पलरा–३३४,३४४ [संज्ञा] रहठा या बाँस का सामान ढोने का एक पात्र (सं० पटल)।

पलरी–३३४ [संज्ञा] पलरा का अल्पा०।

पलहा–२५४ [संज्ञा] तीन बैलिया गाड़ी में बौंड़ के पीछे के दोनों बैलों को अलग-अलग पलहा कहा जाता है। दे० 'पल्ला'।

पलाँदी–२६३ [संज्ञा] पान के आकार का एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ पैर के पंजे के ऊपर पहनती हैं (पलानी, सं० पर्याण, प्रा० पल्लाण)।

पलिहर–७ [संज्ञा] वह खेत जो बरसात में जोत कर छोड़ दिया जाता है।

पलौंठा–३३३[संज्ञा] बाँस का पुलई वाला भाग तु० पलौंठी।

पलौंठी–७३, ९८ [संज्ञा] रहटा का पलई वाला भाग।

पल्लहवा–२५४ [वि०] दे० 'पलहा'।

पल्ला–२०५ [संज्ञा] छाजन के दो भागों में से एक; २१३,२५२ दरवाजे के दो पल्लों में से एक; २४५ लकड़ी को सिल्ली चीरकर पल्ले निकालना; २५४ दो बैलिया गाड़ी के जुए के दोनों भागों में से एक (सं० पटल); २६२ मुहा० **पल्ला फेंकब**–दो बैलिया गाड़ी के किसी बैल का जुआ फेंक देना।

पवसार–३१२ [संज्ञा] करघे की वे लकड़ियाँ जो बय नीचे ऊपर करने के लिए पैर से दबाई जाती हैं। दे० 'पावड़ी' (सं० पाद–)।

पवाँरी–६१ [संज्ञा] कुदार का पिछला गोला भाग पासा कहलाता है एवं पासा से आगे धार तक पवाँरी कहलाती है (सं० प्रवाल–)।

पसाइब–४९ [क्रि०] किसी वस्तु के साथ मिले द्रव पदार्थ को थिराकर अलग करना। यथा, माड़ पसाना (सं० प्रस्रावण)।

पसेरी–५६ [संज्ञा] पांच सेर।

पसेव–१९७ [संज्ञा] पसीज निकला हुआ जल (सं० प्रस्वेद)।

पहँटब–६१, ३७१ [क्रि०] पहँटना पाटा से बराबर करना (सं० प्रहत–)।

पहँटा–२५, ११४ [संज्ञा] हेंगा द्वारा बराबर किया हुआ खेत; २५ मुहा० **पहँटा छूटब**–हेंगाते समय जमीन छूटना।

पहँटाह–१२४ [वि०] किसी पहँटे में जब उपज ठीक से नहीं होती तब ऐसे खेत को पहँटाह कहते हैं।

पह–१३७ [संज्ञा] पान के पौधों की श्रेणियों के बीच में आने-जाने का मार्ग (सं० पथ) दे० 'पाहा'।

पहर–३४ [संज्ञा] एक दिन का चतुर्थांश (सं० प्रहर)।

पहरुआ–४०६ [संज्ञा] मूसल (सं० प्रहारक)।

पहिया–१२३ [संज्ञा] वह हल जिसके द्वारा मूहिँ को ईख बोने के लिये चौड़ी करते हैं। २५६ गाड़ी का चक्र; (सं० पथ्य प्रा० पह्य वा सं० पथिक अ० मा० पहिय)।

पहिलौंठी–१६२ [वि०] पहली बार का (प्रथमोत्थ–) तु० म० पहिलटकरीण।

पही–११४ [संज्ञा] जड़हन धान का गाँज।

पहुँची–२९८ [संज्ञा] पहुँचा में पहना जाने वाला एक आभूषण (सं० प्रकोष्ठ)।

पाँचा–७० [संज्ञा] खेती का एक औजार जिस में पाँच नोकीले भाग होते हैं, इसके द्वारा भूसा-घास आदि खींचकर समेटा जाता है (सं० पंच-)।

पाँजर–३४३ [संज्ञा] दौरी के मुँह तथा

मध्य का उठा हुआ भाग (सं० पंजर)।

पाँड़ा–१७७ [संज्ञा] भैंस का नर बच्चा (प्रा० पड्डुय म० पाडा=बाछा)।

पाँड़ी–१७७ [संज्ञा] भैंस का मादा बच्चा (प्रा० पड्डिया=छोटी भैंस, छोटी गाय)।

पाँव आँतर–१२४ [संज्ञा] पैर के तलवे के बराबर अन्तर (सं० पाद+अंतर)।

पाँस–७ [संज्ञा] राख-गोबर आदि खाद जो खेत में डाले जाते हैं, यह शब्द खाद के साथ प्रयुक्त होता है। यथा, खाद-पाँस (सं० पांशु)।

पाई–१२१ [संज्ञा] सौ हाथ के बराबर एक पैमाना; २०९ [संज्ञा] कपड़ा बुनने के पहले जुलाहे ताने के सूत को माँजने के लिये फैलाते है जिसे पाई कहते हैं।

पाख–१४१ [संज्ञा] पखवारा; २०८, २१४ मकान का वह भाग जिस पर बड़ेर रखी जाती है (सं० पक्ष)।

पाखड़ी–२६० [संज्ञा] गाड़ी में सामान गिरने से रोकने के लिए टाट का परदा।

पाग–२७२–[संज्ञा] कड़ाह में बोझा हुआ ईख का रस (सं० पाक)

पाचर–४३, ३२४ [संज्ञा] लकड़ी का टुकड़ा जो कील रूप में ठोंक दिया जाता है, कोल्हू में जोड़ के रूप में लगाई जाने वाली लकड़ी (फ़ा०-पार्चह=कपड़े का टुकड़ा) तु० म० पाचरं।

पाटन–२२४ [संज्ञा] दो मंजिले मकाम में पहले मंजिल का पटाव।

पाटा–१४ [संज्ञा] हरिस और हर के जोड़ को कसने वाली लकड़ी (पट्ट); ३४२ बाँस की चौड़ी पत्ती जो बुनने के काम में आती है; ३९३ चूल्हा बनाने के लिए मिट्टी की अर्द्धवृत्ताकार डेढ़ हाथ लंबी एक बित्ता चौड़ी पट्टी; २९४ मुहा० **पाटा डालब या मारब**–शक्कर को फैला कर चमक ले आने के लिए पैर से रौंदना; २९८ **पाटा कसब**-कच्ची चीनी की पछनी को उसमें सफेदी तथा चमक ले आने के लिए उसे धूप में डालकर पैरों से रगड़ना।

पाटी–२४९, ३८३ [संज्ञा] चारपाई की दोनों बगल की लकड़ियाँ (सं० पाट); २४९ मुहा० **पाटी सालब**–पावे में पाटी बैठाना; २५३ [संज्ञा] टटरे के बाजू वाले बाँस।

पाठा–१७८ [संज्ञा] एक रोग जिस में शरीर के किसी स्थान से रक्त बहता है।

पातर–७ [वि०] कमजोर। यथा, पातर खेत (सं० पत्रल प्रा० पत्तल)।

पाती–१४ [संज्ञा] हरिस और हर के पास एक पतली लकड़ी जो उसे कसने के काम में आती है; २०७, ३२५ ईख आदि की पत्ती (सं० पत्री); ३४२ फल्ठे की चौड़ी पत्ती जो पंखा बुनने के काम आती है।

पाथी–२५० [संज्ञा] बढ़ई को साल भर में मिलने वाला अनाज; ३४३ दौरा (पाथा, सं० प्रस्थ)।

पान–३३४ [संज्ञा] एक लता का पत्ता (सं० पर्ण); ११९ मुहा० **पान उतारब**–

पौधे से पान तोड़ना ; १३९ **पान मोरब**–पान को सरहरी पर चढ़ाना ।

पानी–१४३ [संज्ञा] जल (सं० पानीय) १४३ मुहा० **पानी कटाइब**–बरहा या नाली में पानी काटना; ११ **पानी खाब**–मिट्टी का पानी प्राप्त करना; १४३ **पानी चटाइब**–मामूली सिंचाई करना; २४२,२६७ **पानी चढ़ाइब**–लोहे को गरम कर के ठण्डे पानी में बुझाना; ४१ **पानी चलाइब**–ढेंकुर या चरखी चलाना; **पानी जोरब**–सिंचाई आरंभ करना, २७२ **पानी देब**–औजार गरम करके उसे पानी में बुझाना; १४३ **पानी दौड़ाइब**–सिंचाई करना; ४१ **पानी नाधब**–ढेंकुर या चरखी आरंभ करना; १९३ **पानी पूँछब**–किसी जानकार से यह पता चलाना कि अमुक स्थान पर कुआँ खोदने से पानी निकलेगा, दे० 'जानकार' । ४४,१४३ **पानी बराइब**–एक बरहा से दूसरे बरहा या नारी में पानी ले जाना; ४७ **पानी बुदकारब**–हाथा द्वारा बहुत मामूली सिंचाई करना; १४३ **पानी रँगाइब**–साधारण सिंचाई करना; **पानी लगब**–खेत में पानी एकट्ठा होना ।

पायजेंब–२६१ [संज्ञा] दे० 'पैजेब' ।

पायल–२६१ [संज्ञा] पैर का एक आभूषण विशेष (प्रा० पायजाल ?) ।

पार बहब–१५८ मुहा० गाय के ऊपर साँड़ का चढ़ना (सं० परम् = दूसरी ओर का किनारा + वह् = गर्भ धारण करना; तु०, प्रा० पार = करने में समर्थ होना) ।

पारा–२७२ [संज्ञा] दे० 'पारही'; २७५ बारी ।

पारही–२३३ [संज्ञा] खपड़े का छीना जिसमें कुम्हार राखी रखता है; २६३ रीढ़ के दोनों ओर की नस; २७२ कड़ाह के पास बैठने के लिये ऊँचा स्थान (सं० पार्श्व) ।

पाल–१९५ [संज्ञा] खोखला स्थान (सं० पोल); २६० गाड़ी के ऊपर वर्षा से बचत के लिए लगाया गया परदा; १५८ मुहा० **पाल खाब**–जोड़ा खाना, बरदाना (सं० प्राल पा० पालि = अंत; तु० म० पाल = टोंक) तु० पाल बहब । १९५ **पाल मारब**–कुएँ की खाँखर में बलुही मिट्टी के कारण पोल रह जाना ।

पावड़ी–३१२ [संज्ञा] बुनाई से सम्बन्धित वे लकड़ियाँ जो ताना ऊपर नीचे करने के लिए पैर से दबाई जाती हैं ।

पावदान–२६६ [संज्ञा] लोहे का एक औजार जिस पर मोची जूता रखकर कीलें आदि ठोंकता है (फ़ा० पायदान); ३१२ [संज्ञा] दे० 'पावड़ी' ।

पावसार–३१२ [संज्ञा] दे० 'पवसार' ।

पावा–३५,२०१ [संज्ञा] कुएँ पर गड़ारी आदि रखने के लिये बने हुए दोनों ओर के पांवे (सं० पाद–) ।

पास–१९७ [संज्ञा] कुएँ की नीचे की बलुही मिट्टी (सं० पांशु); मुहा० **पास आइब**–कुएँ की खोदाई में अगल-बगल की मिट्टी का पानी के साथ निकलना । १९७ मुहा० **पास फेंकब** या **ढकेलब**–वही ।

पासा–१०,६१ [संज्ञा] फरसा तथा कुदाल का पिछला गोला भाग जिसमें बेंट डाला जाता है (सं० प्रास–)।

पाहा–४५ [संज्ञा] चना के खेत की बड़ी-बड़ी कियारी; १२७ पान की खेती में दो आँतरों के बीच का स्थान; दे० 'पह'। ४५ मुहा० **पाहा रेंगाइब**–पाहा में पानी भरना।

पाही–५,५२ [संज्ञा] दूर में रहने का अस्थायी स्थान; दूर के खेत को **पाही का खेत** कहते हैं (सं० पाथेयी–); १४२ बरहों के बीच का स्थान (तु० पाण्ढी = दो खेतों के बीच का मार्ग) दे० 'परचा'।

पिछवा–२७२ [संज्ञा] गुलउर के पीछे धुआँ निकलने का स्थान (सं० पश्च–)।

पिटना–२३३ [संज्ञा] कुम्हार का लकड़ी का बना पीटने का एक औजार।

पिड़िया–२८५ [संज्ञा] छोटी भेली (सं० पिंडक)।

पिढ़ई–९८,३२९ [संज्ञा] लकड़ी का छोटा पीढ़ा (सं० पीठिका)।

पिंड–२१० [संज्ञा] मकान की लम्बाई-चौड़ाई (सं० पिंड = मकान का एक भाग) मुहा० **पिंड उतारब**–ज्योतिषी से पूछ कर मकान की लंबाई-चौड़ाई निश्चित करना, जिसके नाम से पिंड उतारा जाता है वही नींव देता है।

पियरकी–१००,११९,१२२ [वि०] पीली (सं० पीत–)।

पियाइब–२९५ [क्रि०] चीनी के गद्द को एक हौदे से दूसरे हौदे में डालना। २१७ मुहा० **खपड़ा पियाइब**–छाजन में एक के ऊपर एक खपड़ा बैठाकर रखना; **खपड़ा पिया-पिया कर रक्खब**–वही।

पियरवा–१९५ [वि०] पीली। यथा, पियरवा माटी।

पियाज–१४५ [संज्ञा] प्याज (फ़ा० पियाज़) १४६ कहा० **बाइस पानी पियाज नाहीं तो भइल छियाज**।

पिरोउब–४०७ [क्रि०] सूई में डोरा डालना (प्रा० पोइअ)।

पिसनहरि–४०३ [संज्ञा] पिसान पीसने वाली (सं० पिष्–)।

पिसाई–४०३ [संज्ञा] पीसने का कार्य; पीसने की मजदूरी।

पिसान–४०३ [संज्ञा] पीसा हुआ अन्न—आटा।

पिसौनी–४०३ [संज्ञा] पीसने के बदले में दी गई मजदूरी।

पिहान–५०,३९५ [संज्ञा] ढक्कन (सं० पिधान)।

पिहिका–१२९ [संज्ञा] ईख का एक रोग (सं० प्लीहा–?)।

पींड़–२३३ [संज्ञा] कुम्हार का मुठिया के आकार का एक औजार जिससे वह बरतन पीटता है।

पीकर–३१२ [संज्ञा] करगह में वह चीज जिसके द्वारा ढरकी को धक्का दिया जाता है।

पीठी सानब–२९२ [क्रि०] उलदा शक्कर को गरम पानी से सानना। **पीठी सानी शक्कर**–गरम पानी से सानी हुई उलदा शक्कर (सं० पिष्टक = पीठी)। दे० 'उलदा'।

पींड़ा–२१२ [संज्ञा] चाक पर का मिट्टी का पिंड (सं० पिंड)।

पुआरा, पोरा वा **पोवरा**–११०,११४, १७९,३९१ [संज्ञा] धान के पौधे का डंठल (सं० पलाल)।

पुट्ठा–३२५ [संज्ञा] चूतड़ का ऊपरी उठा हुआ भाग (सं० पुष्ट)।

पुट्ठी–१९८ [संज्ञा] कुँए में पड़ने वाला नीचक जो पहिये कि भाँति होता है; २५६ बैल गाड़ी के पहिये के घेरे का एक भाग–कई पुट्ठियों को जोड़ कर पहिया बनती है।

पुनुई–१३३ [संज्ञा] पौधे का ऊपरी सिरा (हिं० फुनगी)।

पुर–२६ [संज्ञा] सिंचाई का एक साधन (सं० पूर – चमड़े का बहुत बड़ा डोल)।

पुरइन–१५९ [संज्ञा] (सं० पुटकिनी प्रा० पुडइणी); मुहा० **पुरइन आइब** – बच्चा होते समय गर्भाशय का बाहर निकलना। दे० 'फूल आइब'।

पुरबहिया–९९ [वि०] पूरबी यथा, पुरबहिया (सं० पूर्वी) तु० पुरवा।

पुरबिहा १६३ [वि०] पूर्व का।

पुरवट–२६ [संज्ञा] सिंचाई का एक साधन।

पुरवा–१०१,१४६,२३० [संज्ञा] पूर्व दिशा से बहने वाली वायु (सं० पूर्व-) तु० पुरबहिया।

पुरसा–२०० [संज्ञा] दे० 'पोरसा'।

पुरानी–११७ [वि०] अधिक दिनों से प्रचलित (सं० पुराना सं० पुराण)।

पुरेसा, पुरेसी वा **पोरसी**–११०, २१२, ३९३ [संज्ञा] पुआल का छोटा-छोटा टुकड़ा।

पुश्तवान–२५२ [संज्ञा] वह आड़ी लकड़ी जो केवाड़ के पीछे पल्ले की मजबूती के लिये लगाई जाती है (फा० पुश्त+वान)।

पुसौटब–७७ [क्रि०] जौ के पौधे का गर्भ धारण योग्य होना।

पुसौढल–७७ [वि०] जौ का पुष्ट पौधा जो गर्भ धारण के योग्य हो।

पूई–१३३ [संज्ञा] ज्वार की बाल में बाल की तरह जो रेशे होते हैं।

पूँजा–१०८, ११२ [संज्ञा] पौधे का समूह (सं० पुंज)।

पूता–३९४ [संज्ञा] चूल्हि के दो अइलों को जोड़ने के लिये मिट्टी का जो जोड़ होता है। दे० 'अइला'।

पूनी–३१६ [संज्ञा] धुनी हुई रूई की बत्ती जो सूत कातने के लिये तैयार की जाती है (सं० पिंजिका)।

पूरन–३४३ [संज्ञा] दौरी के भीतर की चटाई सदृश वह बुनावट जो दौरी तैयार होने पर अंत में उसमें बैठाई जाती है; **पूरन छानब**–पूरन की बिनावट आरंभ करना।

पूरी–११६ [संज्ञा] सनई से सन निकालने के लिए जो बोझ बनाया जाता है।

पूहा–१८४ [संज्ञा] पशुओं के बुलाने की सांकेतिक बोली।

पेंदा–२९, ३९५ [संज्ञा] किसी पात्र के नीचे का भाग।

पेंदी–५२, २३४ [संज्ञा] वही।

पेवँदा—४०७ [संज्ञा] कपड़े के किसी छेद को बंद करने के लिए लगाया गया जोड़ (फा० पैवंद)।

पेउस—१६० [संज्ञा] ब्याई हुई गाय या भैंस का दूध सात दिन तक पेउस कहलाता है (सं० पेयूष)।

पेंच—२७० [संज्ञा] कल, पुरजा (फा० पेच)।

पेटकुइयाँ—२०१ [संज्ञा] कुएँ के भीतर एक छोटा कुआँ।

पेटार—३७४ [संज्ञा] बोरे का थैला जिसमें गल्ला भर कर बैलों पर लादते हैं (सं० पेटक)।

पेटारा, पेटारी—४१० [संज्ञा] बाँस या मूँज का बना हुआ ढक्कनदार एक पात्र (सं० पेटक)।

पेटी—३७३ [संज्ञा] चमड़े की पेटी; ३८२ बीड़ वाले बैल के पेट के चारों ओर बँधी हुई रस्सी (सं० पेटिका)।

पेड़हरा—३३३ [संज्ञा] पेड़ के तने का भाग।

पेड़ा—८ [संज्ञा] ईख का जड़ वाला भाग जो ईख काट लेने पर दूसरी फसल के लिये खेत में छोड़ दिया जाता है (सं० पिंड); मुहा० **पेड़ा मारब**—पेड़ा को खन कर निकालना। **पेड़ा राखब**—पेड़ा को दूसरी फसल के लिए छोड़ देना।

पेड़ी—८,७४,१२० [संज्ञा] ईख की जड़ वाला भाग; वह खेत जिसमें पेड़ी रखी गई हो। १३८ पान का पुराना पौधा जो लगाने के लिए सुरक्षित रखा जाता है। १२० मुहा० **पेड़ी राखब**—दे० 'पेड़ा राखब'। ८ कहा० **पेड़ी निकारे रोगी होइ। बेटी निकारे कोढ़ी होइ॥** तथा **पेड़ी और बेटी न निकारै क**=पेड़ी और बेटी न बेंचना चाहिए।

पेनी—३४३,४०९ [संज्ञा] पेंदी; मुहा० **पेनी छानब**—पेनी आरम्भ करना।

पेन्हाव—१६० [क्रि०] गाय के स्तन में बच्चे को दूध पिलाने के लिए दूध उतरना (प्रस्नावय्-)।

पेवन—४०७ [संज्ञा] दे० 'पेवँदा'।

पेरना—११८ [क्रि०] कोल्हू द्वारा ईख कुचलकर रस निकालना।

पेराई—३३८ [संज्ञा] पेरने का कार्य (सं० पीड़न)।

पेरुआ रस—२७७ [संज्ञा] ईख का वह रस जो पीने के लिए पेरा जाता है।

पैंच—३४२ [संज्ञा] बाँस के पतले-पतले तेज़ टुकड़े।

पोतारी—३११ [संज्ञा] वह कपड़ा जिससे पोता जाता है।

पोपटा—८९ [संज्ञा] मटर की छीमी में जब दाने पड़ने लगते हैं तब उसे पोपटा कहते हैं (सं० पर्पट) तु० 'पट्टा'।

पोपरी—२५ [संज्ञा] खेत में थोड़ी वर्षा से पपड़ी पड़ जाना (सं० पर्पट)।

पोय—१२५,१२६,१२८ [संज्ञा] ईख के पौधे का आरंभिक नरम कल्ला (सं० पोतक)।

पोर—११८ [संज्ञा] ईख में दो गाँठों के बीच का भाग, तु० **अँकउरा**; ३४२ बाँस का गाँठ वाला भाग (सं० पर्व)।

पोरसा—२०० [संज्ञा] पुरसा—पुरुष

अपना हाथ उठाकर कुएँ, तालाब या पानी की गहराई नापता है, यह माप लगभग पाँच हाथ होता है (सं० पुरुष पा० पुरिसो, तु० म० परुस)। मुहा० **पोरसा बाँधब**–कुएँ में पुरसा की ऊँचाई पर ईंटें गाड़ देना ताकि कुएँ में उतरने में सुविधा हो।

पोरसी–११०,३९३ [संज्ञा] दे० 'पुरेसा'।

पोरा–११४ [संज्ञा] दे० 'पुअरा'।

पोला–३०५ [संज्ञा] सूत का लच्छा जो परेती पर से उतारा जाता है (सं० पूलक)।

पोवरा–३९१ [संज्ञा] दे० 'पुअरा'।

पोस्त–१५० [संज्ञा] एक पौधा जिससे अफीम निकलती है (फा० पोस्त)।

पैंड़–१२२ [संज्ञा] ईख के बोने के टुकड़े (पैंड़ = खंड—'देशी नाममाला') दे० 'पताँड़'।

पैंतरब–१२७ [क्रि०] पैर से खेत की मिट्टी बराबर करना (सं० पाद–)।

पैचल–१८०,१८३ [संज्ञा] बदमाश और भागने वाली गाय (पाद+चंचल)।

पैजनी–२९८ [संज्ञा] गाड़ी के दोनों बगल लगी हुई लकड़ियाँ जिनमें पहिए का धुरा रहता है।

पैजेब–३६१ [संज्ञा] स्त्रियों के पैर का एक आभूषण (फा० पाजेब)।

पैताना–३८३ [संज्ञा] पलँग का पैर की ओर का भाग (सं० पादान्त–)।

पैना–२१ [संज्ञा] हलवाहों की बैल हाँकने की लकड़ी (सं० प्राजनं)।

पैरा–५७,७४,९७ [संज्ञा] छींटकर बोने की क्रिया (सं० प्र+ईर, प्रा० पयर; तु० म० पर = बोना)।

पोंकब–१७८ [क्रि०] बहुत पतली टट्टी होना—पशुओं का एक रोग (सं० पू (पूय); तु० म० पूँ = मल का ढेर)।

पोआ–१६० [संज्ञा] गाय का नव जात बच्चा (सं० पोत–)।

पोखब–३२७ [क्रि०] पोषण करना (सं० पुश्)।

पोखरा–२६ [संज्ञा] तालाब (सं० पुष्कर)।

पोछउवा, पोछवा–२७२ [संज्ञा] गुल-उर के पीछे धुआँ निकलने का रास्ता।

पोटियाब–७५ [क्रि०] जौ के पौधे में पत्तियों का विकसित होना।

पोटी–७५ [संज्ञा] जौ के पौधे की आरंभिक अवस्था में निकली हुई नई-नई पत्तियाँ।

पोढ़–९८,२४३,३८७ [वि०] पुष्ट (सं० प्रौढ़)।

पोढ़गर, पोरगर–२४३ [वि०] वही।

पोढ़िया–३६२ [संज्ञा] पैर की अँगुली का एक गहना।

पोतनी माटी–३ [संज्ञा] एक प्रकार की चिकनी पोतने योग्य मिट्टी।

पोस्तैरी–१५३ [संज्ञा] पोस्त के सूखे फलों के टुकड़े।

पोहता–१५० [संज्ञा] दे० 'पोस्त'।

पौंढ़ा–१२८ [संज्ञा] एक प्रकार का मोटा गन्ना (सं० पौंड्रक)।

पौआ–३२८ [संज्ञा] सेर का चतुर्थांश (सं० पादक)।

पौढ़ा–२६ [संज्ञा] बेड़ी चलाने के लिए खड़े होने का स्थान।

पौदर–२७० [संज्ञा] वह रास्ता जिस पर पुरवट का बैल चलता है।

पौधब–३३३ [क्रि०] पौधे में अंकुर निकलना।

पौना–२७४,२८१ [संज्ञा] लोहे की एक झन्नी-विशेष।

पौला–३८२ [संज्ञा] एक प्रकार की खँड़ाऊ जिसमें खूँटी न लगाकर रस्सी लगाई जाती है (सं० पादुका)।

प्यूनी–३९७, ३९९ दे० 'पूनी'।

फ

फइँच–३४२ [संज्ञा] दे० 'पैंच'।

फटउद–१६१ [संज्ञा] पेउस आग पर रख देने पर फट जाता है, उस दशा में उसे फटउद कहते हैं (फटा + दूध)।

फटका–३९८ [संज्ञा] धुनकी (अनु०)।

फटनहिया–१९५ [संज्ञा] फट-फट की ध्वनि से तेजी से गिरने वाली कुएँ की मिट्टी (सं० स्फट् –)।

फड़–२५७ [संज्ञा] बैलगाड़ी का वह भाग जिस पर माल लदता है (सं० पट ? फा० फ़र्द वा फा० फड़ = सार्वजनिक व्यापार स्थान, तु० अ० मा० फलग (फलक)।

फतिंगा–४९ [संज्ञा] ईख की पत्ती में लगने वाला एक कीड़ा (सं० पतंग)।

फतुही–२२२ [संज्ञा] एक प्रकार का पहनने का वस्त्र (अर० फतूही)।

फनगी–१२९ [संज्ञा] दे० 'फतिङ्गा'।

फरका–२०५ [संज्ञा] छाजन के दोनों भागों में से एक भाग (सं० फलक)।

फरगुद्दी–४९ [संज्ञा] एक प्रकार की छोटी चिड़िया (फल + गुद् –)।

फरसा–१० [संज्ञा] मिट्टी खनने का एक औजार (सं० परशु)।

फरहर–१०५,१४२ [संज्ञा] नमी कम हो जाने पर मिट्टी का कुछ सूखा हुआ रूप। यथा, फरहर माटी (तु० सं० स्फुट)।

फारियाइब–३९७ [क्रि०] रूई के कचरे को साफ करना।

फरुहा–१०[संज्ञा] फरसा (सं० परशुक-)।

फरुही–४३ [संज्ञा] खेत में नाली बनाने का एक उपकरण।

फलठा, फल्ठा–३३, १४०,१९२,२१६, ३४२ [संज्ञा] बाँस का चीरा हुआ रूप।

फाँक–१३० [संज्ञा] किसी चूर्ण का उतना भाग जितना एक बार में मुँह में डाल कर खाया जा सके (अनु० अथवा अर० फक्क = जबड़ा; तु० म० फका)।

फाँकब–१३१ [क्रि०] टुकड़े-टुकड़े काटना (फाँक –)।

फाट–२८७ [संज्ञा] राब रखने पर कुछ समय बाद उसका शीरा ऊपर आ जाता है, इसी शीरे को फाट कहते हैं (फट् –)।

फानब–२२ [क्रि०] आरम्भ करना। यथा, हराई फानब (सं० स्पन्द्)।

फाना–२८२ [संज्ञा] फंदा (सं० स्पन्द्)।

फार–१४,३२७ [संज्ञा] हल का लोहे का नोकीला भाग जिससे मिट्टी खुदती है (सं० फाल)।

बँगला पान–१२६ [संज्ञा] एक प्रकार का पान।

बंझा–९१,९९ [संज्ञा] न फलने वाले वृक्ष (सं० बंध्या)। १९१ घी पकाने पर कड़ाही में जली हुई करोनी, कहा जाता है कि इसके खाने पर स्त्री बंझा हो जाती है।

बंडा–२१४ [संज्ञा] अरुई की भाँति एक तरकारी।

बंदी–२५५ [संज्ञा] सर का एक आभूषण जो आगे की ओर माथे पर पहना जाता है।

बंधन–२४३ [संज्ञा] दौरी का मेंड़रा जिस बाँस से बाँधा जाता है; २७५ [संज्ञा] बंधन के काम आने वाली रस्सी (सं० बंधन)।

बँसकट–२४० [संज्ञा] बाँस का काम करने वाली एक जाति विशेष।

बँसफूल–२२६ [संज्ञा] दे० 'फुलबाँस'।

बँसफोर–२४० [संज्ञा] दे० 'बँसकट'।

बँसवाड़ी, बँसवारी–२२१ [संज्ञा] बाँस की कोठी।

बंसलोचन–२२२ [संज्ञा] किसी किसी बाँस के भीतरी भाग में प्राप्त होने वाले हल्के नीले रंग के छोटे-छोटे टुकड़े जो औषधि के प्रयोग में आते हैं।

बइर–१६४ [संज्ञा] एक फल (सं० बदर)।

बइरिया लाल–१६४ [संज्ञा] बइर की भाँति लाल।

बकेन, बकेना–१६२ [संज्ञा] वह गाय या भैंस जिसे बच्चा दिये हुए कई महीने हो गये हों (सं० वष्कयणी)।

बखरी–२२१ [संज्ञा] घर का भीतरी खुला हुआ भाग—आँगन।

बखिया–४०७ [संज्ञा] एक प्रकार की महीन सिलाई (फा० बख़िया)।

बगबगा शक्कर–२९४ [संज्ञा] बग बग चमकती हुई साफ शक्कर।

बगरी–१०३ [संज्ञा] एक प्रकार का भदईं धान जो छींट कर बोया जाता है (बगरना=छींटना, सं० विकिरण)।

बगल–३७३ [संज्ञा] बाहुमूल के नीचे की ओर का गड्ढा—काँख (फा० बगल); मुहा० **बगल बनाइब**–काँख के बाल बन ना।

बगला–२४६ [संज्ञा] किसी लकड़ी के चीरे जाने पर उसके दोनों भाग (फा० बगल)।

बगली–२०० [संज्ञा] बगल का भाग; मुहा० **बगली भरब**–कुएँ की जोड़ाई के समय कुएँ की दीवार और खाँखर के बीच की जगह भरना।

बगहर–१५७ [क्रि०] भागने वाली गाय (सं० बल–+)।

बगुली गाय–१५५ [संज्ञा] बकुला के सदृश श्वेत गाय।

बघमुहाँ–३५८ [वि०] बाघ के मुँह सदृश। यथा, बघमुहाँ हुंडी।

बछवा–१६७ [संज्ञा] गाय का नर बच्चा (सं० वत्स, प्रा० वच्छ)।

बजरा–१७९ [संज्ञा] दे० 'बाजड़ा'।

बजड़हा–९ [विले०] बजड़ा वाला। यथा, बजड़हा खेत।

बजड़हिया–११८ [वि०] वही।

बझब–१२५ [क्रि०] फँसना (बद्ध,

प्रा० बज्झ)।
बझाइब–२६८ 'बझब' का सं०।
बड़का–१३४ [वि०] बड़े आकार का।
बड़ेर–२०५ [संज्ञा] छाजन के दोनों पल्लों के मध्य में लगने वाली लकड़ी। (सं० बंड् = विभाजित करना)
बड़ेरा–४२ [संज्ञा] खेत में सिंचाई के लिये तिरछे-तिरछे मध्य में जो नाली बनती है, दे० 'बड़ेर'; २१९ मुहा० बड़ेरा बाँधब–बड़ेरा की छवाई करना।
बड़ेरी–२२३ [संज्ञा] बड़ेर के ऊपर की छाजन।
बड़ौंखा–११८ [संज्ञा] एक प्रकार की पुरानी ईख जो मोटी होती है।
बढ़ई–२४२ [संज्ञा] लकड़ी का काम करने वाला कारीगर (सं० वर्द्धकि प्रा० वड्ढइ)।
बतास–१७८ [संज्ञा] वात का रोग (सं० वात)।
बतासा–२६२ [संज्ञा] बतासा के आकार का पैर की अँगुलियों में पहने जाने वाला एक आभूषण।
बद-बद–२८४ [संज्ञा] शीरा पकते समय बद-बद की आवाज (अनु०, सं० वद्)।
बदमास–१६१ [वि०] शरारती (फ़ा० बद + अर० मआश = जीवन)।
बदरी–१९१ [संज्ञा] बादल (सं० वारिद)।
बद्धी–१६८,२५४ [संज्ञा] बधिया बैल (वध्रि); १६९ मुहा० बद्धी मानब–बद्धी का कार्य सफल हो जाना; २६५ चमड़े की पतली डोरी जो मृदंग-तबला आदि में मढ़ी जाती है (सं० वध्र)।
बधिया–१६८ [संज्ञा] जो बैल नपुंसक कर दिया गया हो, दे० 'बद्धी'।
बनिका–३०६,३०९ [संज्ञा] सूत के छोरे और कपड़े की पाई में लगाया गया सूत का बंधन।
बन्द–२४२ [संज्ञा] विलायती कपड़े की गाँठो में लगकर आई हुई पक्के लोहे की पत्ती (फ़ा० बन्द)।
बन्न, बन्नि–२४२ [संज्ञा] आरे की चद्दर को बन्न कहते हैं, दे० 'बंद'।
बन्हुई–२९७ [संज्ञा] शक्कर बनाने के लिए राब को लोथों में भर कर दबाते हैं, इस के फलस्वरूप जो शीरा चूता है उसे बन्हुई कहते हैं (सं० बन्ध्)।
बफियाब–२८० [क्रि०] कड़ाह के रस में वाफ बनना (सं० वाष्प प्रा० बप्फ)।
बय–३१०,३११,३१२ [संज्ञा] जुलाहों के करघे का एक अंग जिसमें सूत पहना कर बुनाई की जाती है (सं० वाय)।
बयसर–३१२ [संज्ञा] वह लकड़ी जिसमें बय पहनाई जाती है, दे० 'बय'।
बयार–१६८ [संज्ञा] हवा।
बयाला–२१३ [संज्ञा] दीवार में वह सूराख जिसके द्वारा बाहर की चीजें देखी जा सकें (सं० वात–)।
बरइठा–१३७ [संज्ञा] पान के लिए बरई जो भीटा तैयार करते हैं दे० 'भीटा'।
बरई–१८० [संज्ञा] पान की खेती करने वाली जाति (क० बर = पत्र ?)।
बरकल–१२७ [वि०] ऐसी मिट्टी जो न गीली हो और न सूखी हो। यथा, बरकल माटी।

बरद, बरदा—१६७ [संज्ञा] बैल (सं० बलीवर्द प्रा० बलद्द)।

बरदाब—१५८ [क्रि०] गाय का साँड से संयोग होना, तु० 'पार बहब' तथा 'पाल खाब'।

बरदौर—१७९,२५२ [संज्ञा] बैलों के बाँधने का स्थान।

बरध, बरधा—१६७ [संज्ञा] दे० 'बरद'।

बरब—२४३ [क्रि०] कच्ची लकड़ी का सूखने पर टेढ़ी हो जाना, उलझना; ३७१ बटना (वट्—वर्तयति)।

बरमा—२४२,२४९ [संज्ञा] लकड़ी में छेद करने के लिये एक औजार (तु० सं० भ्रम)।

बरमी—२४२,२४९ [संज्ञा] बरमा का अल्पा०।

बरवैया—४४ [संज्ञा] खेत में सिंचाई के समय एक नाली से दूसरी नाली में पानी जाने की व्यवस्था करने वाला आदमी (सं० वारय्—)।

बरहा—२३,३०,४२ [संज्ञा] सिंचाई के लिए बनाई गई नाली (सं० वारि—); २७ [संज्ञा] वह रस्सी जिसमें कूँड़ बाँधी जाती है। १५१ मुहा० **बरहा पनियाइब**—बरहा में पानी पहुँचाना।

बरही—२४,१२३,३८२ [संज्ञा] हेंगा को जुआठ से संबंधित करने वाली रस्सी; ४६ खेत में दो बरहों के बीच की जमीन; १६० बच्चा होनेके बाद बारहवाँ दिन।

बरियार—७ [वि०] मजबूत, जबर। यथा, बरिआर खेत (बलिन्—)।

बरिसायन दाँतब—१६७ [क्रि०] बछवे को प्रति वर्ष दाँत निकलना (सं० वर्ष—)।

बरी—३७८ [संज्ञा] बटी हुई रस्सी।

बरुआ—४१० [संज्ञा] मूँज के छिलके का बना हुआ बल्ला जिससे मौनी-भौंकी आदि बनाई जाती है, तु० 'बल्ला'।

बरुई—३७८ [वि०] बटी हुई रस्सी। यथा, बरुई रसरी (सं० वट—)।

बलहम करब—२१५ [क्रि०] मकान की छाजन में धरन-बड़ेर-पटुका-तांता आदि को यथा स्थान लगाकर छाजन का ढाँचा तैयार करना (सं० बहल = दृढ़, तु० अ० मा० बहलिय = दृढ़ता; तु० फा० बराहम करना)।

बलिहन—१०८ [संज्ञा] ऐसे धान जिनमें बालें बाहर निकल आती हैं।

बलुआह—१,४ [संज्ञा] बलुही मिट्टी।

बलुरी—८५ [संज्ञा] गेहूँ की बाल में जब दँवाई के बाद भी दाना लगा रह जाता है तब उस बाल को बलुरी कहते हैं।

बलुहा बलुही—४ [वि०] बालू युक्त।

बलुही दोमट—१ [संज्ञा] बालू युक्त दोमट जमीन।

बलोथर—१९७ [संज्ञा] बलुहा स्थान।

बल्ला—२७,२८,३४,३३४ [संज्ञा] ढेंकुर का बाँस या बल्ला; ३१ मुहा० **बल्ला तोरब**—ढेंकुर का बल्ला कूँड़ सहित ऊपर आने पर बल्ले को झुकाकर पानी गिराने को बल्ला तोरना कहते हैं। ४१० मूँज के छिलके को चीर कर मौनी-भौंकी बुनने के लिये जो बरुआ बनाते हैं तु० 'बरुआ'।

जगह बैठाते हैं उसके समूह को बान्ह कहते हैं।

बाबू मिश्री—११९ [संज्ञा] एक प्रकार की नई ईख।

बार—१३३ [संज्ञा] जोन्हरी की बाल में निकले हुए बाल की तरह रेशे (सं० बाल; तु० पूई); ६४ मुहा० **बार छूटब**—खुरपी या लोहे का कोई औज़ार पत्थर पर पथरने से उसमें धार का बिलकुल पतला भाग निकलने लगता है इसी को बार छूटना कहते हैं।

बारी—२६,३१,२३५,२३६,२४७ [संज्ञा] किनारा; ३६५ कान का एक आभूषण (सं० वलय); ४१० मौनी या मौंकी का प्रत्येक मंडलाकार फेरा।

बाल—१३१,१३३ [संज्ञा] पौधे में वह भाग जिसमें अनाज रहता है।

बालन—१७९ [संज्ञा] पशुओं के लिए गँड़ास से बाल कर तैयार किया हुआ चारा।

बालब—७८,१७९ [क्रि०] गँड़ास से चारा काटना।

बालटू—२७० [संज्ञा] एक चूड़ीदार बड़ा खीला (अँ० वोल्ट)।

बाली—३६५ [संज्ञा] कान में पहनने का एक आभूषण (सं० बालिका)।

बाह—२३ [संज्ञा] एक बार की जुताई (प्रा० वह बैल का कंधा?) दे० 'बह'।

बिचखड़—१२२ [संज्ञा] ईख के बीच का भाग।

बिचुकब—१६१ [क्रि०] पशुओं का दूध तोड़ना।

बिछिया—३६२ [संज्ञा] पैर की अँगुली का एक आभूषण (सं० वृश्चिकः)।

बिजायठ—३५७ [संज्ञा] बाजू का एक आभूषण, तु० बाजू-हिं० बजना।

बिजुली—३६५ [संज्ञा] कान का एक आभूषण (विद्युत्-)।

बिड़र-बिड़र—१३२ [संज्ञा] अलग-अलग, दूर-दूर।

बिड़िहा—२५४,३८२ [संज्ञा] तिन-बैलिया गाड़ी में सब से अगला बैल जिस पर बींड़ रहती है।

बितना—१९६ [संज्ञा] लकड़ी की गुल्ली जिसके द्वारा कुएँ की चँड़वाही में भौआ की रस्सी का सम्बन्ध नार से करते हैं (सं० वितस्ति=बित्ता)।

बिथरब—७९ [क्रि०] जौ की बाल पक जाने पर उसके दाने अलग-अलग छितरा जाते हैं उसी को बिथरना कहते हैं (विस्तीर्यते)।

बिथरी—२०८ [संज्ञा] कपड़े में ताने के पश्चात् की अवस्था।

बिदहब—२३,९७,१२०,१३४ [क्रि०] फसल जम आने पर खेत को हेंगाना; १०६ कुआरी धान के जम आने पर खेत को पुनः जोतना-हेंगाना।

बिदहनी—१०६ [संज्ञा] बिदहने का कार्य

बिनुली—२८ [संज्ञा] एक पिढ़ई जो ढेंकुर में जड़ी जाती है और जिसमें सूराख करके धुरी लगाते हैं।

बिम्मा—२३३ [संज्ञा] किसी बर्तन के मुँहकड़ा के पास गर्दन वाला भाग।

बियाना—१६२,१७७ [संज्ञा] पशुओं के जनने का कार्य (सं० विजन्)।

बियाब—१६२ (क्रि०) बच्चा जनना,

मुहा० **चढ़ि के बियाब**–अधिक दिन पर गर्भ रहना।

बियास–८,५६,१०४ [संज्ञा] जिस खेत में कुआरी धान बोया जाता है (विकास); ७६ जौ के पौधे का विस्तार; १०६, १०८ कुआरी धान के पौधे का विस्तार; १२८ ईख के पौधे का विस्तार; १०८ मुहा० **बियास आइब**=विकसित होना, विस्तार होना।

बिरिया–३६५ [संज्ञा] ढाल के आकार का कान में पहिनने का एक आभूषण।

बिलर अक्खा–१६५ [संज्ञा] बिलार की आँख सदृश आँख वाला बैल।

बिलारी–२५३ [संज्ञा] दरवाजे के पीछे बन्द करने के लिए एक लकड़ी।

बिसुक जाब–१६२ [क्रि०] दे० 'बिचुकब'।

बींड़–१९२ [संज्ञा] कुएँ की दीवाल को गिरने से बचाने के लिए मेउड़ी की टहनियों से बनाया गया एक वृत्त (वेणी ?) तु० 'कोठी'।

बींड़–२५४,३२५ [संज्ञा] बिंड़िहा बैल या कोल्हू के बैल की गरदन पर रक्खी जाने वाली गद्दी (सं० वीटक ?)

बींड़ि–३८२ [संज्ञा] बिंड़िहा बैल के कन्धे पर लगाई जाने वाली रस्सी।

बींड़ी–२५४ [संज्ञा] दे० 'बींड़'।

बीया–१२२ [संज्ञा] वह ईख जो काट-कर बोने के लिए रक्खी गई हो। ११२ मुहा० **बीया रोपब**–बेहन बैठाना।

बीसा–६६ [संज्ञा] बीस (सं० विंशति)।

बुकनी–३४७ [संज्ञा] चूर्ण (सं० बृषण 7 बुकन–)।

बुकुआ–२३३ [संज्ञा] अपटन (सं० वृषण)।

बुजकल–४२ [वि०] मुँह तक भरी हुई नाली (सं० च्युत्+कल; तु० म० बुचकल=डूबना)।

बुजबुजा–२९३ [संज्ञा] बुल्ला–लोथे पर की शीरे की बूँदें तु० 'बुज्जा', दे० 'गजाब'।

बुजेबुज भरी–४२ [वि०] मुँह तक भरी। यथा, बुजेबुज भरी नाली।

बुज्जा–२९३ [संज्ञा] दे० 'बुजबुजा'।

बुड़ब–४१ [क्रि०] डूबना (प्रा० बुड्ड)।

बुलाक–३६४ [संज्ञा] वह सुराहीदार मोती जो स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं (फ़ा० बुलाक)।

बुल्ला–२८४ [संज्ञा] बुलबुला (बुद्बुद)।

बूटा मारब–२९९ [क्रि०] पानी का छींटा मारना।

बेंगा–५७,१०५ [संज्ञा] बीज (सं० बीजांग)।

बेंट–१०,६१,६४,६५ [संज्ञा] औजारों में लगा हुआ काठ का दस्ता (सं० वृन्त)।

बेंड़ा–२५३ [संज्ञा] टटरा या दरवाजे को पीछे से बंद करने की लकड़ी।

बेंड़ी–३६,३३४,३४४ [संज्ञा] बाँस की वह टोकरी जिसमें चार रस्सियाँ बँधी रहती हैं और जिनके द्वारा सिंचाई का काम होता है (प्रा० बेडा, बेडी=नौका)।

बेंव–३२० [संज्ञा] गड़रियों के कम्बल बुनने का एक औजार जिससे बुनावट को ठोंक-ठोक कर गफ करते हैं (वय–)।

बेउन्ही–३८४ [संज्ञा] चारपाई बुनते

समय बाध ऊपर नीचे हो जाने से पड़ी हुई ऐंठन (प्रा० विउंज ?)।

बेकहल–३८० [संज्ञा] पलास की जड़ जिससे रस्सी बनाते हैं।

बेड़ा–११६ [संज्ञा] सनई की पूरियों का वह बोझ जिसे पानी में सड़ने के लिए छोड़ते हैं (सं० वेड़ः)।

बेड़िया–२३,२५ [वि०] बेंड़े-बेंड़ अर्थात् जो आँखों के समानान्तर बाईं ओर से दाहिनी या दाहिनी ओर से बाईं ओर हो। यथा, बेंड़िया जोताई।

बेड़े-बेड़े–२३,१४२ [वि०] वही।

बेढ़ईं–३५४ [संज्ञा] गलाए हुए सोने में पड़ी हुई परतें।

बेदी–३४५ [संज्ञा] वह स्थान जहाँ सोनार अपनी अँगीठी रखता है।

बेना–४०६ [संज्ञा] पंखा (व्यजन)।

बेनिया–२५३ [संज्ञा] दे० 'बेनी'।

बेनी–३४३ [संज्ञा] दौरे के भीतरी भाग में चटाई के सदृश जो चीज बुनकर बैठाई जाती है (वेणिका); २५३ दरवाजे के पल्ले के किनारे पर ऊपर से लगी हुई चौड़ी पटरी।

बेरा–११६ [संज्ञा] दे० 'बेड़ा'।

बेराइब–१६३,२८९ [क्रि०] छाँटना (वृ-)।

बेलनदार–२३ [वि०] बेलन सदृश घूमने वाली। यथा, बेलनदार चरखी।

बेलनी–२७० [संज्ञा] ईख पेरने के कोल्हू में एक छोटा बेलन (सं० बेलन); ३९९ [संज्ञा] धुनकी चलाने लिए एक हथियार जो बेलन के आकार का होता है, इसके दोनों किनारे उठे हुए रहते हैं।

बेलौन्हब–८५ [क्रि०] गेहूँ की बाल का पक कर बेल के रंग सदृश हो जाना।

बेसर–३६४ [संज्ञा] नाक का एक आभूषण।

बेह्न–८,५९,१४८ [संज्ञा] बीज डाल कर पौधों को इस योग्य तैयार करना कि वे उखाड़ कर खेत में लगाये जा सकें (सं० बीज + घन)। ५९ मुहा० **बेह्न डालब**–बेह्न के लिए खेत में बीज डालना; **बेह्न बैठाइब**–बेह्न को उखाड़कर अन्यत्र लगाना; ५६,११२ **बेह्न रोपब**–वही।

बेह्नउर–११२ [संज्ञा] दे० 'बेह्नौर'।

बेह्नौर–८,५९,११२ [संज्ञा] वह स्थान जहाँ जड़हन धान की बेह्न तैयार की जाती है।

बै–३२० [संज्ञा] कम्मल बुनने की बय दे० 'बय'।

बैठक–११,२७५ [संज्ञा] टाले का समय, बेकारी का समय।

बैठका–२०२ [संज्ञा] मकान से संबंधित बैठने-उठने के लिये विशेष स्थान (उप + विष्ट-)।

बैठब–६० [क्रि०] किसी चीज का दब जाना। यथा, मिट्टी बैठब; १५६ किसी उभड़ी चीज का पूर्ववत् सम हो जाना। यथा, पुरइन बैठब।

बैठाइब–२८,४३,४०४ [क्रि०] जड़ देना, स्थिर कर देना; ६७ बराबर से रखना; १८८ मुहा० **दूधबैठाइब**–किसी मिट्टी के पात्र में कंडी की आग

भ

भड़कदंता, भड़दंता–१६७ [संज्ञा] ऐसे बाछा जिन्हें ६ मास में ही दाँत निकल आते हैं (सं० भटदन्त–)।

भड़भूँज, भड़भूँजा–७८,३८८,४०६ [संज्ञा] भाड़ भूँजने वाला (सं० भ्राष्ट्र+भ्रस्ज्–)।

भड़सड़ा, भड़सरा–२१३ [संज्ञा] अंडे की आकृति का बना ताख (सं० भाण्ड+शाला)।

भदई–२०३ [संज्ञा] भादों के महीने में वाली फसल (सं० भाद्रपद–)।

भदवारा–११,५६ [संज्ञा] भादों की वर्षा।

भरँगा–२६१ [संज्ञा] गाड़ी को तुलवाने के समय फड़ को उठाने लिए एक लकड़ी (सं० भाराङ्ग) दे० 'गाड़ी तुलाइब'।

भर–२११,२४१ [संज्ञा] माप। यथा, मुठहथ भर (सं० भार)।

भरतू–३३,३५५ [वि०] ठोस (सं० भृ–)।

भरदंता–१६७ [संज्ञा] 'भड़दंता'।

भरहरी भरब–१५८ [क्रि०] बरदाने के समय योनि से एक प्रकार का स्राव होना।

भलुआ–३३५ [संज्ञा] एक प्रकार का बाँस।

भरुका–२३३,३२५ [संज्ञा] मिट्टी का एक छोटा पात्र; तु०;म० भुरकणें = पानी पीने के समय एक प्रकार की ध्वनि।

भवनिहाँ भैंसा–४८ [संज्ञा] भवानी के नाम पर छोड़ा हुआ भैंसा।

भसब–२०१ [क्रि०] धँसना (सं० भस्क ?)

भाँज–२७५ [संज्ञा] कोल्हू चलाने में जब सब की एक-एक पारी हो जाती है तो उसे भाँज कहते हैं (सं० भाज्य ?); ३११ [संज्ञा] पाई में बुनाई की सुविधा के लिए कुछ-कुछ दूर पर सरई पहनाना (सं० भज्); १६२ मुहा० **भाँज मारब**–पहले और दूसरे बियाने में अधिक समय का अंतर होना (भंजति)।

भाका–१३० [संज्ञा] मेड़ुआ मींज कर फाँकना (सं० भ्रस्ज ?)

भाठब–१४५ [क्रि०] पाटना।

भाठी, भाथी–२६७ [संज्ञा] लोहारों का हवा देने का एक यंत्र (सं० भस्त्री)

भाभा–११५ [संज्ञा] सावाँ का खोखला दाना।

भारा–१६२ [संज्ञा] गाय का बच्चा मर जाने पर उसको दुहने के लिये उसके सामने जो भोजन रक्खा जाता है (हिं० भाड़ा ∠ सं० भाटं = व्यभिचार द्वारा प्राप्त द्रव्य)।

भिंडी–२८२ [संज्ञा] एक भाजी (सं० भेण्डा)।

भिटवा–५ दे० 'भीटा'।

भिहलाब–२१२ [क्रि०] पसर जाना या फैल जाना। यथा, दीवार भिहलाब।

भीटा–५ [संज्ञा] ऊँचा स्थान; १३७,३८० वह ऊँचा स्थान जहाँ पान लगाया जाता है।

भीत–२१२ [संज्ञा] कच्ची दीवार (सं० भित्ति)। २१२ मुहा० **भीत ठीकब**–भीत काट-छाँट कर सुडौल बनाना; **भीत तोरब**–भीत के ऊपरी भाग में

चौड़ाई को क्रमशः कम करते जाना।
भीरी–९८ [संज्ञा] कटी हुई अरहर को टाल।
भुँजिया–४०६ [संज्ञा] चावल का एक भेद जो धान उबाल कर बनाया जाता है (सं० भ्रस्ज–)।
भुआ–११९,४०९ [संज्ञा] सरकंडे तथा किसी-किसी ईख के ऊपरी भाग में निकलने वाला एक प्रकार का फूल।
भुकुड़ियाब–९४ [क्रि०] भुकुड़ी लगना।
भुकुड़ी–९४,४०२ [संज्ञा] वर्षाऋतु में सामानों पर एक प्रकार का लगी हुई सफेद परत।
भुक्ता–२०५ [संज्ञा] छाजन में चौड़ाई में लगनेवाले बाँसों में जो जोड़ लगते हैं।
भुजैना–४०६ [संज्ञा] चरबन, चबैना (भ्रस्ज् = दहन करना)।
भुट्टा–१३३ [संज्ञा] मक्के की बाल (भ्रष्ट–?)।
भुड़का–३५३ [संज्ञा] दे० 'भरुका'।
भुड़की–३९५ [संज्ञा] डेहरी का छोटा रूप।
भूभुन–२६३ [संज्ञा] ओठ।
भुरभुरा चालब–५६ [क्रि०] एक प्रकार का कीड़ा (गोबरौड़ा) लेंड़ी को चाल डालता है, इस क्रिया को भुरभुरा चालब कहते हैं (वै० सं० भुर् = कंपन के अर्थ में)।
भुरभुरी–१ [वि०] जिस मिट्टी के टुकड़े बारीक हों।
भुरी–२४६ [संज्ञा] लकड़ी का बुरादा।
भुवहिया–११९ [संज्ञा] वह ईख जिसमें भुआ निकलता है। दे० 'भुआ'।
भुस–४ [संज्ञा०] दो रसा मिट्टी से पौधे के उखाड़ने पर होने वाली एक ध्वनि।
भुसभुस–१ [वि०] ऐसी भुरभुरी मिट्टी जिस पर चलने पर भुसभुस की ध्वनि निकले।
भूईं–४०६ [संज्ञा] जमीन (सं० भूमि)।
भूसा–१७९ [संज्ञा] अनाज के डंठलों का दाँया हुआ रूप जो पशुओं के चारे का काम देता है (सं० बुस)
भूसी–४०३ [संज्ञा] दाने के ऊपर का छिलका (सं० बुसिका)।
भेइब–३२८ [क्रि०] भिगोना।
भेड़–५६ [संज्ञा] एक पशु (सं० मेष); मुहा० भेड़ बैठाइब–खाद की दृष्टि से खेत में भेंड़ बैठाना; ३१४ भेड़ मूड़ब–भेड़ के बाल काटना।
भेल घघरा–३ [संज्ञा] ऐसा नम स्थान जहाँ से पानी चुकचुकाता हो।
भैंसाब–१७७ [क्रि०] भैंस का भैंसे से जोड़ा खाना (भैंस < सं० महिष)।
भोहराइब–३४७ [क्रि०] किसी बारीक चीज को छिड़कना।
भौंकी–४१० [संज्ञा] मूँज की एक छोटी टोकरी (सं० अभ्युत् + कृष्–?)।

म

मंगर–२०५ [संज्ञा] छप्पर के मध्य में लगने वाला बाँस या फलठा (सं० मंगल ?)।
मँगारी–२०५ [संज्ञा] छप्पर का मध्य भाग जहाँ मंगर लगता है दे० 'मंगर'।
मँगियाइब–१०७ [क्रि०] धान के खेत में निराई करने पर पौधों की श्रेणी

अलग-अलग दिखाई पड़ती है। इस प्रकार निराई करके पौधों को अलग-अलग करने को मँगियाना कहते हैं (सं० मार्ग-) ।

मँजीरा–२८४ [संज्ञा] शीरे का बुलबुला (सं० मंजीर-); मुहा० मँजीरा लेब–शीरे में बुलबुले का उठना ।

मंझा–२०५ [संज्ञा] छाजन की एक लकड़ी जो ओरवती के पास लगती है (सं० मध्य-) ।

मँड़सड़–३४२ [संज्ञा] बाँस के फल्ठे में गाँठ के समीप वाला भाग जिसे नर भी कहते हैं ।

मँदरजिया, मँदराजी–१४१ [संज्ञा] एक प्रकार की आलू जो संभवतः मद्रास की ओर से आती है ।

मइछना–२८९ [संज्ञा] महिया से चुआ हुआ रस, दे० 'महिया' ।

मकई–१३२ [संज्ञा] मक्का, ज्वार (सं० मर्कक:, मर्कटक:) ।

मकरा–१,१३० [संज्ञा] एक मोटा अन्न, मेड़ुआ । तु० अ० मा० मंडूस ।

मकुनी–४०६ [संज्ञा] मटर का आटा ।

मकोला–१७९,२६८ [संज्ञा] थोड़ा पानी मिलाकर चलाई हुई सानी ।

मक्का–१३२ [संज्ञा] दे० 'मकई' ।

मघउआ, मघऊ–९६,१४७ [वि०] माघ का ।

मघौटल खेत–११ [संज्ञा] माघ का खना हुआ खेत ।

मचहिल–२२३ [वि०] सेव, वह छाजन जिसमें ढाल कम हो (मंच-) ।

मचान–५२ [संज्ञा] खेत रखाने के लिए बनाया हुआ ऊँचा स्थान ।

मचिया–४०३ [संज्ञा] एक प्रकार का बैठने का ऊँचा आसन (सं० मंचिका) ।

मजगर–११७ [वि०] पुष्ट ।

मझोला–२७४ [संज्ञा] मिट्टी का एक बरतन जो कड़ाह में रस डालने के काम आता है (मध्य-) ।

मटखना–२२८ [संज्ञा] कुम्हार के मिट्टी खोदने का स्थान ।

मटमैल–१,१०३ [वि०] मिट्टी के रंग का कालापन लिए हुए; जो साफ न हो ।

मटियरा–४ [संज्ञा] वह खेत जिसमें मटियार मिट्टी अधिक हो ।

मटियार–१,२२७ [संज्ञा] वह मिट्टी जिसमें केवल मिट्टी हो बालू न हो ; २२९ कुम्हार जहाँ मिट्टी एकत्र करके रखता है ।

मटियार दोमट–१ [संज्ञा] वह मटियार मिट्टी जिसमें कुछ बालू का अंश हो ।

मट्ठा–१९० [संज्ञा] दही को मथकर मक्खन निकालने के बाद उसका पानी मिला हुआ रूप (सं० मस्तु-) ।

मठार–१९१ [वि०] माठा मिला हुआ ।

मड़ई–५२,२०३ [संज्ञा] फूस से छाया हुआ स्थान ।

मड़वा–१४८ [संज्ञा] मरचा के पौधे में लगने वाला एक कीड़ा ।

मड़हा–२०३ [संज्ञा] मड़ई से बड़ा रहने का स्थान (सं० मंडप) ।

मड़ियाब–२८४ [क्रि०] रस का खौल करके तर ऊपर होना (मंड-) ।

मतबरहा, मथबरहा–४२[संज्ञा] सिंचाई के लिए खेत के एक सिरे पर बनाई

गई बड़ी नाली।

मथानी—१९० [संज्ञा] दही मथने का एक औजार (मंथनी—)

मद्धिम—२४० [वि०] धीमा, घटिया (सं० मध्यम)।

मनगो—११८ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख।

मनराजी—१४१ [संज्ञा] दे० 'मँदराजी'।

मनसायन—५२ [संज्ञा] चहल-पहल, सजीवता।

मनाइब—१२८ [क्रि०] मनाना—हो जाना यथा, करेर मनाना = कड़ा पड़ जाना।

मनोहरी—३६६ [संज्ञा] साड़ी में घूँघट के पास गुथा जाने वाला एक आभूषण।

ममसब—१३१ [क्रि०] अनाज का उसकी नमी के कारण बर जाना या बिगड़ जाना।

मरकहा—१६६ [वि०] मारने वाला। यथा, मरकहा बैल।

मरकहिया, मरकही—१५७ [वि०] मारने वाली। यथा, मरकहिया गाय।

मरचा—१४७ [संज्ञा] मिरचा (सं० मिरच)।

मरिखम—३२४ [संज्ञा] कोल्हू में कातर के पिछले भाग में लगी एक खूँटी।

मरैलवा खेत—७ [संज्ञा] वह खेत जिसमें छाहीं आदि के कारण उपज न होती हो।

मल—३६१ [संज्ञा] स्त्रियों के पैर का एक आभूषण।

मलमास—३८४ [संज्ञा] हर तीसरे वर्ष पड़ने वाला चान्द्रमास जो अधिक मास होता है।

मलाई—१८८ [संज्ञा] दूध के ऊपर जमने वाली साढ़ी (सं० मल—)।

मलिस्त—३४६ [संज्ञा] सूराख करने का सोनारों का एक औजार (तु० सं० मणिछुरा)।

मसक—२६५ [संज्ञा] पानी भरने के लिए चमड़े का थैला (फ़ा० मशक)।

मसकब—१३१ [क्रि०] नष्ट होना। यथा, जीरा मसकब = जीरा नष्ट होना (सं० मस्क् तु० म० मसकणें)।

मसका—१९० [संज्ञा] मक्खन, नैनू (सं० मस्क् = जाना, निकलना)।

मसगंडा—१२८ [संज्ञा] अच्छी मोटी ईख (सं० मांस + क० गंडा = श्रेष्ठ ?)।

मसीन—४०३ [वि०] ओद, नम।

महतवा—३११ [संज्ञा] करघे के काम में आने वाला एक खूँटा (महत्)।

महदेउवा—१९ [संज्ञा] जुआठ के मध्य में उठा हुआ भाग जहाँ नाधा अटकाया जाता है।

महब—१९० [क्रि०] मथना (सं० मंथ्)

महिया—२८० [संज्ञा] शीरे की मैल (सं० मथितं प्रा० महिअ, तु० म० मही = साढ़ी) मुहा० महिया काटब—शीरे की मैल अलग करना। महिया मारब—वही।

महीन—४०३ [वि०] अच्छा, कीमती। यथा, महीन अनाज।

महुआ—३२९ [संज्ञा] एक वृक्ष (सं० मधूक)।

महुलाब—१४३ [क्रि०] सूखना, कठुआना; १४४ कुम्हिलाना।

महुवर–१५५ [संज्ञा] महुआ के रंग वाली गाय ।

महोखिया–१५५ [संज्ञा] महोख पक्षी के रंग की गाय (सं० महापक्षी) ।

महोबिया–१३६ [संज्ञा] महोबा का पान ।

माँकब–१८१ [क्रि०] कूदना-फाँदना (सं० मंकति–चलना) ।

माँग–३५५ [संज्ञा] स्त्रियों के सर के बालों के मध्य में बना मार्ग जिसमें सिंदूर डाला जाता है ।

माँझा–२०५ [संज्ञा] दे० 'मंझा' ।

माँठब–२३४ [क्रि०] तैयार हुए कच्चे बरतन का कुम्हार द्वारा हाथ से धीरे-धीरे ठोंक कर ठीक किया जाना ।

माँड़–४९ [संज्ञा] भात का पसाया हुआ पानी (सं० मंड)

माघी–९६ [वि०] माघ में होने वाली ।

माझा–३०९ [संज्ञा] पाई करते समय कैंचा पर जो बाँस रक्खा जाता है (सं० मध्य) ।

माटी–१ [संज्ञा] मिट्टी (सं० मृत्तिका प्रा० मित्तिआ ; २११ मुहा० **माटी काँड़ब**–मिट्टी रौंदना । २१२ **माटी तोरब**-मिट्टी तैयार करना ।

माठा–१९० [संज्ञा] दे० 'मट्ठा' ।

माड़ा–१०२ [संज्ञा] तीसी का एक रोग ।

माड़ो–१३७ [संज्ञा] पान के भीटे के लिये बनाया गया छप्पर (सं० (मण्डप) ।

माथ–१४ [संज्ञा] हल की मूड़ी; ४२, ११५ सिरे का भाग ।

मान–४०४ [संज्ञा] बड़ी चक्की जिसमें अरहर दरी जाती है (सं० मानिका) ।

मानब–१६८ [क्रि०] किसी चीज का ठीक-ठीक पूरा उतरना, किसी चीज का अनुकूल प्रभाव पड़ना ।

मार देब–११५ [क्रि०] किसी वस्तु को हानि पहुँचा देना (सं० मारयति) ।

मारा जाब–८६,११५ [क्रि०] किसी वस्तु को हानि पहुँचना ।

माल–१५३,२९५ [संज्ञा] किसी सामान का तात्विक अंश (अर० माल) ।

माला–१९ [संज्ञा] जुआ के पचार और सइल द्वारा बना घेरा ।

माल्ह–४०१ [संज्ञा] चरखे की एक डोरी या रस्सी जिसके सहारे तकुआ घूमता है (सं० माल्य) ।

मास–१२८ [संज्ञा] उड़द (सं० माष) ।

माहो–१०१,१४९ [संज्ञा] एक रोग जो सरसों व मूली की फसल को हानि पहुँचाता है ।

मिंढ़ब–४१० [क्रि०] मिंढ़ना, किसी चीज के किनारे पर बुनना (प्रा० मड्ड–) ।

मिरचा–१४७ [संज्ञा] एक फली जो अत्यन्त कड़ुई होती है (मरिच ?) ।

मिलहर बैल–१६७ [संज्ञा] वह बैल जिसके आठ दाँत पूरे हो गये हों ।

मींढ़ी–३८७ [संज्ञा] झौआ की अवँठ तु० मेंढ़ी, दे० 'मिढ़ब' व 'अवँठ' ; मुहा० **मींढ़ी मारब**–मींढ़ी बनाना ।

मुँगरी–२२९,३८० [संज्ञा] लकड़ी का एक छोटा पिटना (सं०मुद्गर–); २७०

लकड़ी का एक टुकड़ा जो ईख के कल में लगता है।

मुँगारा–११२,१७९ [संज्ञा] वह धान जिसमें पानी की कमी से फल न लगे हों (मुद्गाकार ? मुद्गलः–एक प्रकार की घास)।

मुँड़गुहना–३६९ [संज्ञा] चँवरी।

मुंडी–१५६,१६५ [संज्ञा] जिसके सिर पर सींगें नाम मात्र हों (मुंड –)।

मुँड़िया–८३ [संज्ञा] एक प्रकार का गेहूँ।

मुँड़ेरी–२२३ [संज्ञा] मकान का सब से ऊपरी भाग जो बड़ेर पर होता है।

मुँदरी–३५९ [संज्ञा] अँगुलियों का एक आभूषण (सं० मुद्रिका)।

मुँहकड़ा–२३३ [संज्ञा] किसी बरतन के मुँह के समीप वाला भाग (मुख + कटक)।

मुँहमुँह–४२ [क्रि०वि०] मुँह बराबर।

मुक्का–२१२ [संज्ञा] मूका (मुष्टिका)।

मुटमुर–६३ [संज्ञा] एक प्रकार का भदईं धान।

मुटठा–२१६ [संज्ञा] छाजन के लिए सरकंडों का एक समूह जो साधारणतः मूठी भर होता है (मुष्टि–)।

मुटठी–१६३ [संज्ञा] बैलों की नाप जो मूठी से की जाती है (सं० मुष्टिका प्रा० मुट्ठिआ)।

मुठहथ–२११,२४१ [संज्ञा] मुट्ठी बंद हाथ की नाप—लगभग डेढ़ बीता (तु० सं० रत्नि प्रा० रयणि = मुठहथ)।

मुठिया–१६ [संज्ञा] परिहथ के ऊपरी भाग का वह स्थान जिसे मूठी से पकड़ते हैं (सं० मुष्टिका); २३३ कुम्हार का एक औजार जिससे बरतन पीट-पीट कर ठीक किया जाता है; २४० गोबर की पाथी हुई मुठिया जो जलाने के काम आती है; २७४ बरतन पकड़ने के लिये उसमें बना हुआ उपकरण; २८५ मूठी द्वारा बनाई हुई गुड़ की छोटी-छोटी भेली; ४०२ जाँत के हथवड़ का मुट्ठी से पकड़ा जाने वाला भाग।

मूठ लेब–९२ [क्रि०] बोने की साइत करना (सं० मुष्टिक–)।

मूठा–२१६ [संज्ञा] दे० 'मुट्ठा'।

मुड़कट्टा–२३१ [संज्ञा] कुम्हार।

मुतउड़–१५८ [संज्ञा] बच्चा होने के पूर्व योनि से निकलने वाला जलवत् पदार्थ (सं० मूत्र–पुट–); मुहा० मुतउड़ आइब, मुतउड़ फूटब–मुतउड़ निकलना।

मुतान–१६३ [संज्ञा] बैल का मूत्र स्थान।

मुदैपन–५१ [संज्ञा] दुश्मनी (अर० मुद्दई–)।

मुद्धीदार–३२० [वि०] मुद्धी से युक्त—मुद्धी एक प्रकार का फन्दा है।

मुनरी–६४ [संज्ञा] दे० 'मुँदरी'।

मुनुई–२७४ [संज्ञा] रस उदहने के लिये एक छोटा मिट्टी का बरतन।

मुमेर–३३८ [संज्ञा] एक प्रकार का बाँस।

मुरियाइब–१५१ [क्रि०] खेत की नाली के भीतर की मिट्टी को निकालकर उसे नाली के किनारे छोपना (हिं० मुड़ना = मोड़ना सं० मुट्–मोटयति)।

मुरेरब–९९ [क्रि०] ऐंठना।

मुर्रा–४१ [संज्ञा] खेत की सिंचाई में पानी चलाने के अन्तिम ओहार को मुर्रा कहते हैं; ९१ अरहर के पेड़ को मरोर कर बनाई हुई रस्सी जो लेहना बांधने के काम में आती है; १७३ एक प्रकार की भैंस।

मुर्रियाइब–२९०,३०६ [क्रि०] ऐंठना, एक प्रकार का बट देना।

मुर्री–३१० [संज्ञा] एक सूत को दूसरे से मिला कर अँगूठे के सहारे बट देना।

मुर्हियाब–१२५ [क्रि०] ईख जम आने पर पौधों की श्रेणी अलग-अलग दिखाई पड़ती है उसे मुर्हियाना कहते हैं दे० 'मूर्हि'।

मुसरा–२०१ [संज्ञा] कुएँ का वह स्रोत जहाँ से मूसलाधार जल निकले; २७० ईख पेरने की कल में मूसर सदृश एक गोला लोहा होता है (सं० मुसल); १९७,२०१ **मुसरा खुलब**–पानी का स्रोत खुल जाना।

मुहूरत–२१० [संज्ञा] मुहूर्त्त। मुहा० **मुहूरत सोधवाइब**–मुहूर्त्त विचरवाना।

मूँगरि–३४१ [संज्ञा] एक लकड़ी का ठीहा जिस पर धरिकार बाँस रखकर काटता है (सं० मुद्गरक) दे० 'मुँगरी'।

मूँज–१४०,३८०,४१० [संज्ञा] सरकंडे का नरम छिलके वाला भाग (सं० मुंज)।

मूँड़–१४ [संज्ञा] हर का पिछला मोटा भाग; ३७३ सिर (सं० मुंड); मुहा० **मूँड़ मूड़ना**–सिर का सारा बाल छूरे से बनाना; **दाढ़ी मूड़ब**–दाढ़ी बनाना।

मूँड़ब–३७३ [क्रि०] छूरे से सिर के बाल बनाना (मुंडयति)।

मूँड़ा–१४ [संज्ञा] दे० 'मूँड़'।

मूँड़ी–३०४ [संज्ञा] जाठ का अन्तिम भाग जो कोल्हू में रहता है; ४०१ चरखे के मध्य की वह मोटी लकड़ी जिसके भीतर से धुरा निकलता है।

मूनब–२९९ [क्रि०] मूँदना, छिपाना (सं० मुद्रयति)।

मूर्हि–२३,५९,१०२,१२३ [संज्ञा] हल द्वारा खेत में जो निशान बनता है विशेषतः ईख और तीसी बोने के लिये (सं० मूर्धा ?)। १४२ आलू बोने के लिए कुदार द्वारा बनाई गई नाली; १२८ मुहा० **मूर्हि चढ़ाइब**–मूर्हि पर मिट्टी चढ़ाना। दे० 'डुड़ही'।

मूस–५० [संज्ञा] चूहा (सं० मूषक)।

मृगडाह–१२६,३३२ [संज्ञा] मृगशिरा नक्षत्र; कहा० **मृगडाह जब तपै अँगारा। सोइ किसान जो पोय सँभारा॥**

मेखड़ा–२६ [संज्ञा] बाँस की वह पट्टी जिसे बेंड़ी के मुँह पर गोलाकार रूप में बाँधते हैं (सं० मेखला ?)। तु० 'मेंड़रा'।

मेघी–१७८ [संज्ञा] पशुओं के गले का एक रोग जिसके कारण उनसे कुछ खाया नहीं जाता है।

मेटा, मेटी–२३३ [संज्ञा] मिट्टी का एक पात्र जिसमें दूध आदि रखते हैं (सं० मृत्घट)।

मेंड़–५,१२ [संज्ञा] खेत की हद बनाने वाली जमीन; **मेंड़-डाँड़**–वही।

मेंड़रा–२६,२८ [संज्ञा] मोट के मुँह पर गोलाई में लगी हुई एक लकड़ी; ३४२,३४३,३८९ दौरे के मुँह पर लगी बाँस की फट्टी।

मेंड़री–४०२ [संज्ञा] एक मंडलाकार चबूतरा; ४१० मौनी बुनने की मंडलाकार (पेंदी)।

मेड़ुआ–१,१३० [संज्ञा] एक मोटा अनाज, मकरा (तु० अ० मा० मंडूस)।

मेड़ुरी–१३१ [संज्ञा] मेड़ुआ की डाँठ।

मेंड़ौरी–१२ [संज्ञा] मेंड़ के अगल-बगल की जमीन।

मेंढ़ी–३९२ [संज्ञा] चोटी की भाँति गाँछी हुई गोनरी में अवँठि, दे० 'मिंढ़ब' व 'मींढ़ी'; मुहा० मेंढ़ी मारब–अवँठ मारना।

मेरइब–५७,१०५ [क्रि०] पैरा बोने के बाद खेत को जोतकर हेंगाना।

मेल्हब–२४६ [क्रि०] इधर-उधर डगमगाना।

मेहनार–२७५ [संज्ञा] एवज़ के बदले में दिया गया मजदूर।

मेहियवा, मेहियहवा, मेहिया–६९ [संज्ञा] दँवरी के समय चलने वाला बाईं ओर का बैल जो चलते समय केन्द्र में पड़ता (सं० मेथि प्रा० मेढि = खल के बीच का काष्ठ जहाँ पशु को बाँधकर मर्दन किया जाता है)।

मैना–१६५ [संज्ञा] फैली हुई सींग वाला बैल।

मैनी–१५६ [संज्ञा] ऐसी गाय जिसकी सींगें फैली हों; ३८२ चारपाई की बुनावट को आरंभ करते समय पैताने की ओर लगाया जाने वाला बेंड़े-बेंड़ बाध जिसमें बाद में उनचन लगाया जाता है। तु० अरदवान तथा मइन।

मैल–२८० [संज्ञा] शीरे का मल जो उबालने से अलग होता है; मुहा० मैल कमाव–मैल अलग करना; २८१ मैल फूटब–शीरे की मैल का फैलना।

मोख–२०५ [संज्ञा] छान के दोनों बगल जो रहठा लगा रहता है उसे मोख कहते हैं (सं० मुख पट्टी, तु० म० मोहटो = छप्पर का किनारा)।

मोखब–२०७ [क्रि०] मोख को धँसाकर छान में ठीक करना।

मोगली बंधन–२०५ [संज्ञा] एक प्रकार की गाँठ।

मोगली बुनावट–३८३ [संज्ञा] एक प्रकार की चारपाई की बुनावट।

मोचना–२६६ [संज्ञा] मोचियों का एक औजार जिससे सिलाई के समय डोरी खींचते हैं।

मोट–३५,३८ [संज्ञा] चमड़े का बड़ा थैला जो सिंचाई के काम आता है (क० मोट्ट = संचय ?); ३८ मुहा० मोट तोरब–मोट से पानी गिराना; मोट सिउरब–मोट और मेंड़रा को रस्सी से नाथना।

मोटरी–२६५ [संज्ञा] गठरी (क० मोट्ट = संचय ?)।

मोतिहरा–३५८ [संज्ञा] एक प्रकार का आभूषण जो कलाई में पहना जाता है।

मोथा–६३ [संज्ञा] एक प्रकार की घास (सं० मुस्त, प्रा० मुत्था, मोत्था)।

मोमजामा–२६० [संज्ञा] मोम जमाया हुआ कपड़ा या टाट।

मोरवट–३४३ [संज्ञा] दौरे के मेंड़रे पर ऐंठी हुई बुनावट।

मोरा–४०३ [संज्ञा] बैठने का एक आसन तु० हिं० मोढ़ा।

मोहवा–१४९ [संज्ञा] एक प्रकार की मूली।

मोहान–३९५ [संज्ञा] डेहरी का मुँह (मुख–)।

मोहाना–३९४ [संज्ञा] चूल्हि का मुँह।

मोहार–२५१ [संज्ञा] दरवाजा (मुख+द्वार)।

मौनी–४१० [संज्ञा] मूँज का कटोरे के आकार का एक पात्र।

र

रंदा–२४२,२४८ [संज्ञा] बढ़ई का एक औजार जिस से वह लकड़ी की सतह छील कर बराबर करता है (फ़ा० रंदह); मुहा० **रंदा फेरब**–रंदा करना।

रंदियाइब–२४८ [क्रि०] रंदा करना।

रंपा–२६४ [संज्ञा] चमड़ा साफ करने और काटने का औजार (प्रा० रंप=छीलना)।

रउता–२१६ [संज्ञा] एक प्रकार का ईख सदृश पौधा जो छाजन के काम में आता है (?+पत्र)।

रक्त-रक्त–३६३ [संज्ञा] रक्त।

रखवारी–५२ [संज्ञा] खेत रखाने का कार्य।

रखौना–१८० [संज्ञा] पशुओं के चरने के लिये छोड़ी हुई जमीन।

रद्दा–२१२ [संज्ञा] मिट्टी की दीवार बनाते समय जितनी मिट्टी एक बार में दीवार पर रखी जाती है (तु० सं० रद्=खोदना; फा० रदह्–); मुहा० **रद्दा घुमाइब**–दीवार पर रद्दा चढ़ाना।

रन्ना–२४२ [संज्ञा] दे० 'रंदा'।

रबनी–२७९ [संज्ञा] राब से पतला ईख का औटाया हुआ हलका गाढ़ा रस दे० 'राब'।

रमरहरवा, रमरहरा–६६ [संज्ञा] एक प्रकार की अरहर (राम—विशेष के अर्थ में, तु० राम बाँस)।

रवा–३५८, ३६० [संज्ञा] सोने या चाँदी के छोटे-छोटे दाने।

रवाब–७९ [क्रि०] सूखना।

रस–२८० [संज्ञा] ईख का रस (सं० रस); मुहा० **रस कमाब**–रस से महिया या मैल अलग करना। २८३ **रसफेरब**–एक कढ़ाह से दूसरे में रस डालना। **रस बोझब**–कड़ाह को रस से भरना।

रसगर–११७ [वि०] रस से भरी हुई यथा, रसगर ईख।

रसरी–३७५ [संज्ञा] रस्सी, डोरी (सं० रश्मि –)

रसवत–१०५ [संज्ञा] वर्षा में खेत जोत कर धान छींट कर बोने को रसवत की बोआई कहते हैं।

रसहा–२७४ [वि०] रस वाला। यथा, रसहा हौदा।

रसियाइब–७२ [क्रि०] ओसाने के बाद अन्न की राशि लगाना (सं० राशि)।

रसी–२६४ [संज्ञा] चमड़े को सिझाने के लिये उसे थैला सदृश बनाकर उसमें बंडा खून कर पानी के साथ भर देते हैं।

इस थैले से जो रस चूता है उसे रसी कहते हैं, इस रसी को पुनः उसी थैले में डालते हैं। दे० 'बंडा' २७३ खोइया में पानी डाल कर उसे दहाने से जो रस तैयार होता है।

रस्सा–३७५, ३८१ [संज्ञा] रस्सी से मोटा।

रहँट–२६,४० [संज्ञा] कुएँ से पानी निकालने का एक यंत्र (सं० अरघट्ट प्रा० अरहट्ट) तु० म० रहाट।

रहठा–५८,७३,२४४ [संज्ञा] अरहर का सूखा डंठल।

रहर–९६ [संज्ञा] दे० 'अरहर'।

रान-परोसी–४९ [संज्ञा] अड़ोसी-पड़ोसी (सं० परान्त + प्रतिवेशी वा प्रतिवासी)।

राँपा, राँपी–२६६ [संज्ञा] दे० 'रंपा'।

राई–१०० [संज्ञा] एक प्रकार की छोटी सरसों (सं० राजिका प्रा० राइका) तु० अ० म० राई।

राख, राखी–२४१,३२५,३४९ [संज्ञा] भस्म (सं० रक्षिका)।

राखी-पाती–२४१ [यौ०] राख और पत्ते का कचड़ा।

राछ–३०७,३१२ [संज्ञा] जुलाहों के करघे में एक औजार जिसके भीतर ताने का तागा रहता है, राछ के ठोंकने से कपड़ा गफ होता है।

रातुल–७८ [संज्ञा] जौ का अधपका मोटा दाना (सं० रक्त–)।

रानी काजर–१०३ [संज्ञा] एक प्रकार का धान।

राब–२७१,२८६ [संज्ञा] शीरे का जमा हुआ रूप (प्रा० रब्बा)।

राम कहि द–४१ मुहा० सिंचाई समाप्त करने के लिए एक संकेत।

रामबाँस–१९७ [संज्ञा] एक प्रकार का मोटा बाँस (राम–विशेषता का द्योतक तु० रमरहरवा); मुहा० **रामबाँस कूटब**–पानी निकालने के लिये किसी बाँस के टुकड़े में लोहा लगाकर उसे कुएँ में धँसाना। **रामबाँस डालब**–वही।

रास–३९९ [संज्ञा] जितनी रूई एक बार में धुनने के लिये रक्खी जाती है (सं० राशि–)।

रिस-रिस कर आइब–१९७ मुहा० थोड़ा-थोड़ा पसीजना या निकलना।

रुक्खा देब–२९७ [क्रि०] चीनी के गद को साफ करने के लिये उस पर गरम पानी का छिड़काव करते हैं, इसे रुक्खा देना कहते हैं (सं० रुक्ष, प्रा० रुक्ख)।

रुखान, रुखानी–२४२,२४९,३२७ [संज्ञा] लोहे का लकड़ी काटने का एक औजार।

रूई–३९८ [संज्ञा] एक पदार्थ जिससे सूत काता जाता है (प्रा० रूअ, अ० मा० रुय)।

रूखर–३८० [संज्ञा] खुरदुरा (सं० रुक्ष प्रा० रुक्ख)।

रूर–१४९ [वि०] जिस मूली के रेशे कड़े पड़ जाते हैं और जो भीतर सफेद हो जाती है (तु० प्रा० रूअ = रूई)।

रूसी–३७१ [संज्ञा] सर की खाल की पतली झिल्ली के बारीक टुकड़े।

रेंगब–४४ [क्रि०] पानी का धीरे-धीरे बहना (सं० रिंगण); ४४,१२६ मुहा०

अपने सुखे पानी रेंगब-स्वतंत्रता-पूर्वक पानी का खेत में बहना।

रेंड़ब-७७,१०७,१०८ [क्रि०] जौ या धान में बाल निकलने की पूर्वावस्था (सं० एरंड)।

रेतब-२६७ [क्रि०] रेती द्वारा रगड़ना (सं० रेतस्)।

रेती-२४२,२६७,३४६ [संज्ञा] लोहा घिसने या रेतकर काटने का एक औजार (सं० रेतस्)।

रेल मारब-१९७ [क्रि०] जोर से धक्का मारना (प्रा० रेल्लि+; दे० ने० रेल्नु)।

रेवरवा, रेवरा-११८ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख (हिं० रेवड़ा सं० रेव+वटि)।

रेसा-३९७ [संज्ञा] रूई के तंतु (फा० रेशा)।

रेहकट, रेहटा-१ [संज्ञा] रेह प्रधान मिट्टी।

रोंगटा-२६४ दे० 'रोआँ'।

रोआँ, रोवाँ-१५५ [संज्ञा] छोटे-छोटे बारीक बाल (सं० रोम)।

रोड़ी बाँस-२१६ [संज्ञा] एक प्रकार का पतला बाँस जो छाजन के काम आता है।

रोपब-८,५९,११२ [क्रि०] धान की बेहन बैठाना (सं० रोपय् प्रा० रुप्प)।

रोपहँड़-८ [संज्ञा] जिस खेत में धान रोपा जाता है; ११२ रोपा हुआ धान।

रोपाई-११२,१४७ [संज्ञा] रोपने का कार्य (सं० रोपण, अ० मा० रुंपण)।

रोरही-३ [संज्ञा] वह मिट्टी जिसमें कंकड़ के छोटे-छोटे टुकड़ें हों (हिं० रोड़ा)।

रोलब-२४२ [क्रि०] बाँस को आँका से छीलना या साफ करना (सं० लोलयति)।

ल

लंगड़ डालब-४०७ [क्रि०] कई परत कपड़ों को साधारण सिलाई द्वारा अँटकाना।

लकठा-१३३ [क्रि०] दे० 'लट्ठा'।

लकड़हिया-११९ [वि०] लकड़ी के समान कड़ी। यथा, 'लकड़हिया ईख'।

लकड़ी कमाब-२४७ मुहा० लकड़ी काट-छाँट कर उसे काम के योग्य बनाना।

लगब-२५ [क्रि०] हेंगा का भलीभाँति काम देना; ११० सीड़न का प्रभाव पड़ कर किसी वस्तु का दागी होना; १६२ गाय का दूध देना।

लगहर, लगेन-१६२ [संज्ञा] दूध देने वाली गाय।

लच्छा-२६१ [संज्ञा] सन के रेशेदार लम्बे-लम्बे भाग (लक्षित?); ३६१ एक आभूषण जो चाँदी का तार बट कर बनाया जाता है; ३९७ रूई के रेशों को जब एक सीध में कर लिया जाता है।

लट-३६९ [संज्ञा] सूत या ऊन की चोटी बनाने के लिए जब कई तागे एक में बट दिए जाते हैं तब उनमें से प्रत्येक को लट कहते हैं।

लटाई-३६८ [संज्ञा] पटहार का एक औजार जिसके द्वारा तार लपेटते हैं (सं० लट्?)। तु० चरक।

लट्ठा-१३३ [संज्ञा] ज्वार-बाजरे का

बाँधने के ढंग को लवनी बैठाना कहते हैं।

लवाही–१२९ [संज्ञा] ईख में लगने वाला एक रोग जिस से ईख लाल पड़ जाती है।

लसदार–२,१९८ [वि०] लासा युक्त (सं० लसिका + फा० दार)।

लसर-लसर–३२७ [संज्ञा] लासापन।

लसरी–३७५ [संज्ञा] दे० 'रसरी'।

लहटी–४१० [संज्ञा] लाह की चूड़ी के टुकड़े (सं० लाक्षा)।

लहब–१० [क्रि०] किसी औजार का ठीक-ठीक काम देना (लभ् –)।

लहसुर–२२९ [संज्ञा] पहँसुल के आकार का कुम्हारों का औजार जिससे वे मिट्टी के परत काट-काट कर अलग करते हैं।

लहाँकू–१० [वि०] भली भाँति काम देने वाला वाला औजार, दे० 'लहब'।

लाई–४०६ [संज्ञा] भुंजिया चावल का भुना हुआ रूप (सं० लाजा)।

लाढ़ा–१६७ [संज्ञा] स्वस्थ बाछा।

लात–२५ [संज्ञा] पैर (प्रा० लत्ता)।

लावा–४०६ [संज्ञा] दाना भूनने पर जो दाने भली भाँति खिल जाते हैं उनको लावा कहते हैं।

लाही–१०० [संज्ञा] एक लाल रंग की सरसों जिसके दाने छोटे होते हैं (सं० लाक्षा); २१३ शक्कर के भरे हुए लोथों पर लाह सदृश शीरे का बुल्ला।

लिझियाब–८० [क्रि०] लीझी सदृश होना (प्रा० लिज्झइ ?)।

लिभरी–४०२ [संज्ञा] जाँता की मेंड़री पर वर्षा में एक प्रकार की भुकुड़ी जम जाती है जिसे लिभरी कहते हैं।

लिलारी–३१, १९६ [संज्ञा] कुएँ का मुँहकड़ा (सं० ललाट)।

लिहा-लिहा–४८ [अ०] कुत्ते को ललकारने का संकेत (ले ..)।

लीझी–८० [संज्ञा] अपटन छोड़ाने पर जौ के आकार की जो मैल छूटती है उसे लीझी कहते हैं।

लीपब–२१२ [क्रि०] दीवार को मिट्टी से चिकनाना (सं० लिम्प् –)।

लुगरी–४०८ [संज्ञा] जनानी धोती (दे० ने० लुगा ∠ रुग्ण)।

लुँड़ियाइब–२०९, ३७७ [क्रि०] लुंडी बनाना।

लुंडी–११६ [संज्ञा] सन की ऐंठी हुई आँटी; २०९, ३७७ रस्सी बनाने के लिए सन का ऐंठा हुआ रूप; ३७४ कते हुए बाँध की पिंडी।

लुतराह, लुदकाह–५८ [संज्ञा] वह बोआई जो बराबर से न हो।

लुहा-लुहा–४८ [अ०] दे० 'लिहा लिहा'।

लूगा–४०८ [संज्ञा] दे० 'लुगरी'।

लूड़ी–११६ [संज्ञा दे० 'लुंडी'।

लेउ–१०६ [संज्ञा] दे० 'लेव'।

लेट–२३ [संज्ञा] हल में मिट्टी अथवा घास-पात का बझना (सं० लोट्यते); मुहा० लेट मारब–लेट छोड़ा देना।

लेढ़ा–८० [संज्ञा] जौ की काली बाल (लेढ़ा = छोटा, बेकार। यथा, लेढ़वा सियार वा लेढ़ा आदमी)।

लेदुर–५६ [संज्ञा] एक लता ।

लेदी–२८ [संज्ञा] ढेंकुर के बल्लें के निचले भाग को भारी बनाने के लिए जो मिट्टी छोपी जाती है ; १२३ ईख की मूहिं को चौड़ी करने के लिये हल में जो रस्सी आदि लपेटते हैं (सं० रद्य = बोझ) ।

लेव–२३,१०६ [संज्ञा] धान के खेत में पानी लगने पर उसे लेव कहते हैं । लेव में धान बोने को **लेव की बोआई** कहते हैं (सं० लेप, प्रा० लेव = नाभि-प्रमाण जल); १०६ मुहा० **लेव बिद्-हब,–मारब,–हेंगाइब**—लेव वाले खेत की बिदहनी, दे० 'बिदहब' ।

लेवरब–३०८ [क्रि०] तानी में माड़ी लगाना (सं० लेप) ।

लेसब–३४७ [क्रि०] घेरना (सं० श्लेष) ।

लेहँड़–१६३ [संज्ञा] बैल का झुंड ।

लेहँड़ा–५६ [संज्ञा] सौ भेड़ों का समूह ।

लेहँड़िहा–१६३ [संज्ञा] लेहँड़ी का बैल ।

लेहँड़ी–१६३ [संज्ञा] दे० 'लेहँड़' । मुहा० **लेहँड़ी बेराइब**–लेहँड़ी में बैल चुनना ।

लेहना–६६ [संज्ञा] कटिया के समय खेत में काटे हुये पौधों का समूह ; १७९ [संज्ञा] खेत में कटे हुये अनाज का वह भाग जो मजदूरों को मजदूरी के रूप में दिया जाता है (लभ्–) ।

लेहनियाइब–६६ [क्रि०] लेहना का ढेर लगाना ।

लोआ–२३५ [संज्ञा] मिट्टी का सना हुआ चाका (लोई, सं० लोत ?) ।

लोट–२३३ [संज्ञा] गगरी से बड़ा मिट्टी का एक पात्र ।

लोढ़ा–१६८,३२९ [संज्ञा] सिल पर पीसने के लिये पत्थर का एक विशेष टुकड़ा (प्रा० लोढ़) ।

लोढ़ियायल–१८७ [वि०] लोढ़ा की भाँति पड़ा हुआ—जो पशु बैठ जाने पर आसानी से नहीं उठता । यथा, लोढ़ियायल गोरू ।

लोथहिया–२९० [वि०] लोथे वाला । यथा, लोथहिया कपड़ा, दे० 'लोथा' ।

लोथा–२९० [संज्ञा] कपड़े का एक विशेष थैला जिसमें शक्कर को साफ करने के लिये भरते हैं (सं० लोष्ट प्रा० लोट्ठ; तु०म०लोथ; दे०ने०लोथ्); २९३ मुहा० **लोथा काँड़ब**–लोथा के ऊपर चढ़ कर उसे रौंदना ; **लोथा धोउब**–लोथा के ऊपर निकली हुई लाही को पोंछना दे० 'लाही' ।

लोनही–१ [संज्ञा] दे० 'नोनही' ।

लोहार–२६७,२६८[संज्ञा] लोहे का काम करने वाला कारीगर (सं० लोहकार) ।

लोहिया–१५५ [वि०] लाल रंग की । यथा, लोहिया गाय (सं० लोह) ।

लोहे की गाँठ–१६३ कहा० अत्यंत मजबूत, किसी बैल की मजबूती प्रकट करने के लिये उसे लोहे की गाँठ कहते हैं ।

लौटब–२९३ [क्रि०] किसी चीज का पूर्व रूप में हो जाना ।

लौटान–४६ [संज्ञा] बरहा के एक ओर के खेत की सिंचाई पानी के चढ़ान की सिंचाई और बरहा के दूसरी ओर की सिंचाई पानी के लौटान की सिंचाई कहलाती है क्योंकि दूसरे पक्ष की सिंचाई

उसके अंतिम छोर से आरम्भ होती है, दे० 'चढ़ान'।

व

विलायती–११७ [वि०] बाहर से आई हुई, परदेशी; २४२ कारखाने की बनी हुई (अर० विलायत)।

वैट खाब–११ मुहा० वर्षा से तृप्त (सं० वृष्ट प्रा० विट्ठ) दे० 'ओयट'।

स

सँगहा–२०४,२१०,२७४ [संज्ञा] सामग्री (सं० संग्रह)।

संठा–११६,२०५ [संज्ञा] सनई का डंठल।

सँड़सी–२६७ [संज्ञा] लोहे का एक पकड़ने का औजार (सं० संदंशिका)।

सँपही–१५७ [संज्ञा] साँप की भाँति जीभ निकालने वाली गाय।

सँवखिहा बैल–१६५ [संज्ञा] जिस बैल के भौं के बीच में भँवर हो (समत्व–)।

सँवारब–२३१ [क्रि०] बर्तन बनाते समय पानी लगाकर उसे सुडौल बनाना।

सइका–२३३,२७४ [संज्ञा] मिट्टी का एक छोटा बरतन जो गुलउर में शीरे के उदहने के काम आता है।

सइकी–२३३,२७४ [संज्ञा] सइका का छोटा रूप।

सइल–१९ [संज्ञा] जुआ के दोनों किनारों पर जो खूँटियाँ लगती हैं और जिनसे पूरा घेरा बन जाता है (सं० शम्या, शमिला प्रा० समिला, तु० अ० मा० समिला; २० मुहा० **सइल छटकाइब**–सइल अलग कर बैलों को जुए से बाहर करना।

सकड़ी–२५३ [संज्ञा] दरवाजा बन्द करने की जंजीर (शृंखला)।

सकरी–२५६ [संज्ञा] चाँदी या सोने की गले में पहनने की जंजीर।

सगंधा–२४४ [संज्ञा] लकड़ी ढोने की रस्सी।

सगुनी–२५७ [संज्ञा] गाड़ी के फड़ को जुए से सम्बन्धित करने वाली सामने की लकड़ी, गाड़ी बनाते समय बढ़ई इसी को सबसे पहले बनाता है इसीलिए यह नाम है।

सजब–१४२ [क्रि०] खाद पाँस छोड़ने से खेत का उपजाऊ बन जाना (सं० सज्ज)।

सजाइब–१५० [क्रि०] सजब का स०।

सजाव–१८९ [संज्ञा] सजाने का भाव—जिसकी सुन्दरता अछूती हो। यथा, सजाव का दही—ऐसा दही जिसकी साढ़ी ज्यों की त्यों हो।

सटल–३१२ [संज्ञा] करगह में चलने वाली ढरकी।

सतदरि–१६७ [संज्ञा] सात दाँत वाला बैल (सं० सप्त + रद); कहा० **सतदरि कहे मैं आवों जावँ। कुटँब परिवार उपरिहितहिं खावँ॥**

सतुआ, सतुवा–७८,४०६ [संज्ञा] जौ-मटर का सत्तू (सं० सक्तु)।

सनइहा, सनइहटा–९ [संज्ञा] जिस खेत से सनई कटी हो (सं० शण–)।

सनकब, सनसनाब–२८० [क्रि०] रस

सर्रा–३६ [संज्ञा] गड़ारी की धुरी या धुरा (अनु०) ।

सल्लू–२६५,२६६ [संज्ञा] चमड़े की डोरी जिसे मोची प्रयोग करते हैं (प्रा० सेल्लि) दे० 'सेल्हा' ।

सवाई-सवाया–२५७,२१८ [संज्ञा] बैल गाड़ी में मूड़ी के पास एक लकड़ी (स + पाद) ।

सवाती–७४ [संज्ञा] स्वाति नक्षत्र ।

सहता–३२० [संज्ञा] गड़रिया लोगों का कम्मल बुनने का एक औजार ।

सहद–१११ [संज्ञा] शहद ।

सहदेइया–१११ [संज्ञा] एक प्रकार का धान ।

सहन–२२२ [संज्ञा] बैठका ।

सहेंड़ी १३५ [संज्ञा] सावाँ का डंठल ।

साँचा–२३६ [संज्ञा] वह उपकरण जिसके द्वारा बर्तन बनाते हैं, आदर्श । तु० गोंट ।

साँची पान–१३६ [संज्ञा] एक प्रकार का पान ।

साँटा–२६५ [संज्ञा] बैल हाँकने के लिए चमड़े की लच्छियाँ जो सुटकनी के रूप में प्रयुक्त होती हैं ।

साँड़–४८,१६५ [संज्ञा] वह बैल जो सार्वजनिक रूप से वंश-वृद्धि के लिए छोड़ा गया हो (साँड–) ।

साँथी–३०७ [संज्ञा] ताना में गणित-चिह्न के रूप में आने वाला स्थान ।

साँपिन–१६५ [संज्ञा] जिस बैल की पीठ पर साँप का चिह्न हो ।

साइत–९२,१९३ [संज्ञा] शुभ मुहूर्त (फा० साअत) ।

साग–८९,९३ [संज्ञा] मटर या चना की खोटी हुई पत्तियाँ ।

साझीदार–२७५ [संज्ञा] साझा करने वाला (सं० सहाध्यायी) । २४४ कहा० **साझे की सूई सगंधा से जाई ।**

साटा–१ [संज्ञा] ऊसर में पानी रुकने के लिए बनाई गई चौड़ी नहर ।

साठी धान–१०३,१०८ [संज्ञा] साठ दिन में होने वाला धान (सं० षष्टिक) ।

साढ़ी–१८८,१८९ [संज्ञा] बैठाये हुए दूध के ऊपर मलाई वाला अंश (सं० सार) ।

साध–३५९ [संज्ञा] नाप ।

साधब–२४६ [क्रि०] निर्धारित निशान पर आरे को चलाना ।

सान–३७२ [संज्ञा] एक प्रकार का औजार जिस पर चाकू वगैरह तेज़ किया जाता है (सं० शाण) ।

सानब–२९२ [क्रि०] मिलाना (सं + नी ?) ।

सानी–१७६,२३४ [संज्ञा] भूसा आदि को पानी के साथ चलाकर पशुओं के लिए बनाया गया भोजन ।

सानी-भूसा–२३६ भूसा आदि की सानी; १७९ मुहा० **सानी चलाइब**–सानी तैयार करना ।

साम–२६७ [संज्ञा] दे० 'सान' ; **साम चढ़ाइब**–सान रखना; **साम धरब**–वही ।

सामा–२७० [संज्ञा] एक प्रकार की मुँदरी जिसे ईख पेरने की कल की हरिस के एक सूराख में बैठाते हैं, इस सूराख में कल की मूड़ी रहती है ।

सामा के रहने से सूराख घिस नहीं सकता।

सार–३४२ [संज्ञा] फल्ठा की पतली-पतली तीलियाँ दे० 'दिउली;' ३८६, ३८९ [संज्ञा] रहठा की पतली-पतली टहनियाँ।

सारि–१६२ [संज्ञा] पशुओं के बाँधने का स्थान (सं० शाला)।

सालब–२४९ [क्रि०] किसी लकड़ी को किसी सूराख में गढ़ कर बैठाना (सं० शो, तु० म० सालणें = छाँटना)।

साली–१२८ [संज्ञा] एक प्रकार का धान (सं० शालि); २५० किसान बढ़ई को फसल के समय जो गल्ला देता है (फा० साल) तु० पाथी।

सावाँ–९,१३५ [संज्ञा] एक प्रकार का अन्न (सं० श्यामाक, अ० मा० सामग)।

सिंघा–३४० [संज्ञा] एक प्रकार का बाजा जो धरिकार या डोम बजाते हैं (सं० शृंग)।

सिंघावर–१११ [संज्ञा] एक प्रकार का जड़हन धान।

सिंघोर–३८ [संज्ञा] एक जंगली वृक्ष (सं० सिंधुवार)।

सिंघौटा–१६१ [संज्ञा] बैल या गाय के सींगों को बाँधने की एक रस्सी (शृंग–); मुहा० **सिंघौटा लगाइब**–सींगों को रस्सी से बांधना।

सिंचनी–४२ [संज्ञा] सिंचाई (सिंचन)।

सिंव–२३ [संज्ञा] एक बार की जोताई, बाह।

सिउरब–३८,२१६ [क्रि०] किसी वस्तु को किसी अन्य वस्तु के साथ कसकर बाँधना।

सिकहर–३८० [संज्ञा] सामान रखने के लिये सुतली का बुना हुआ एक उपकरण जो टाँगा जाता है (सं० शिक्या + धर)।

सिकहुला–४१० [संज्ञा] मूँज की बनी बड़ी मौंकी।

सिझाइब–२६४,३७१ [क्रि०] कच्चे चमड़े को पक्का करने की क्रिया (सिध्यति प्रा० सिज्झइ)।

सितुहा–१५२ [संज्ञा] सुतुई से बड़ा लोहे का औजार जो अफीम काछने के काम में आता है (सुतुही हिं० सीपी, सं० शुक्तिका) तु० सुतुहा।

सिधवाई–२६१ [संज्ञा] गाड़ी तुलाते समय गाड़ी उठाने के लिये जो टेक दिया जाता है (सं० सिद्ध) तु० भरँगा।

सिधार–२२३ [संज्ञा] छाजन की ढाल या लरकाव।

सिपोली–३३३ [संज्ञा] बाँस के गाँठ पर सूपाकार पत्ता (सं० शूर्प)।

सिमसिम–८५ [वि०] ओद।

सियब–४०७ [क्रि०] सीवन (सं० सीव्यति)।

सियररोउवाँ–१५५ [संज्ञा] सियार के रोएँ की भाँति जिस गाय के रोएँ हों।

सियार–१२९ [संज्ञा] शृगाल।

सिरई–२४९,३८३ [संज्ञा] चारपाई के सिरहाने और पैताने की लकड़ी (सं० शिरस्; २५३ टटरा के ऊपर और नीचे के सिरे पर लगने वाले बाँस; मुहा० **सिरई सालब**–सिरई को पावे में बैठाना।

सिरकी–१७२ [संज्ञा] बदमाश बैल के लगी हुई दोगाही, तु० छिरकी; २६० सरई की बनी हुई छाने की एक चीज

जो बहुधा बैलगाड़ियों पर पानी से बचत के लिये डाली जाती है।

सिरहाना–२८३ [संज्ञा] चारपाई में सिर की ओर का भाग (सं० शिरस्)।

सिरोहब–२३३ [क्रि०] मिट्टी के बरतन की पेंदी को हाथ की अँगुलियों या पींड़ के सहारे सुडौल बनाना।

सिल्ली–२४५ [संज्ञा] लकड़ी का एक मोटा लम्बा-चौड़ा कटा हुआ भाग (सं० शिला); ३७१ नाई का एक हथियार जिस पर वह छुरा तेज करता है।

सिवान–५ [संज्ञा] गाँव की सरहद (सं० सीमा-)

सींक–४०९ [संज्ञा] सरपत का डंठल (तु० सं० इषीका, शंकु-); १९७ मुहा० **सींक धँसाइब**–लोहे का एक पतला छड़ जिसे धँसाकर पानी का पता लगाते हैं।

सींका–७७ [संज्ञा] जौ का डंठल जिसमें बाल रहती है; १२९ ईख के सिरे पर गेंड़े के बीच का भाग (सं० इषीका); ४०९ दे० 'सींक'

सींग–१५६ [संज्ञा] पशुओं के सिर का एक भाग (सं० शृंग)।

सीझी–७०,२२९ जिस चीज को जैसा होना चाहिये उस रूप में होने पर (सं० सिद्ध)।

सीढ़ी–१९५ [संज्ञा] चढ़ने का एक साधन (प्रा० सेढ़ि < सं० श्रेणि)।

सीना–३९९ [संज्ञा] सीड़न (स्विन्न)।

सीरा–२३३ [संज्ञा] शीरा।

सीरो–२८३ [संज्ञा] दे० 'सिरई'।

सुइआब–७५ [क्रि०] सूई की भाँति अँखुआ निकलना (सं० सूचि)।

सुइलार–२७४ [क्रि०] सुरियार (फा० सुराहीदार)।

सुकडाभा–१७८ [संज्ञा] बैल की तालु का एक रोग।

सुकडैना–१७८ [संज्ञा] वही।

सुकुवार–८४ [वि०] कोमल (सं० सुकुमार)।

सुखनट–८८ [संज्ञा] सूखा, अकाल (सं० शुष्क)।

सुगा पंखी–१११ [संज्ञा] एक प्रकार का जड़हन धान (सं० शुक-)

सुजनी–४०८ [संज्ञा] एक प्रकार का बिछावन जिसे स्त्रियाँ सी कर तैयार करती हैं (सूचि-)।

सुजावा–२५८ [संज्ञा] बैलगाड़ी की वे लकड़ियाँ जो धुरा के समानान्तर धुरा के दोनों बगल फड़ और पैजनी में जड़ी रहती हैं, दोनों सुजावा का सबंध दोनों पैजनियों से होता है।

सुतबस करब–२१५ [क्रि०] सूत से छाजन की ढाल आदि देखना।

सुतरी–२६४ [संज्ञा] मूँज का बाध।

सुतली–११६ [संज्ञा] सन का रेशा; ३७४ सन का कता हुआ रूप सूत जो सदृश होता है।

सुतारी–२६६,२६८ [संज्ञा] मोची का सीने का एक औजार।

सुतुई–१८६ [संज्ञा] तालाबों में पाई जाने वाली एक प्रकार की सीप (सं० शुक्ति)।

सुतुहा–२९८ [संज्ञा] दे० 'सितुहा'।

सुतुही–४९,१८९,२९९,३५२ [संज्ञा] दे० 'सुतुई'।

सुपारी–२५५ [संज्ञा] सुपारी के आकार का आभूषण जो माँग पर पहना जाता है।

सुम्मा–२६७ [संज्ञा] लोहारों का सूराख करने का एक औजार।

सुरक उठब–४१ [क्रि०] कसी रस्सी की रगड़ से हथेली की खाल निकल जाना।

सुरका–४१ [संज्ञा] हाथ का रगड़ से छिल जाना।

सुरसतिया–११९ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख जिसका कोवापरेटिव सोसाइटी ने प्रचार किया (अँ० सोसाइटी)

सुलगब–१८८,२४१ [क्रि०] आग का धीरे-धीरे जलना (सुलग्न–)।

सुलगाइब–३४५ [क्रि०] 'सुलगब' का स०।

सुसइटिया–११९ [संज्ञा] दे० 'सुरसतिया'।

सूजा–३२१ [संज्ञा] सीने का एक औजार (सूई ∠ सं० सूची)।

सूत–३०५ [संज्ञा] कपास का कता हुआ रूप; ३१७ ऊन का कता हुआ सूत; ३४६, ४०० सूत की भाँति पतला तार; २८४ मुहा० **सूत आइब** या **उड़ब**–शीरे में तार उठना; ३४६ **सूत खींचब**–तार निकालना; २४६ **सूत लगाइब**–सूत द्वारा किसी लकड़ी पर निशान लगाना।

सूप–४०६ [संज्ञा] अनाज पछोरने का एक उपकरण (शूर्प)।

सेंठा–१३३,१७९ [संज्ञा] जोन्हरी का सूखा डंठल, लकठा।

सेवईं–६३ [संज्ञा] एक घास जो सावाँ की भाँति होती है (सं० श्यामा)

सेल्हवैया–३७७ [संज्ञा] सेल्हा बनाने वाला दे० 'सेल्हा'।

सेल्हा–१०३,१०८ [संज्ञा] एक कुआरी धान (सं० शालि–); ३७७ सन के लच्छे जिससे रस्सी तैयार की जाती है या सन की बिना बटी हुई रस्सी (प्रा० सेल्लि, दे० ने० सेलि) तु० सल्लू।

सेल्ही–१११ [संज्ञा] एक अगहनी धान।

सेल्हुई–३७७ [संज्ञा] सेल्हा वाली रस्सी दे० 'सेल्हा'।

सेव–१८ [वि०] जो हल कम गहराई में धँसे उसे सेव हर कहते हैं (सं० सेध ?); २३,१०३,१४३ कम गहरी या छिछली जोताई-गोंड़ाई; २२३ कम ढाल की छाजन।

सेवर–२४१ [वि०] कम पका बरतन।

सेवार–२९८ [संज्ञा] पानी की एक घास (सं० शैवाल)।

सै–३०७ [संज्ञा] करघे की राछ के सौ सूराखों को एक सै कहते हैं।

सैल–२४ [संज्ञा] दे० 'सइल'।

सोंध–९३ [वि०] खर भूनी हुई वस्तु के खाने में एक प्रकार की सुगंध (सुगन्ध)।

सोक–६२ [संज्ञा] कुदार की गोंड़ाई से एक बार में जो नाली बनती है; ३८९, ३९२ खाँचा या गोनरी आदि की बुनाई में एक बार में जितनी बाती दबाई जाती है; मुहा० **सोक फोरब**–प्रत्येक सोक को अलग करना।

सोकनी–१५५ [संज्ञा] वह गाय जिसके रोएँ काले और सफेद हों।

सोकारी–२०८ [संज्ञा] छान उठाने के लिये जिन बाँसों की सहायता ली जाती है।

सोझ होब–१६७ [क्रि०] बैल के आठ दाँत पूरे होना।

सोता–१९७ [संज्ञा] कुएँ में किसी विशेष स्थान से पानी की तेज धार निकलना (स्रोतस्); मुहा० सोता फूटब–सोता निकलना।

सोधवाइब–२१० [क्रि०] साइत विचरवाना (सोधना, सं० शोधन)।

सोनार–२४५ [संज्ञा] गहना बनाने का पेशा करने वाली जाति (सं० सुवर्णकार, प्रा० सुवण्णआर)।

सोन्हि–४०६ [वि०] दे० 'सोंध'।

सोमा–३०४ [संज्ञा] तृतीय श्रेणी की चीज। यथा, सोमा चीनी,सोमा चोटा।

सोर–१३३,२८० [संज्ञा] जड़ (सं० शटा, प्रा० सड़); १३३ मुहा० सोर फेंकब–जड़ निकलना, जड़ फैलना।

सोहनी–६३,१०७ [संज्ञा] निराई (शोधनी)।

सौंड़ेरी–१७९ [संज्ञा] सावाँ के डंठल का कटा हुआ रूप।

सौंफिहा–१६५ [संज्ञा] दे० 'सँवखिहा'।

सौंहट–१३५ [संज्ञा] सावाँ कटा खेत (सं० श्यामाक)।

सौंहटा–९,१३५ [संज्ञा] दे० 'सौंहट', १६, १७९ [संज्ञा] सावाँ का पयाल।

सौरी-बियौरी–२७४ [यौ०] प्रसव गृह (सूतिका–)।

ह

हँकवैया–३२४ [संज्ञा] हाँकने वाला।

हँसिया–६५,२१५ [संज्ञा] एक अर्द्ध चंद्राकार हथियार जिससे खेत काटते हैं (तु० अंस–कन्धा–दे० ने० हँसिया)।

हँसुआ–६५,२६८,३८७ [संज्ञा] वही।

हँसुली–३५६ [संज्ञा] एक आभूषण जो स्त्रियाँ गले में पहनती हैं।

हई–५० [संज्ञा] हानि। यथा, मूस द्वारा पहुँचाई गई हानि को मूस की हई कहते हैं.

हट–३२५ [क्रि०] हटना का आदेश सूचक रूप जो पशुओं के लिये प्रयोग होता है।

हटका–२०८,२६४ [संज्ञा] एक प्रकार का रोकने का साधन, तु० कैंचा।

हड़वा–११८ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख जो हड्डी से मिलती है (हड्डी, सं० अस्थि)।

हड़हिया–११८ [संज्ञा] वही।

हड़ा–४९ [अ०] कौए को उड़ाने के लिए सांकेतिक शब्द (सं० हड्डम् प्रा० हड्ड=कौआ)।

हढ़ोढ़ा–३२४ [संज्ञा] कोल्हू में वह गड्ढा जिसमें घानी डाली जाती है।

हथउड़, हथउड़ा, हथउड़ी–२४६[संज्ञा] लोहे का ठोकने-पीटने का औजार (सं० हस्त+कूट)।

हथवँड़–४०२ [संज्ञा] जाँत को चलाने के लिये उपरौटा में जो लकड़ी लगाई जाती है (सं० हस्त+कांड)।

हथवाहा–४७ [संज्ञा] हाथा चलाने वाला।

हथवैया–४७ [संज्ञा] वही।

हथौड़ा–२६७ [संज्ञा] दे० 'हथउड़'।

हँबसब–७५ [क्रि०] पौधे का बढ़ना।

हबसल–७५ [वि०] बढ़ा हुआ, हरा भरा।

हयार–५१ [संज्ञा] हानि पहुँचाने वाले लोग।

हर–१४ [संज्ञा] हल का वह भाग जिसमें फार लगता है (सं० हल)।

हरजोत्ता–२१ [संज्ञा] हल हाँकने के लिये एक छोटी छड़ी जो हलवाह के हाथ में होती है।

हरवाह, हरवाहा–१६,१९,२१ [संज्ञा] हल चलाने वाला।

हरहा, हरही–४८,१५७,१८० [संज्ञा] वे गाय-बैल जो बार-बार खेत चरने के लिये भागते हैं (हल–)।

हरहिया–१५७ [संज्ञा] वही।

हराई–२२ [संज्ञा] खेत का उतना भाग जितना जोतने के लिये एक बार में घेरा जाता है; मुहा० हराई फानब–हराई आरम्भ करना।

हरियरी–१७६ [संज्ञा] हरी-भरी घास या कोयर (सं० हरित)।

हरिस–१४,१७,४०,२७० [संज्ञा] हल की वह लम्बी लकड़ी जिसके एक छोर पर फाल वाली लकड़ी जुड़ी रहती है और दूसरे छोर का सम्बन्ध जुआ से होता है (सं० हल + ईषा)।

हलकोरब–११६ [क्रि०] पानी में हिलाना या झकझोरना।

हलुक–३,७,१०,४४ [वि०] हलका (सं० लघुक, प्रा० लहुक)।

हल्फा–१७८ [संज्ञा] पशुओं के श्वास की बीमारी।

हाँड़ी–१५२,२३३,२०६ [संज्ञा] मिट्टी का एक पात्र (सं० भांड) २३३; हाँड़ी-पतुकी–[यौ०] वही।

हाँफा–१७८ [संज्ञा] श्वास कष्ट का रोग।

हाथा–४७ [संज्ञा] पानी सींचने का लकड़ी का एक उपकरण जो हाथ से चलाया जाता है (सं० हस्त–)।

हाल–२५६ [संज्ञा] लोहे का बन्द जो पहिये पर चढ़ाया जाता है।

हिक्का–१६३ [संज्ञा] पीठ से लेकर कन्धे तक का भाग।

हिगराइब–१८७ [क्रि०] पशुओं को उनके समूह से अलग करना।

हिगरौवल–१८७ [संज्ञा] हिगराने का कार्य।

हिरब–१८७ [क्रि०] भैंस का किसी पानी के गड्ढे में प्रवेश करना।

हिरवनी–१८६ [संज्ञा] जहाँ गोरू चरने के बाद एकत्र होते हैं।

हिराउब–१८६ [क्रि०] चरने के बाद पशुओं को हिरवनी पर एकत्र करना।

हिरार–८५,११० [संज्ञा] हरा या नरम।

हिरिकब–१९ [क्रि०] सटना।

हिरौनी–१८६ [संज्ञा] दे० 'हिरवनी'।

ही–१८४ [अ०] भैंस को रोकने के लिये एक सांकेतिक बोली।

हीरा–२४५ [संज्ञा] लकड़ी के मध्य का पका हुआ मजबूत भाग (हीरकः–हीरा)।

हुंडी–२६१ [संज्ञा] घुंडी।

हुमेल–३५६ [संज्ञा] मोहर का बना हुआ गले का एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ

पहनती हैं (अर० हमेल)

हुरपेठब—१८३ [क्रि०] ढकेलना, खदेरना।

हुरमुर—१८३ [संज्ञा] धक्का-धुक्की ।

हुलसब—२१२ [क्रि०] जड़ से हिलना ।

हूर—१८३ [संज्ञा] पशुओं को भीड़ ; २०८, २५३, ३९८ किसी लंबी चीज़ के किनारे का भाग। यथा, लाठी का हूर या बाँस का हूर।

हेंगवइया—२५ [संज्ञा] खेत हेंगानेवाला।

हेंगवाह—२५ [संज्ञा] वही ।

हेंगवाही—२५ [संज्ञा] हेंगाने का कार्य ।

हेंगवैया—२५ [संज्ञा] दे० 'हेंगवइया'।

हेंगा—२७ [संज्ञा] पाटा, खेती का एक उपकरण जिससे खेत सम किया जाता है (लोष्टघ्न ?); २५ मुहा० **हेंगा भरब**—हेंगा के सामने मिट्टी एकत्र होजाना जिससे हेंगा चलाने में कठिनाई होती है; **हेंगा लगब**—हेंगा का ठीक-ठीक काम करना ।

हेंगाई—२५ [संज्ञा] हेंगाने का कार्य ।

हे—१८४ [अ०] पशुओं के बुलाने का संबोधन ।

हो—३२५ [अ०] बैल को रोकने या ठहरने का संबोधन ।

होर—२१, ३२५ [अ०] वही ।

होरहा—९३ [संज्ञा] घास आदि की आग में भूनी हुई चना की फलियाँ, होला (सं० होलक) तु० अ० मा० हुरड; ११३ ज्वार की बाल ।

हौंकरहा—१६६ [संज्ञा] भौंकारने वाला बैल ।

हौंकरहिया—१५७ [संज्ञा] हौंकरहा का स्त्री० । यथा, हौंकरहिया गाय ।

हौदा—१८८, २३६, २७४ [संज्ञा] मिट्टी का एक बड़ा बर्तन जिसमें पशुओं को सानी चलाते हैं (अर० हौदज) ।

सहायक ग्रन्थ-सूची

१—अर्द्धमागधी कोष ..... शतावधानी जैनमुनि श्री रत्नचन्द्रजी महाराज, इन्दौर १९२३

२—दि प्रैक्टिकल संस्कृत इङ्गलिश डिक्शनरी ..... वी० एस० आप्टे

३—देशी नाम माला ... हेमचंद्र, कलकत्ता १९३१

४—नेपाली डिक्शनरी ..... आर० एल० टर्नर, १९३१

५—न्यू हिन्दुस्तानी इङ्गलिश डिक्शनरी ..... एस० डबल्यू० फलून १८७९

६—परशियन इङ्गलिश डिक्शनरी ..... एफ० स्टैंगाज़, लंडन, १९३०

७—पाइअ-सद्द-महण्णवो (प्राकृत-शब्द-महार्णवः) पं० हरगोविन्द दास, टी० शेठ कलकत्ता, १९२८

८—बिहार पीज़ेंट लाइफ़ ... सर जार्ज ए० ग्रियर्सन, पटना १९२६

९—मराठी व्युत्पत्ति कोश ..... के० पी० कुलकर्णी, बम्बई १९४६

१०—संस्कृत इङ्गलिश डिक्शनरी ... सर मोनियर विलियम्स, आक्सफोर्ड, १८९९

११—हिन्दी-शब्द-सागर ... (नागरी प्रचारिणी सभा)

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	अनुच्छेद	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६	२६	१०	नाथा	नाथी
५५	१२९	७	के बाट	की बीट
६०	१४३	६	कटाइब	चटाइब
६७	१६१	११	नइसेथली	इसे थनैली
८६	२१२	३	माटा	माटी
११२	२७२	१४	शोरी	शीरा
१३३	३४१	६	ठहा	ठीहा
१३७	३५३	१	बाना	बनाना
१५१	३९२	१४	मेंढ़ा	मेंढ़ी
१५२	३९४	४	अइलो	अइले
१५७	४०५	५	झीन-झान	झीन-झीन
१६०	४१०	७	चार	चीर
	पत्र-भाग			
१६५	२	१४	प्राचनी	प्राचीन
१७९	१	१४	कुँठार	कुठार
१८९	२	५	३८	३८०
१८५	२	१७	गड्दा	गड्ढा
२०३	२	२६	पचार	फार
२०५	२	१५	याग	गाय